उपहार

भारतं शृणुयान्नित्यं, भारतं परिकीर्त्तयेत् ।
भारतं भवने यस्य, तस्य हस्तगतो जयः ॥
भारतं परमं पुण्यं, भारते विविधाः कथाः ।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम् ॥
भारतं सर्व्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्‌ब्रवीमि ते ॥

महाभारत हिन्दुओंका बड़ाही पूजनीय ग्रन्थ है। चारों वेदोंके बाद इसीका नम्बर आता है। बहुतेरे लोग तो इसे पञ्चम वेदही कहते हैं। वास्तवमें यह ग्रन्थ अनेक शिक्षाओंका भाण्डार, उपदेशोंका आगार और धर्म कर्मका सच्चा मीमांसाकार है। यों तो इसमें मुख्यरूपसे कौरव-पाण्डवों-काही इतिहास लिखा गया है ; परन्तु इसी सिलसिलेमें और भी बहुतसे दृष्टान्त, कथा-कहानियाँ तथा उपदेश इस ग्रन्थमें आ गये हैं, जिनसे इसकी मनोहरता और उपयोगिता बहुत कुछ बढ़ गयी है। इसकी मूल-कथाही इतनी रोचक है—उसमें इतने ऊँचे दर्जेके आदर्श चरित्र चित्रित किये गये हैं, कि यदि इसमें और-और बातें न

भी होतीं, तोभी यह अपनी अमूल्य शिक्षाओं तथा उत्तमोत्तम चरित्र-चित्रणके कारण संसारके साहित्यका मुकुट-मणि माना जाता।

महाभारतमें सभी रसोंका यथास्थान समावेश किया गया है। शृङ्गारसे लेकर वैराग्यतक, सभी रसोंका इसमें ऐसा पुट पड़ा हुआ है, कि भारतके प्राचीन वीरोंकी यह पवित्र कथा बड़ीही मनोमोहक, हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक हो गयी है। इसीलिये अत्यन्त प्राचीन कालसे लेकर आजतक प्रायः सभी पण्डितोंका यही मत है, कि जो कुछ महाभारतमें है, वही अन्यत्र भी पाया जाता है और जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। बात भी बहुत ठीक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णों के जानने योग्य उपदेश और शिक्षाएँ इसमें भरी पड़ी हैं। प्राचीन कालसे बड़े-बड़े कवि, महाकवि और नाटककार महाभारतके आधारपरही अनेकानेक काव्य, महाकाव्य और नाटक लिखते चले आते हैं; पर अभीतक यह भाण्डार खाली नहीं हुआ है। आज भी इस भाण्डारसे भारतके भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी कवियों और लेखकोंको बहुत कुछ सामग्री मिला करती है और वे इसीके सहारे अपनी प्रतिभाका विकास किया करते हैं। इसीलिये तो लोग कहते हैं, कि परवर्त्ती कवियोंके जो कुछ काव्य-कौशल और रचना-चमत्कार हैं, वे सब भगवान् कृष्ण-द्वैपायन व्यासकेही जूँठन हैं।

जैसे हिमालय-पर्वत रत्नोंकी खान होनेके कारण सभी पर्वतोंमें श्रेष्ठ माना जाता है, वैसेही नाना शिक्षाओंका आगार होनेके कारण यह 'महाभारत' भी हिन्दू-जातिके साहित्यका सर्वोत्तम रत्नाकर माना जाता है। जो लोग मन लगाकर इस महाग्रन्थका पाठ करते और इसकी शिक्षाओंको हृदयङ्गम करते हैं, उनको लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञानके लिये फिर दूसरे ग्रन्थका मुँह नहीं जोहना पड़ता।

ऊपर हमने जो श्लोक उद्धृत किये हैं, उनका भाव भी यही है, कि जो सदा महाभारत सुनता, सुनाता और इसकी पुस्तक अपने घरमें रखता है, उसकी सदा जय होती है। यह महाभारत पुण्यमय ग्रन्थ है, इसमें विविध कथाएँ दी हुई हैं; इसीलिये देवता भी इसकी प्रतिष्ठा करते हैं। यह ग्रन्थ परम पदका देनेवाला और सभी शास्त्रोंसे बढ़कर है। इसके पठन, पाठन, मनन और अध्ययन करनेसे मुक्तितक मिल जाती है।

महाभारतमेंही लिखा है, कि "जो लोग खूब सावधानताके साथ इस भारत-आख्यानका पाठ करते हैं, उन्हें परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो लोग व्यासदेवके रचे हुए इस पवित्र और पाप-हारी ग्रन्थका पाठ करते या सुनते हैं, उन्हें पुष्कर-तीर्थके पवित्र जलसे अभिषेक करनेका क्या प्रयोजन है?"

वास्तवमें यह बात बहुतही ठीक है। महाभारतके एक-एक पात्रका चरित्र बड़ाही विचित्र है। उसे देखनेसे हमें आजसे सहस्रों वर्ष पूर्वके अपने देश और समाजकी अवस्थाका सम्यक् ज्ञान हो जाता है। उस समयका वर्णाश्रम-धर्म कैसा था, उस समयके क्षत्रिय कैसे शूर-वीर, पराक्रमी और सत्य-सङ्कल्प थे—यह सब हमें भली भाँति मालूम हो जाता है। इसी लिये यह ग्रन्थ पढ़कर अपने पूर्वजोंके पवित्र चरित्रसे परिचित होना, प्रत्येक हिन्दूका—नहीं, नहीं, प्रत्येक भारतवासीका—प्रधान कर्तव्य है।

भीष्म-पितामहकी अलौकिक पितृ-भक्ति; श्रीकृष्णकी विलक्षण राजनीति; युधिष्ठिरकी सराहनीय सत्यवादिता; द्रोण, दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन तथा भीम आदि वीरोंकी अद्भुत वीरताकी कथा पढ़कर किस भारतवासीके मरे हुए प्राणोंमें नया जीवन नहीं भर जायेगा? किसकी छाती अपने पूर्व-गौरवका स्मरण कर, गर्वसे नहीं फूल

उठेगी ? अतएव यदि हमें अपनी अतीत गौरव-गरिमाका यथार्थ चित्र देखनेकी अभिलाषा हो, तो हमें महाभारत पढ़ना चाहिये। यदि संसारके अलौकिक महावीरोंकी वीर-कथा पढ़कर मरे हुए प्राणोंमें भी अभिनव सञ्जीवनी-शक्ति भर देनेकी कामना हो, तो हमें महाभारतकाही पाठ करना उचित है। सच तो यह है, कि जिसने महाभारत नहीं पढ़ा, उसका भारतवासी होनाही व्यर्थ है।

परन्तु महाभारत सचमुच महाग्रन्थ है। इसमें बड़े-बड़े अठारह पर्व हैं। सारे ग्रन्थका पाठ करनेके लिये बहुत समय चाहिये। साथही हिन्दीमें अठारह पर्वोंके जो दो-तीन अनुवाद छपे हैं, उनकी भाषा आदि रद्दी होनेपर भी उनका मूल्य इतना अधिक है, कि साधारण पाठकोंको उतना द्रव्य खर्च करनेकी हिम्मत नहीं पड़ती। इन दोनोंही श्रेणीके पाठकोंको महाभारतकी मूल-कथासे पूर्णतया परिचित करानेके लिये महाभारतके संक्षिप्त संस्करणकी बड़ी आवश्यकता थी। इसी लिये यह छोटा महाभारत निकाला गया था और हमें यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है, कि साहित्य-संसारमें इसका यथेष्ट आदर हुआ है। विशेषतया स्थान-स्थानपर रङ्ग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर चित्रोंकी योजना कर देनेसे यह ग्रन्थ बालक, वृद्ध, युवा और स्त्री सबके लिये बड़ाही चित्ताकर्षक प्रमाणित हुआ है। इसमें प्रत्येक पर्वका सारांश सबकी समझमें आने योग्य सरल और सरस भाषामें लिखा गया है। इस संस्करणमें तो यह ग्रन्थ सब तरहसे बढ़िया बना दिया गया है।

——सम्पादक।

तृतीय संस्करण।

परम-पिता परमेश्वरके प्रसाद और प्रेमी पाठकोंके प्रश्रय-प्रदानकाही यह प्रताप है, कि हम फिर इतनी जल्दी अपने 'सचित्र महाभारत' का यह तीसरा संस्करण लेकर आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित होते हैं। इस संस्करणमें पिछले दोनों संस्करणोंकी अपेक्षा कितना अधिक और उपयोगी परिवर्त्तन तथा परिवर्द्धन किया गया है, यह पाठक स्वयंही देख लेंगे।

इस तीसरे संस्करणको हमने एकदम नये और सुन्दर टाइपोंमें बड़ी सज-धजके साथ छपवाया है और जहाँ पहले प्रतिपृष्ठमें केवल २२ पंक्तियाँही रहती थीं, वहाँ अब २५ पंक्तियाँ दी गयी हैं। इसके सिवा पाठ्य-विषयमें भी बहुत कुछ वृद्धि की गयी है, जिससे इसकी मनोरञ्जकता बहुत बढ़ गयी है। साथही प्रत्येक पर्वके अन्दर आनेवाली प्रधान-प्रधान घटनाओंके अलग-अलग शीर्षक देकर पाठकोंके लिये इस बातकी सुविधा कर दी गयी है, कि वे जब, जिस घटनाको ढूँढ़ना चाहें, आसानीसे ढूँढ़ लें। कागज़ भी इस बार पहलेसे बहुत अच्छा लगाया गया है और चित्रोंकी संख्या भी बढ़ा दी गयी है। इतना सब होते हुए भी इसके मूल्यमें कुछ भी वृद्धि नहीं की गयी है। आशा है, कि यह तीसरा संस्करण पिछले

दोनों संस्करणोंकी अपेक्षा शीघ्रही बिक जायेगा और हमें थोड़ेही दिनोंके अन्दर इसका चौथा संस्करण लेकर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित होना पड़ेगा।

पाठकोंको यह सुनकर निश्चयही प्रसन्नता होगी, कि हमारा यह महाभारत प्रसिद्ध गुरुकुल-काँगड़ीकी पाठ्य-पुस्तकोंमें सम्मिलित कर लिया गया है और विहार तथा युक्त-प्रदेशके कितनेही स्कूलोंके अध्यापकोंने इसे अपने छात्रोंको कोर्सकी भाँति पढ़ाना आरम्भ कर दिया है। हम आशा करते हैं, कि अन्यान्य शिक्षा-संस्थाएँ और टेक्स्ट-बुक-कमिटियाँ भी इन्हीं लोगोंका अनुकरण कर, इसे मध्य-श्रेणीके छात्रोंके लिये पाठ्य-पुस्तक नियुक्त करेंगी; क्योंकि महाभारतका ऐसा शुद्ध, सरल, सरस, सस्ता और सचित्र संस्करण आजतक किसी भाषामें नहीं छपा।

इसी स्थानपर हम पाठकोंको यह शुभ समाचार भी सुना देना चाहते हैं, कि सम्पूर्ण महाभारतके अठारहों पर्वोंका एक अच्छा अनुवाद हिन्दी-संसारमें निकालनेके लिये हम गत कई वर्षोंसे आयोजन कर रहे हैं। कितनेही चित्र-कला-विशारद धुरन्धर चित्रकारोंसे उसके लिये सुन्दर-सुन्दर चित्र बनवाये जा रहे हैं और संस्कृत तथा हिन्दीके कई प्रसिद्ध विद्वानोंको अनुवादका भार सौंपा गया है। हमारा यह "बड़ा महाभारत" प्रकाशित होनेपर अपने रूप-रङ्ग, आकार-प्रकार, भाव-भाषा, छपाई-सफ़ाई और चित्रोंकी बहुलताके कारण हिन्दी-संसारको एकबारगी चकित, विस्मित स्तम्भित कर देगा।

—प्रकाशक।

समालोचना-सार

पहले संस्करणके 'महाभारत' की हिन्दी-संसारने कैसी कदर की थी, वह नीचे लिखी समालोचनाओंसे स्पष्ट विदित हो जाती है,

कलकत्तेका सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "हिन्दी बङ्गवासी" अपने ३० अगस्त १६२० के अङ्कमें लिखता है,—

"महाभारत—सम्पादक, श्रीयुत पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा महाशय।... कौन ऐसा हिन्दू-सन्तान होगा, जिसने भगवान् व्यास-रचित 'महाभारत'का नाम न सुना हो? यह हमारा प्राचीन इतिहास है; हिन्दू-जातिका जीवन साहित्य है; नीतिशास्त्र है; धर्म-ग्रन्थ है। और तो क्या? पञ्चम वेद है। जगत्-भरके साहित्य-सागरको मथ डालिये, किन्तु कहीं भी ऐसा अनुपम रत्न नहीं मिल सकता। हिन्दुओंको महाभारतके सम्बन्धमें विशेष बतानेकी आवश्यकता नहीं, आबाल-वृद्ध सभीकी जिह्वापर रामायण और महाभारत सदा विराजमान रहते हैं। जबतक भारतमें इस नई सभ्यताका प्रभाव नहीं पड़ा था, तबतक कोई विरलाही ऐसा ग्राम रहा होगा, जहाँ नित्य महाभारतकी कथा न होती हो। लोग इस अमृतोपम कथाको सुनने-के लिये लालायित रहते थे। कारण, कि पुराणोंमें महाभारत-श्रवणका अपिरिमित फल कहा गया है। किन्तु अब वह युग नहीं, समयके फेरसे वह प्राचीन परिपाटी क्रमशः विलीन हो गई; छापेखानोंके प्रसादसे महा-भारतको पोथियाँ घर-घर पहुँच गईं। इस महाग्रन्थके प्रायः सभी भाषा-ओंमें अनुवाद हो गये हैं। हिन्दीमें भी इसके बहुतेरे अनुवाद हैं तथा संक्षेपमें महाभारतकी कथाएँ भी बहुतायतसे लिखी गई हैं। इस पुस्तकमें भी महाभारतके अठारहों पर्वोंका अतीव संक्षिप्त विवरण है। स्थानीय आर० एस० बर्मन कम्पनीके स्वत्वाधिकारी श्रीयुत बाबू रामलाल बर्मन महाशयने खूब सज-धजके साथ इसे प्रकाशित कराया है। इसके पढ़नेसे महाभारतका

सार-मर्म विदित हो सकता है। इस पुस्तकमें विशेषता यह है, कि बाइस चित्र दिये गये हैं, जिनमें सात बहुरंगे चित्र हैं।...प्रत्येक चित्रमें बड़ेही विशद-रूपसे भाव दर्शाये गये हैं। कृष्णार्जुनमें अर्जुनका कातरता-प्रदर्शन, द्रौपदी-चीर-हरण तथा युद्ध-भूमिके दृश्य प्रभृति ऐसे मनोहर और भावपूर्ण हैं, कि इन चित्रोंको बारम्बार देखनेकी इच्छा बनी रहती है। यह पुस्तक मोटे ऐण्टिक पेपरपर खूब सजधजके साथ दिव्य टाइपमें छपी हुई है और इसकी सुनहरी रेशमी जिल्द मनको मोह लेती है। लेखन-शैली औपन्यासिक ढङ्गकी है। इससे सर्वसाधारणके लिये यह और भी रुचिकर हो गई है। सारांश यह है, कि यह पुस्तक सब प्रकारसे उपादेय और संग्रहणीय है।"

"भारतमित्र" अपने ३१ अगस्त १९२० के अङ्कमें लिखता है,—"महाभारत। हिन्दुओंके पवित्र ग्रन्थोंमें महाभारतका दर्जा बहुत ऊँचा है। यह एकही साथ पुराण, इतिहास और काव्यका काम देता है। भारतके प्राचीन गौरवको बतलानेवाली पुस्तकोंमें महाभारतसे बढ़कर और कोई पुस्तक हिन्दू-साहित्यमें नहीं है; पर यह ग्रन्थ इतना बड़ा है, कि वर्त्तमान युगमें इतनी फुर्सत किसे है, जो सम्पूर्ण ग्रन्थका पारायण करे? ऐसी अवस्थामें महाभारतके इतिहास और तद्गत चरित्रोंसे आधुनिक पाठकोंको परिचित करनेके लिये इसके संक्षिप्त संस्करणोंके प्रचारकी अत्यन्त आवश्यकता है...वर्त्तमान पुस्तकमें भी महाभारत कथाभाग संक्षिप्त रूपमें, पर अच्छे ढङ्गसे लिखा गया है।...भाषा सरस तथा सरल है। बालक, बूढ़े, जवान, सबके पढ़ने योग्य पुस्तक है।...मुखपत्रपर दिया हुआ "कृष्ण और अर्जुन" तथा "कृष्णके सन्धि-सन्देशवाला" चित्र बड़ाही सुन्दर तथा दर्शनीय हुआ है। और चित्र भी अच्छे हैं। इन चित्रोंकी योजनासे ग्रन्थके सौन्दर्यकी वृद्धि हुई है।...प्रकाशनका कार्य सफलताके साथ हुआ है और इसके लिये हम इसके प्रकाशक, प्रसिद्ध हिन्दी-शिल्पी बाबू रामलालजी वर्माको धन्यवाद देते हैं। आप बड़े उत्साहसे उपयोगी और सुन्दर पुस्तकों द्वारा हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं।"

दैनिक "साम्यवादी" लिखता है,—"हमारे पास महाभारतकी मूल-कथाका सार-सङ्कलन प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक बाबू रामलालजी वर्माने बड़ी सजधजके साथ निकालकर भेजा है। इसमें अठारहों पर्वोंकी कथा संक्षिप्त रूपसे दी गयी है। कौरव-पाण्डवोंके वंश-परिचयसे लेकर पाण्डवोंके महाप्रस्थानतककी समस्त कथा बड़े रोचक ढङ्गसे लिख दी गयी है। पुस्तक

बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, बालिका सबके पढ़ने योग्य है। भाषा सीधी-सादी और सरल है। बर्म्मन प्रेसने छपाई सफाई और कागजकी उत्तमतामें कोई कसर नहीं रखी है। महाभारतकी भिन्न-भिन्न घटनाओंके सम्बन्धमें २२ रङ्ग-बिरङ्गे चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे इसकी उपादेयता बढ़ गयी है।... चित्र सभी सुन्दर और भावमय हैं।... हिन्दी-पाठक यह ग्रन्थ अवश्य संग्रह करें। हिन्दीमें सुन्दर और सचित्र पुस्तकोंका प्रकाशन करनेके लिये हम इसके प्रकाशक महोदयको बधाई देते हैं। आशा है, कि आप इसी प्रकार साहित्यका शृङ्गार-सम्पादन करते रहेंगे।"

"स्त्रीदर्पण" अपने अक्तूबर १९२० के अङ्कमें लिखता है,—

"सचित्र महाभारत"—अभी तक हिन्दीके लेखकोंने इस ओर ध्यान नहीं दिया था, कि बच्चोंके वास्ते अच्छी, सुन्दर, सचित्र किताबें छपवाया करें। अधिकतर हिन्दीकी किताबें बहुधा साधारण और सस्ते कागजोंपर छपा करती हैं और इसमें लेखकोंका कसूर नहीं है, क्योंकि मोल लेनेवाले सस्ती ढूँढा करते हैं। इसलिये कोई भी प्रकाशक ज्यादा खर्च करके किताब छपानेका साहस नहीं कर सकता। अँगरेजीमें तो सचित्र पुस्तकें बच्चोंके लायक हजारोंही हैं और रोज निकलती जाती हैं और सुननेमें आता है, कि लाखोंकी संख्यामें वह बिकती हैं। हिन्दीकी उन्नतिके साथ इन सब चीजोंकी भी मांग बढ़ती जाती है और हमको यह देखकर कि बर्म्मन कम्पनीने ऐसी पुस्तकें छपवानेका साहस किया है, बहुत हर्ष है। हमें आशा है, कि पाठकगण उनका उत्साह बढ़ावेंगे और जैसी उन्होंने महाभारत, नलदमयन्ती आदि पुस्तकें निकाली हैं, वैसी और पुस्तकें छापनेका उनको साहस होगा। इस पुस्तकमें रङ्गीन चित्र लगभग बाइस हैं और अच्छे बढ़िया कागजपर चित्र और किताब, दोनों छपे हैं। हमारी सम्मति है, कि ऐसी किताबें जितनी छपें, उनकी हिन्दी सरल होनी चाहिये, कि जिसमें आज कलके बोले जाने वाले शब्द, चाहे वह उर्दू हों या हिन्दी, ले लिये जाने चाहिये। हमें हर्ष है, कि इस पुस्तकके लेखकने सब बातोंका खयाल रखा है।"

संसार अपने भाद्रपद संवत १९७७के अङ्कमें लिखता है—

"इस पुस्तकमें महाभारतके अठारहों पर्वोंका मूल आख्यान सरल, शुद्ध और सुबोध भाषामें लिखा गया है।...चित्रोंके कारण इस पुस्तककी शोभा, उपयोगिता विशेष रूपसे बढ़ गयी है। महाभारतके हिन्दीमें जितने संक्षिप्त संस्करण निकले हैं, उनमें इस पुस्तकको हम सबसे अच्छा समझते हैं।"

"ब्राह्मणसर्वस्व" अगस्त १६२०के अङ्कमें लिखता है,—
"हिन्दी महाभारत अवतक अनेक स्थानोंमें मुद्रित हो चुका है। इन सभी महाभारतोंमें केवल पाण्डव-कौरवोंकाही इतिहास वर्णित है। महाभारतका अविकल अनुवाद इनमेंसे किसीमें नहीं है। पर प्रस्तुत पुस्तकमें पाण्डवोंका पूरा-पूरा वृत्तान्त वर्णित है। इनमें कई चित्र बहुरंगे हैं और कई चित्र-कला-नैपुण्यके ज्वलन्त उदाहरण हैं। पुस्तक संग्राह्य है।"

"प्रभा" जनवरी १६२१के अङ्कमें लिखती है,—"यह आदर्श ग्रन्थ-मालाका दूसरा ग्रन्थ है। पहले ग्रन्थके अनुसार इसको भी सुन्दर बनानेका विशेष प्रयास किया गया है। इसमें कुल मिलाकर २२ चित्र हैं, जिनमेंसे सात बहुरंगे हैं, चित्र महाभारतकी मुख्य-मुख्य घटनाओंसे सम्बन्ध रखते हैं और अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं। उद्देश्य उत्तम है।"

"सुधारक" ६ सितम्बर १९२०के अङ्कमें लिखता है,—"इसका कागज बहुत बढ़िया है और छपाई बहुत साफ है। इसमें २२ तसवीरें दी हुई हैं, जिनमेंसे ७ कई रंगोंमें छपी हुई हैं। इनमेंसे कई तसवीरें बहुत अच्छी हैं। इसमें महाभारतके १८ पर्वोंकी कथा बहुत अच्छे ढङ्गसे लिखी गयी है, जिससे किताब बड़ी दिलचस्प हो गयी है। किताब देखतेही पढ़नेको जी चाहता है। हम उम्मेद करते हैं, कि वर्माजी इसी ढङ्गकी और भी किताबें छापा करेंगे।"

"हिन्दी-मनोरञ्जन" अपने अक्तूबर १९२०के अङ्कमें लिखता है,—
"इस ३०८ पृष्ठोंकी पुस्तकमें महाभारतके अठारह पर्वोंकी खास-खास बातें पूर्ण रूपसे भर दी गई हैं। अकेली इस पुस्तकके पढ़नेसे महाभारत ऐसे बड़े ग्रन्थके कथा-भागका पूर्ण ज्ञान हो जाता है। भाषा शुद्ध हिन्दी और सुन्दर है। पुस्तक मोटे एण्टीक कागजपर बहुत नेत्ररंजक छापी गयी है। पुस्तकमें २२ चित्र हैं, जिनमें सात रङ्गीन और १५ सादे हैं। इन चित्रोंसे पुस्तककी सुन्दरता बहुत बढ़ गयी है।"

चित्र-सूची

[सभा-पर्व]

[वन-पर्व]

[विराट-पर्व]

[उद्योग-पर्व]

[भीष्म-पर्व]

[द्रोण-पर्व]

[कर्ण-पर्व]

[शल्य-पर्व]

[सौप्तिक-पर्व]

[स्त्री-पर्व]

[शान्ति-पर्व]

[अनुशासन-पर्व]

[अश्वमेध-पर्व]

[आश्रमवासिक-पर्व]

[मौषल-पर्व]

[महाप्रस्थानिक-पर्व]

[स्वर्गारोहण-पर्व]

श्रीकृष्णका गीता-उपदेश।

"अर्जुनको एकाएक चिन्तित होते देख, भगवान् श्रीकृष्णने, उन्हें, एक कर्म-प्रधान वक्तृता सुनायी।" [पृष्ठ—१६०]

महाभारत

पूर्व-वृत्तान्त।

सहस्रों वर्ष पूर्व, द्वापर युगके प्रारम्भमें, देवताओंकी प्रिय भूमि, इस आर्यावर्त्तकी अवस्था बड़ी उन्नत थी। उस समय इस भूखण्डका शासन-सूत्र महाराजा ययातिके हाथमें था।

ययातिके दो पुत्र थे। एकका नाम 'यदु' और दूसरेका 'पुरु' था। इन यदु और पुरुकीही सन्तानें, आगे चलकर, संसारमें 'यादव' और 'पौरव'के नामसे प्रसिद्ध हुईं।

महाराजा ययाति अपने, बड़े पुत्र यदुकी अपेक्षा, छोटे पुत्र पुरुकोही अधिक चाहते थे। उन्होंने मरते समय अपने साम्राज्यके सिंहासनपर पुरुकोही बैठाया। इन्हीं पुरुके वंशमें महाराजा भरत*

---

* यदि महाराजा 'भरत'के जन्मकी अद्भुत कथा पढ़नी और उनके माता-पिताकी श्रेष्ठता तथा गौरवकी बात जाननी हो, तो हमारे यहाँसे १३ रङ्ग-बिरङ्गे चित्रोंसे युक्त 'शकुन्तला' नामक पुस्तक अवश्य मँगा देखें। मूल्य २) रङ्गीन जिल्द २।) और रेशमी जिल्द २॥) रुपया।

हुए, जिन्होंने आर्यावर्त्तकी अतीव उन्नतिकर, इसका नाम 'भारतवर्ष' रखा और अपने वंशको 'भरत-वंश'के नामसे प्रसिद्ध किया।

हाँ, तो इस चिर-प्रसिद्ध भरत-वंशकीही छठीं या सातवीं पीढ़ीमें महाराजा 'कुरु' हुए, जिन्होंने भरत-वंशका गौरव ऐसा बढ़ाया, कि उनके बाद यह वंश 'भरत-वंश' न कहाकर 'कुरु-वंश' ही कहलाने लगा।

इसी प्रसिद्ध कुरु-वंशमें 'शान्तनु' नामके एक महाप्रतापी राजा हुए। वे जैसे गुणवान् थे, वैसेही रूपवान् भी थे। उस समय उनके समान सर्व-गुण-सम्पन्न राजा और कोई न था। महाराजा शान्तनु, धर्मानुसार, राज्य-शासन और प्रजा-पालन करते थे। यही कारण था, जो उनके राज्यमें सभी लोग सुशील और सदाचारी होते थे। ऐसा कोई आदमीही नहीं था, जो अपना काम भलीभाँति न चलाता हो। इसीसे उनका राज्य सदा निरुपद्रव और सुख-शान्ति-पूर्ण रहता था।

महाराजा शान्तनु, ऐसे सुख-समृद्धिसे भरे राज्यके स्वामी होकर, सदा शुद्धमनसे प्रजाके हितमें लगे रहते और आनन्दके साथ धर्म-कर्म किया करते थे।

महाराजा शान्तनुका विवाह महारानी गङ्गाके साथ हुआ था। विवाहके समय गङ्गाने उनसे प्रतिज्ञा करा ली थी, कि 'महाराज! मैं चाहे जो करूँ,—मेरा वह काम अच्छा हो या बुरा,—उसमें आप तनिक भी बाधा न देने पायेंगे!' तदनुसार जब महारानी गङ्गाके पहला पुत्र उत्पन्न हुआ, तब वे उस, तत्काल जन्मे हुए, पुत्रको गङ्गाकी पवित्र जल-धारामें बहा आयीं! राजाको, रानीके इस कोठर कामपर, दुःख तो बहुत हुआ, पर प्रतिज्ञा-पाशमें बँधे रहनेके कारण, वे उन्हें कुछ कह न सके। इसी प्रकार रानीके और भी छः पुत्र उत्पन्न हुए और रानीने उन छहों पुत्रोंको भी, पहलेकी तरहही, गङ्गामें बहा दिया!

देवव्रतका जन्म ।

परन्तु जब आठवाँ पुत्र पैदा हुआ और रानी उसे भी अपने अन्यान्य पुत्रोंकी भाँति गङ्गामें बहाने चलीं, तब महाराजा शान्तनु अधीर हो उठे। उन्होंने अबतक बहुत कुछ सहा था, विवाहके समय की हुई प्रतिज्ञाका यथासाध्य पालन किया था; किन्तु बार-बारके पुत्र-शोकसे वे अब एकदम विह्वल हो रहे थे। अतएव उन्होंने रानीके पीछे-पीछे दौड़ते हुए कहा,—"अयि मेरे वंशको नष्ट करनेवाली! तुम कौन हो? ऐसा भीषण कर्म, जिसे राक्षस भी कभी नहीं कर सकते, किस लिये करती हो? अस्तु, तुम चाहे जो हो, किन्तु अब मुझे क्षमा करो। मैं इस पुत्रको नष्ट न होने दूँगा। तुम भलेही मुझे त्याग दो पर, परमात्माके नामपर, इस पुत्रको मेरे हवाले कर दो।"

इस बातको सुनकर गङ्गाने उत्तर दिया,—"राजन्! यदि आप इस पुत्रको पानेकी इच्छा करते हैं, तो मैं, आपके कहनेसे, इसे न मारूँगी! परन्तु पहले की हुई अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार, अब मैं आपके पास नहीं रह सकती। आप इस घटना और मेरे चले जानेपर किसी प्रकारका दुःख न करें। देखिये, मैं अब अपनेको छिपाया भी नहीं चाहती और सारी बातें स्पष्ट कहे देती हूँ। सुनिये, मेरा नाम 'जाह्नवी' है। मैं महर्षि 'जह्नु की' कन्या हूँ। एकबार अष्ट वसुओंको, तेजस्वी वसिष्ठने, किसी अपराधपर, यह शाप दिया था, कि तुम लोग मर्त्यलोकमें जाकर जन्म लो। परन्तु मुझे छोड़कर अन्य कोई ऐसी स्त्री न थी, जो उन्हें गर्भमें धारण कर सकती। अतएव वे सब मेरे पास आये और प्रार्थना-पूर्वक बोले, 'देवि! आप हमारी माता होनेकी कृपा करें; किन्तु पैदा होतेही हमारा नाश कर दें,

जिससे हमें अधिक दिन मर्त्यलोकमें रहनेका कष्ट न उठाना पड़े।' उन्हींकी इस प्रार्थनाको स्वीकारकर, मैंने आपसे विवाह किया और उन अष्ट-वसुओंका उद्धार करनेकी चेष्टा की। सात तो चले गये, अब आठवाँ वसु मेरे हाथमें है। इसे मैं आपको अवश्य दूँगी, पर अभी नहीं। मेरी इच्छा है,कि इसका लालन-पालन मेरेही द्वारा हो। पाल-पोसकर मैं इसे महावीर परशुरामसे, सब शास्त्रोंकी, शिक्षा दिलाऊँगी। तबतकके लिये आप धैर्य धरें। अनन्तर आपका यह पुत्र, जीवन-भर, आपके वंशमें रहकर, उसकी कीर्त्ति-कौमुदीका, दशों दिशाओंमें, विस्तार करता रहेगा।"

राजाने गङ्गाके इस शुभ प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे रानीके वियोगसे दुःखी तथा पुत्र-प्राप्तिसे सुखी होते हुए घर लौट आये।

देवव्रतका बाल्य-काल।

इस घटनाके बहुत दिन बाद, एकदिन, राजा शिकार खेलने, किसी वनमें, गये। वहाँ उन्होंने देखा, गङ्गाकी धारा प्रायः सूखी पड़ी है। इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बड़े विस्मयके साथ इस घटनाका सच्चा कारण खोजने लगे। अन्तमें उन्होंने एक स्थान-पर जाकर देखा, कि देव-बालक जैसा रूपवान् एक बालक, बाणोंकी वर्षाकर, गङ्गा-प्रवाहको रोक रहा है! उसकी इस अद्भुत, बाण-विद्या-विषयक पारदर्शिताको देख, राजा बड़े प्रसन्न हुए। कौतूहलसे भरकर उन्होंने उस बालकका वास्तविक परिचय पूछा। बालक और कोई नहीं, गङ्गाके गर्भसे उत्पन्न हुआ, महाराजा शान्तनुकाही पुत्र था। वह पिताको देखतेही पहचान गया, पर कुछ बोला नहीं; वरन् माताकी दी हुई शक्तिसे चट अन्तर्द्धान हो गया और

माताके पास जा पहुँचा। उसने गङ्गाके पास जा, उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

इधर शान्तनु, बालकको गायब होता देख, महाविस्मयमें पड़ गये थे। वे चुपचाप खड़े हुए इस घटनापर, मन-ही-मन, कुछ सोचही रहे थे, कि मानवी रूप धारणकर गङ्गा उनके पास, पुत्रसहित, आकर बोलीं,—"महाराज! आपके पुत्रको, अपनी इच्छाके अनुसार, मैंने सर्व-विद्या-विशारद बना दिया है। अब आप अपने इस सर्व-गुण-सम्पन्न पुत्रको अङ्गीकार कीजिये।"

महाराजा शान्तनु, बड़ी प्रसन्नतासे, पुत्रको लेकर अपनी राजधानीमें आये। उन्होंने अपने इस पुत्रका नाम 'देवव्रत' रखा।

राजपुत्रका विशाल मस्तक, चौड़ी छाती, लम्बी भुजाएँ और पुष्ट शरीर देख, पुर-वासी बड़े प्रसन्न हुए। धार्मिक-श्रेष्ठ पिताके यत्न और परिश्रमसे, धीरे-धीरे, सब प्रकारकी शस्त्रास्त्र-विद्यामें निपुण हो, राजकुमारने अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर ली। कुछही दिनोंमें, शास्त्र-ज्ञान, शस्त्र-प्रयोग और विचार-क्षमता आदि सब विषयोंमें देवव्रत अपने पितासे भी बढ़ गये!

जिसके ऐसा सुन्दर और सर्व-गुण-सम्पन्न पुत्र हो, वह भला क्यों न अपनेको बड़भागी समझे? अतः ऐसे सुयोग्य पुत्रको पाकर महाराजा शान्तनु फूले अङ्ग न समाते थे। जब राजकुमार जवान हुए, तब महाराजा शान्तनुने, नगरके सभी प्रतिष्ठित और योग्य पुरुषोंको एकत्रकर, एक दिन सबके सामने, उन्हें अपना युवराज बनाया! युवराज, कुछही दिनोंमें, अपने सद्व्यवहारों और कर्त्तव्यका भलीभाँति पालन करनेके कारण, प्रजाकी प्रीतिऔर विश्वासके पात्र बन गये। उनकी पितृ-भक्ति आदर्श थी।

हम कह आये हैं, कि महाराजा शान्तनुको शिकार खेलनेका बड़ा

भारी शौक़ था। तदनुसार एक दिन, महाराजा यमुनाके किनारेसे सटे एक वनमें टहल रहे थे, कि सहसा वहाँ अपूर्व सुगन्ध फैल गयी। जिस सुगंधने इस वनस्थलीको सौरभमय कर दिया, वह कहाँसे आ रही है? यह जाननेके लिये वे वनमें, इधर-उधर, घूमने लगे। कुछही देर बाद उन्होंने देखा, कि एक, देवाङ्गनाओंके समान रूप-लावण्यवती, स्त्री यमुनाके किनारे बैठी है और उसीके शरीरसे निकली हुई सुगन्ध चारों दिशाओंको सुवासित कर रही है! महाराजा शान्तनु उस कामिनीको, निर्जन वनमें, देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने, उसके पास जाकर, पूछा,—"सुन्दरि! तुम कौन हो और इस निर्जन वनमें क्यों आयी हो?"

स्त्री,—"महाराज! मेरा नाम सत्यवती है। दासराज धीवर मेरे पिता हैं। अपने पिताकी आज्ञासे मैं यहाँ, यमुनामें, बिना कर लिये नाव खेती हूँ।"

उस रमणीके मुखसे उसका पूरा परिचय पाकर, महाराजा शान्तनु दासराजके पास गये और उन्होंने उसकी कन्याके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुनकर वह धीवर, शान्तनुको, अपनी कन्या देनेके लिये प्रस्तुत तो हो गया; परन्तु उसने उन्हें यह प्रतिज्ञा करनेके लिये कहा, कि 'सत्यवतीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो, उसेही वे अपने पश्चात्, हस्तिनापुरका, राजा बनायें। दासराजकी उक्त बात सुनकर महाराज बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। सारी प्रजा एक स्वरसे जिसकी निरन्तर प्रशंसा किया करती है, बड़े-बड़े विद्वान् जिसके शास्त्र-ज्ञानपर मुग्धसे रह जाते हैं, जिसकी वीर-कीर्त्ति संसार-भरमें व्याप्त है, जो साक्षात् विनयका अवतार है, ऐसे, अपने पुत्र, देवव्रतके भविष्यकी बात यादकर, वे दासराजके प्रस्तावित वचनमें न बँध सके और राजधानीमें लौट आये।

SHRI SANMATI LIBRARY
JAIPUR.

भीष्म-प्रतिज्ञा।

"जल, अग्नि, सूर्य्य आदि अपना गुण छोड़ दें, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा अटल रहेगी।"

[पृष्ठ—१७]

Burman Press, Calcutta.

युवराज देवव्रतके सिवा शान्तनुके दूसरा कोई पुत्र न था। कुलकी वृद्धि और स्थितिके लिये एक पुत्र और चाहिये, इसी विचारसे महाराजने दूसरा विवाह करनेका संकल्प किया था; पर उस संकल्पमें बाधा उपस्थित होती देख वे, वहाँसे, घर तो लौट आये; तथापि उस अनुपम सुन्दरी सत्यवतीकी याद न भूल सके। सत्यवतीकी चिन्तासे उनका मुख-मण्डल मलिन और प्रभा-हीन हो गया। देवव्रत, पिताकी अवस्थाके, इस विचित्र परिवर्त्तनका कारण जाननेके लिये उत्सुक हो उठे। अनन्तर अपने परम हितैषी मन्त्रीके मुहँसे सब समाचार सुन, अनेक गण्य-मान्य सामन्तों और सभ्य पुरुषोंको साथ लेकर, वे स्वयं, सत्यवतीके पिता, दासराजके पास गये और उन्होंने उससे, पिताके लिये, सत्यवतीकी प्रार्थना की। दासराजने, देवव्रतकी बात सुनकर, महाराजा शान्तनुसे जोकुछ कहा था, वही देवव्रतसे भी कह सुनाया। वह बोला,—"राजकुमार! आप महाराजा शान्तनुके कुल-भूषण हैं। आप जैसा सुयोग्य पुत्र भगवान् सबको दें। आप स्वयं विचार कर देखें, कि ऐसा सुन्दर सम्बन्ध छोड़कर कौन पश्चात्ताप न करेगा? पर, कन्याके मङ्गलके लिये, मैं आपसे एक बात कहता हूँ, उसे आप ध्यानसे सुनें। इस सम्बन्धके स्थापित होनेपर आपके साथ, सत्यवतीकी, घोर शत्रुता हो जायेगी; क्योंकि जिसके पुत्रके आप सौतेले भाई होंगे, उसके साथ आपका वैर-भाव हो जाना स्वाभाविकही है। बस, इस सम्बन्धमें यही एक बड़ी भारी अड़चन है।"

भीष्म-प्रतिज्ञा।

धर्म्मपरायण, महावीर देवव्रत झट, दासराजका अभिप्राय समझ गये। पर वे जब पिताके ऊपर प्राणतक न्योछावर करनेको तैयार

थे, तब उनके लिये, कोई महात्याग कर दिखाना, कौनसी बड़ी बात थी ? इस लिये, दासराजके कठोर वचन सुनकर भी, उनके मनमें कुछ विकार उत्पन्न न हुआ ! उस समय पितृ-भक्त, महात्मा देवव्रतने जिस असाधारण महानुभावता, अलौकिकता, स्वार्थ-त्याग और असामान्य उदारताका परिचय दिया, वह इस स्वार्थ-परायण संसारमें अत्यन्त विरल है। उन्होंने अपना दाहिना हाथ ऊँचे उठाकर मेघके समान गम्भीर स्वरसे कहा,—"दासराज ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो। मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ, कि सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ बालकही पिताकी सारी सम्पत्तिका अधिकारी होगा। मैं उसीको कुरु-राज्यका स्वामी मानूँगा। तुम निस्सङ्कोच होकर अपनी कन्या, मेरे पिताको, दान करदो।"

दासराज हाथ जोड़कर बोला,—"हे सत्यवादिन् ! आपने, सत्यवतीके लिये, जो प्रतिज्ञा की है, वह आपकेही योग्य है। आप जैसे महानुभाव और सत्यव्रती हैं, उससे निश्चय है, कि आपका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता ; परन्तु आपके पुत्र भी आपकी इस प्रतिज्ञाका ध्यान रखेंगे, इसमें मुझे पूर्ण सन्देह है। मेरी समझमें आपकी बातपर अटल रहना उनके लिये कठिन होगा।"

देवव्रत,—"हाँ, तुम्हारा यह कहना ठीक है। अच्छा, मैं इन सर्व-नीतिज्ञ पुरुषोंको साक्षी बनाकर कहता हूँ, कि मैं जीवन-भर, अविवाहित रहकर, ब्रह्मचर्य्य-व्रतका पालन करूँगा ! पुत्रके लिये पिता आराध्य देवताके समान है। शास्त्रोंका कथन है, कि 'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व-देवताः' (पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं) पिताकी प्रसन्नताके लिये मैं आज इस कठोर वचन-पाशमें बँधता हूँ। निःसन्तान होनेपर भी मैं स्वर्ग प्राप्त कर सकूँगा। मेरा वचन कभी झूठा न होगा। चाहे जल, अग्नि और

सूर्य आदि अपना स्वाभाविक गुण छोड़ दें, परन्तु मेरी बात—मेरी प्रतिज्ञा—सदा अटल रहेगी।"

देवव्रतकी ऐसी भीषण प्रतिज्ञा सुनकर, जितने लोग वहाँ उपस्थित थे, सभी चकित और विस्मितसे हो रहे। यह देख, दासराजने अपनी कन्या राजकुमारके हवाले कर दी। उपस्थित व्यक्ति, देवव्रतका वह अलौकिक स्वार्थ-त्याग और पितृ-भक्तिकी पराकाष्ठा देखकर, सहसा स्तम्भित हो गये। जिसने राजकुमारकी इस प्रतिज्ञाको सुना, वही अत्यन्त प्रसन्न हो, गद्गद-कण्ठसे, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा! ऐसी विकट प्रतिज्ञा, ऐसे असम-साहसिक कार्य और ऐसे अलौकिक स्वार्थ-त्यागके कारण युवराज देवव्रत, उसी दिनसे, संसारमें "भीष्म"के नामसे प्रसिद्ध हुए। अस्तु।

देवव्रत, सत्यवतीको साथ लेकर, पिताके पास गये और उन्होंने बड़ी नम्रतासे सारा हाल उनसे कह सुनाया। महाराजा शान्तनुने, अपने प्रिय पुत्रकी इस असाधारण प्रतिज्ञा और दुःसाध्य कार्यको देख, परम सन्तुष्ट होकर, उन्हें 'इच्छा-मृत्यु'का वरदान दिया। वे बोले,—"पुत्र! तुम्हारी इच्छा-मृत्यु होगी, अर्थात् यदि तुम अपने मनसे न मरना चाहो, तो मृत्युका तुमपर कुछभी ज़ोर न चलेगा।"

अनन्तर महाराजा शान्तनुने, विधि-पूर्वक, सत्यवतीका पाणि-ग्रहण किया। कुछ काल बाद, सत्यवतीके गर्भसे, एक परम सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। पुत्रका मुख देखकर शान्तनुके आनन्दकी सीमा न रही! कुरु-राजने नवजात शिशुका नाम 'चित्राङ्गद' रखा। चित्राङ्गदने, भीष्मकी देख-रेखमें रहकर, धीरे-धीरे, अनेक शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्तकर लिया। भीष्मने स्वयंही उसे शस्त्र-विद्या सिखायी। महाराजा शान्तनु सुकुमार राजकुमारकी बुद्धि और शस्त्र चलानेकी निपुणता देख, बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ वर्षोंके बाद सत्यवतीने एक और पुत्र प्रसव किया। उसका नाम 'विचित्रवीर्य' रखा गया। विचित्रवीर्यकी शैशवावस्थामें ही महाराजा शान्तनु परलोक सिधार गये! भीष्मको पिताके वियोगसे बड़ा दुःख हुआ! पिताकी मृत्युके बाद भीष्मने, माता सत्यवतीकी आज्ञा लेकर, चित्राङ्गदको राज-सिंहासनपर बैठाया। चित्राङ्गद, पिताके समानही, प्रबल-पराक्रमसे राज्य-शासन और प्रजा-पालन करने लगे। उस समय चारों दिशाओंमें हस्तिनापति चित्राङ्गदकी वीरत्व-वार्त्ता फैल गयी। समर-क्षेत्रमें शत्रुओंको परास्त करना और वीरता दिखानाही चित्राङ्गदका प्रधान कार्य हो गया। उन दिनों अनेक राजा लोग, डरके मारे, उनके आगे सिर झुकाया करते थे।

गन्धर्वोंके एक राजाका नाम भी 'चित्राङ्गद'ही था। वह एक बार सेना सहित हस्तिनापुरपर चढ़ आया और उसने कुरु-राज चित्राङ्गदको युद्धके लिये ललकारा। कुरु-क्षेत्रमें, पवित्र-सलिला सरस्वतीके तटपर, दोनों दलोंमें घोर युद्ध हुआ। इसी युद्धमें कुरु-राज चित्राङ्गद वीर-गतिको प्राप्त हुए!

चित्राङ्गदके मरतेही भीष्मने, शीघ्रही, बालक विचित्रवीर्यको राज-सिंहासनपर बैठा दिया। विचित्रवीर्य भी, भीष्मके आदेशानुसारही, राज-काज करने लगे। वे अपने पूज्य भ्राता महात्मा भीष्मका बड़ा आदर-सम्मान करते थे। भीष्म भी उन्हें सदा अच्छे-अच्छे उपदेश दिया करते थे।

धीरे-धीरे विचित्रवीर्यने युवावस्थामें पदार्पण किया। अब भीष्मको उनके विवाहकी चिन्ता हुई। इसी बीचमें उन्होंने सुना, कि काशिराजकी तीन कन्याओंका, शीघ्रही, स्वयंवर होनेवाला है। काशिराजकी तीनों कन्याएँही अनुपम सुन्दरी थीं। भीष्मने उन

तीनों कन्याओंका विवाह विचित्रवीर्यके साथ कराना चाहा। अनन्तर सत्यवतीसे इस विषयमें अनुमति ले, वे अनेक सैन्य-सामन्तोंके साथ, रथमें बैठकर काशी पहुँचे।

भीष्मकी विजय।

यथा-समय स्वयंवर-सभा हुई। भीष्मने स्वयंवर-सभामें जाकर देखा, कि मण्डपमें चारों ओर उज्ज्वल सिंहासन रखे हैं, जिनपर अनेक देशोंके राजा और राजकुमार बड़े ठाट-बाटसे बैठे हुए हैं। सभा-मण्डप, सुगन्धित द्रव्योंकी सुमधुर गन्धसे, सुवासित हो रहा है। तीनों राजकुमारियाँ, बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण किये, मण्डपके बीचमें, रूपकी ज्योति छिटकाती हुई, सुशोभित हैं।

जब वन्दीजन उपस्थित राजपुरुषोंका कुल-परिचय दे चुके, तब भीष्मने खड़े होकर कहा,—"राजगण! सुनिये, मैंने तो जीवन-भर अविवाहित रहनेकी प्रतिज्ञाही कर ली है, अतः मैं इन कन्याओंके साथ अपना विवाह करना नहीं चाहता। मेरा छोटा भाई, विचित्र-वीर्य, जो एक सुविस्तृत राज्यका स्वतन्त्र अधिपति है, अब जवान होगया है। जैसा सुन्दर उसका रूप है, वैसेही उसमें गुण भी हैं। मैं उसीके साथ इन तीनों कन्याओंका विवाह करना चाहता हूँ; क्योंकि कुरु-राज विचित्रवीर्यही इन सुन्दरियोंके योग्य वर हैं।"

यह कह उन्होंने, बड़े आदरके साथ, तीनों कन्याओंको उठाकर रथपर बैठा लिया और आप फिर सभामें आ, इस प्रकार कहने लगे,—"जो राजा इन कन्याओंके साथ विवाह करना चाहते हों, वे मुझे युद्धमें परास्तकर इन्हें ले जा सकते हैं। मैं युद्धके लिये तैयार हूँ।" यह कहकर उन्होंने सारथिको अपना रथ हाँकनेकी आज्ञा दी।

इस अनहोनी घटनाके कारण सभा-मण्डपमें महान् कोलाहल

मच उठा। सारे राजाओंने क्रुद्ध होकर, अपने-अपने, अस्त्र निकाल लिये। सभा-क्षेत्रमें, चारों ओर, अस्त्र-शस्त्रोंकी झनकार सुनाई देने लगी। कुछही देर पहले जहाँ विवाहकी चहल-पहल थी, वहाँ अब रथोंकी गड़गड़ाहट और शस्त्रोंकी झनझनाहट सुनाई देने लगी। दोनों पक्षोंमें घोर युद्ध छिड़ गया; पर जीत महाबली भीष्मकीही हुई। भीष्मके बल-विक्रमके आगे सब राजाओंको हार माननी पड़ी! पराजित राजा, लज्जित और अपमानित हो, अपने-अपने घर लौट गये। महात्मा भीष्म, उन तीनों कन्याओंको लिये हुए, निर्विघ्न, हस्तिनापुरमें चले आये।

इसके बाद भीष्म, सत्यवतीके परामर्शानुसार, भाईके विवाहकी तैयारियाँ करने लगे। इसी बीच काशिराजकी बड़ी कन्या अम्बाने, सिर नीचा करके, भीष्मसे कहा,—"महाराज! मैं पहलेसेही अपने मनमें शाल्व-राजको अपना पति मान चुकी हूँ। शाल्व भी मेरे साथ विवाह करनेका वचन दे चुके हैं। मेरे पिता भी यही चाहते थे; किन्तु आप मुझे अपने बल-विक्रम द्वारा यहाँ ले आये; अतएव अब न्याय और धर्म्मसे आपको जो उचित जान पड़े, वही कीजिये।"

अम्बाकी बात सुन भीष्मने कहा,—"यदि ऐसीही बात है, तो मैं तुम्हारी इच्छाके प्रतिकूल कोई काम नहीं किया चाहता। जब तुम शाल्वको, पति-रूपसे, वरण कर चुकी हो, तब उन्हींकी सहधर्म्मिणी बनकर आनन्दसे उनके पास जा रहो। इसमें मैं कुछ भी हस्तक्षेप न करूँगा।" यह कह उन्होंने उसे, यथोचित आदर और सम्मानके साथ, शाल्व-राजके पास भिजवा दिया। अनन्तर उन्होंने अम्बिका और अम्बालिका नामकी शेष दोनों कन्याओंके साथ विचित्रवीर्यका विवाह कर दिया। सत्यवती, पुत्रके योग्यही पुत्र-वधुओंको पाकर, प्रसन्नता प्रकट करने लगीं। पुरवासी लोग

भी बड़े आनन्दित हुए। सारे कुरु-राज्यमें, इस विवाहके उपलक्ष्यमें, कुछ दिनोंतक, नाना प्रकारके, आमोद-उत्सव होते रहे।

अब विचित्रवीर्य, बड़े प्रेमसे, दोनों रानियोंके साथ, सुख-पूर्वक रहने लगे। रानियोंने भी परम रूप-गुण-सम्पन्न पति पाकर ईश्वरको हार्दिक धन्यवाद दिया; किन्तु दुर्भाग्यवश विचित्रवीर्यको यौवनावस्थामें-ही क्षय-रोगने धर दबाया! धीरे-धीरे विचित्रवीर्य बहुतही निर्बल हो चले। कुल-वंशके लिये बड़ीही चिन्ताका समय आ उपस्थित हुआ; क्योंकि भीष्म तो जीवन-भर ब्रह्मचारीही रहेंगे और विचित्रवीर्यकी यह दशा है! फिर वंशकी रक्षा कैसे हो सकेगी? महाराज शान्तनुने जिस डरसे दूसरा विवाह किया था, वही इस समय प्रत्यक्ष रूप धारण किये खड़ा है! इसीसे कहते हैं,—'है है वही जो राम रचि राखा।' विचित्रवीर्यकी चिकित्सा करानेमें भीष्मने कोई बात उठा न रखी, पर परिणाम उलटाही हुआ। विचित्रवीर्य, तरुण अवस्थामेंही, घरवालों-को शोक-सागरमें डुबोकर, चल बसे! सत्यवती, पुत्र-शोकसे व्याकुल हो, विलाप करने लगी। अम्बिका और अम्बालिका, सिर धुन-धुनकर, रुदन करने लगीं। भीष्म भी भाईके वियोगसे कातर हो उठे। इस प्रकार राज-भवनमें शोककी काली घटा छा गयी!

कुछ दिनों बाद, दुःख-शोकके वेगको रोककर, सत्यवतीने भीष्मसे कहा,—"वत्स! दुर्भाग्यवश ऐसा समय उपस्थित हुआ है, कि जिससे सदाके लिये वंश-बेलिका लोप हुआ चाहता है। यदि तुम इस ओर उचित ध्यान न दोगे, तो कुरु-वंश सदाके लिये नष्ट हो जायेगा। यद्यपि दोनों बहुएँ गर्भवती हैं, तथापि कौन कह सकता है, कि उनके पुत्र होगा वा पुत्री? अतः इस समय तुम्हीं राज-पाट सम्हालो। तुम धर्मज्ञ हो—परम नीतिज्ञ हो; इस समय तुम्हारे सिवा इस राज्यका कोई देखने-सुननेवाला नहीं है।"

भीष्मने कहा,—"माता! तुम यह क्या कहती हो? क्या तुम नहीं जानतीं, कि मेरी प्रतिज्ञा कैसी कठिन है? मेरी प्रतिज्ञा अचल-अटल है। उसके अनुसार मैं तुम्हारी इस आज्ञाको पालन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। यदि मैं ऐसा करूँगा तो, धर्म-भ्रष्ट होकर, नरक-गामी बनूँगा; कलङ्क लगेगा, सो अलग। तुम तो जानतीही हो, कि इस संसारमें कोई वस्तु चिरस्थायिनी नहीं है। जो जन्मेगा, वह अवश्य मरेगा। ईश्वरके कामोंमें किसीका चारा नहीं है। विचित्रवीर्यकी स्त्रियोंके जब सन्तान होने वाली है, तब तुम्हें उचित है, कि धैर्यके साथ, उस शुभ घड़ीकी बाट जोहती रहो और दीन-बन्धु भगवानसे प्रार्थना करो, कि वे हमारे इस उजड़ते हुए वंश-वृक्षको फिरसे पल्लवित करें।"

धृतराष्ट्र-पाण्डु-जन्म।

महावीर भीष्म, इस प्रकार सत्यवतीको समझा-बुझा और उसके हृदयका शोक हलका कर, भतीजोंके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगे।

समय आनेपर, विचित्रवीर्यकी दोनों विधवा स्त्रियोंके गर्भसे एक-एक पुत्र जन्मा। भीष्मने सानन्द उन दोनोंके जात-कर्मादि संस्कार करके अम्बिकाके पुत्रका नाम 'धृतराष्ट्र' और अम्बालिकाके पुत्रका नाम 'पाण्डु' रखा। दुर्भाग्यवश धृतराष्ट्र जन्मान्ध निकले! भीष्मने उन दोनोंका, अपनेही पुत्रोंके समान, लालन-पालन करना आरम्भ किया। यद्यपि धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, तोभी भीष्मने उन्हें राज-कुलोचित शिक्षा देनेमें त्रुटि न की। दोनों कुमारोंका, यथासमय, उपनयन हुआ और वे विद्याभ्यासके लिये आचार्यके पास भेजे गये। भीष्मकी देख-रेखमें रहनेसे धृतराष्ट्र और पाण्डु, शस्त्र-संचालनमें, कुशल हो गये। दोनों कुमारोंमें पाण्डु अद्वितीय धनुर्धर और

धृतराष्ट्र परम बलशाली समझे जाने लगे। कुमारोंको इस प्रकार, सर्वगुण-सम्पन्न हुआ, देखकर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए। धृतराष्ट्र, बड़े होनेपर भी, जन्मान्ध होनेके कारण, राज-सिंहासनपर न बैठाये गये। पाण्डुनेही गद्दी पायी।

अनन्तर धृतराष्ट्रके साथ गान्धार-राज-कन्या, 'गान्धारी'*का और पाण्डुके साथ यदुवंशी राजा शूरसेनकी कन्या 'कुन्ती' एवं मद्रराज-पुत्री 'माद्रीका' विवाह हुआ। कुन्ती और माद्रीका परस्पर सौतका नाता होनेपर भी, थोड़ेही दिनोंके भीतर दोनोंमें सच्चा सौहार्द उत्पन्न हो गया। दोनों, सौतिया-डाहको त्यागकर मन-वचन-कर्मसे, पति-सेवा करने लगीं। गान्धारी भी मन लगाकर सदैव अपने प्रिय पतिको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा किया करती थीं। विवाह होनेसे पहलेही जब उन्होंने अपने भाई शकुनिसे सुना, कि उनके पति अन्धे हैं, तभीसे उन्होंने भी अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध ली थी! तीनों बहुओंके शील और सदाचारसे सभी लोग प्रसन्न रहते थे। सत्यवती, ऐसी गुणवती बहुओंको पाकर, बड़ी प्रसन्न थी।

विचित्रवीर्यकी एक दासीके पुत्रका नाम था विदुर। विदुर, दासी-पुत्र होनेपर भी, बड़ेही धार्मिक और बुद्धिमान् थे। कुरु-वंशी उनकी उदारता, गम्भीरता तथा असामान्य धर्म्मानुरागिताको देख, उन्हें बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखा करते थे। सब लोगोंकी विदुरपर बड़ी श्रद्धा थी और वे जो कुछ कहते, उसका सबलोग बड़ा आदर करते थे; क्योंकि उन्होंने भीष्मसेही शिक्षा पायी थी। भीष्मनेही उनका भी लालन-पालन किया था; अतः धृतराष्ट्र और पाण्डु भी उनको अपना भाईही समझते थे। विदुरका बुद्धि-कौशल, नीति-ज्ञान और

---

*यदि आप 'गान्धारी'के अद्भुत पातिव्रत्य-बलका आश्चर्य-जनक हाल पढ़ना चाहते हों, तो हमारे यहांसे 'सती गान्धारी' नामक पुस्तक मँगा देखिये।

धर्म-भाव अपूर्व था। वे कुरु-राजके परामर्श-दाता थे। धृतराष्ट्र और पाण्डुका विवाह होजानेपर भीष्मने विदुरके विवाहका भी प्रबन्ध किया। इस कार्यमें भी भीष्मके स्नेह और प्रीतिका अपूर्व परिचय पाया गया। भीष्मकी दृष्टिमें वे, धृतराष्ट्र और पाण्डुसे, कम नहीं थे। वे जैसे धर्म-प्राण और शान्त-स्वभाव थे, वैसीही धर्मानुरागिणी और सौन्दर्यशालिनी कुमारी खोजकर भीष्मने उनका विवाह कराया। उनका विवाह सुबल-राज-कन्या 'पारा-शवी'के साथ हुआ।

बहुत दिनोंतक, बड़े आनन्दसे सबका जीवन व्यतीत होता रहा। तदनन्तर एक बार, जब शरत्काल आया, आकाश मेघशून्य और रास्ते साफ़ हो गये, मार्गका कीचड़ सूख गया, तब पाण्डुने दिग्विजयकी ठहरायी और अपना अभिप्राय भीष्मपर प्रकट किया। भीष्मने पाण्डुके इस प्रस्तावका हृदयसे अनुमोदन किया। शुभ-घड़ी और शुभ-मुहूर्त्तमें पाण्डुने दिग्विजय-यात्रा की। अमित-पराक्रम पाण्डु जहाँ-जहाँ गये, वहीं उनकी विजयका डङ्का बज उठा—सर्वत्र उनकी असामान्य क्षमताका परिचय पाया जाने लगा! देश-देशान्तरोंके नरेश, पाण्डुकी अधीनता स्वीकारकर, उनको बहुमूल्य उपहार ला-लाकर देने लगे। इस प्रकार कुरु-राज अपनी असाधारण वीरतासे, वीर-भोग्या-वसुन्धराको हस्त-गतकर, अनेक उपहार साथ लिये, अपनी राजधानीमें लौट आये।

पाण्डुके आगमनकी सूचना पाकर भीष्मके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने मन्त्रियों, सामन्तों और नगरके प्रतिष्ठित पुरुषोंके साथ कुरु-राजका स्वागत किया और गले लगकर भुवन-विजयी पाण्डुसे कुशल पूछी। पाण्डुने विजय-गौरवसे उन्नत होनेपर भी, नम्रता-पूर्वक, भीष्मके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनके साथ जो

लोग आये थे, उनसे यथायोग्य व्यवहार किया। आनन्दसे चारों दिशाएँ खिल उठीं। ब्राह्मणगण, हाथ उठा-उठाकर, आशीर्वाद देने लगे। जगद्-विजयी पाण्डुकी कीर्त्ति दिगन्तव्यापिनी हो गयी। इस प्रकार, आमोद-प्रमोद और धूमधामके साथ, राजर्षि भीष्म, पाण्डुको नगरके भीतर ले आये। राज-भवनमें आकर पाण्डुने सत्यवती आदिको यथायोग्य अभिवादन किया। कुन्ती और माद्रीके आनन्दकी सीमा न रही। विजयी पाण्डुके आगमनसे सब लोग प्रसन्न हो उठे।

धीरे-धीरे कुरु-कुलकी शाखा-प्रशाखाएँ बढ़कर फैलने लगीं। पाण्डु-महिषी कुन्तीके तीन और माद्रीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उधर महर्षि वेदव्यासके वरसे धृतराष्ट्र-पत्नीके, एक साथ, सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार पाण्डु और धृतराष्ट्र दोनोंकोही यथेष्ट सन्तान-सुख प्राप्त हो गया। कुन्तीके तीनों पुत्रोंके नाम पड़े—'युधिष्ठिर' 'भीम' और 'अर्जुन'। माद्रीके दोनों पुत्रोंमेंसे बड़ेका नाम 'नकुल' और छोटेका 'सहदेव' रखा गया। धृतराष्ट्रके पुत्रोंके क्रमशः 'दुर्योधन' 'दुःशासन' 'विकर्ण' आदि नाम रखे गये। कुछ दिनों बाद, गान्धारीके एक कन्या हुई। उसका नाम 'दुःशला' रखा गया। आगे चलकर पाण्डुके पुत्र "पाण्डव" और धृतराष्ट्रके पुत्र "कौरव"के नामसे प्रसिद्ध हुए।

पाण्डुका स्वर्ग-वास।

अभी पाण्डुके पाँचों कुमार, पूर्णतया, शिक्षित और युवा भी न होने पाये थे, कि महाराजा पाण्डु स्वर्ग सिधार गये! पाण्डुकी यह मृत्यु अकाल थी और इस अकाल मृत्युका कारण, महाभारतमें, इस प्रकार लिखा है,—

एक बार महाराजा पाण्डु, वन-विहार करनेकी इच्छासे, हिमालयकी दक्षिणी तराईमें, अपनी दोनों रानियोंके साथ गये। उस

समयतक उनके उक्त राजकुमारोंका जन्म नहीं हुआ था। एक दिन उन्होंने, शिकार खेलते-खेलते, किसी विकट वनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्हें हिरनका एक जोड़ा, विहार करता हुआ, दिखाई दिया। यह उनसे, न मालूम क्यों, बर्दाश्त न हुआ और उन्होंने फ़ौरन, एक तीर मारकर, हिरनको गिरा दिया। वास्तवमें हिरनोंका यह जोड़ा बनावटी था। एक ऋषि-दम्पती, हिरन-हिरनी बनकर, वनमें क्रीड़ा कर रहे थे। महाराजा पाण्डुका तीखा तीर लगतेही वह हिरन, वेदनाके मारे, एकदम व्याकुल हो उठा। उसके शरीरसे प्राण निकलने लगे। वह मानव-स्वरसे चिल्लाने लगा। मनुष्य जैसी इस चिल्लाहटको सुनकर महाराजा पाण्डुको मालूम हुआ, कि हिरनके धोकेमें, उन्होंने, किसी ब्राह्मण-कुमारकी हत्या कर डाली है! अब तो वे बेतरह डरे। डरते-डरते वे उस, आसन्न-मृत्यु, ऋषि-कुमारके पास गये और व्याकुलतासे भरे वचनों द्वारा, अपने अपराधकी, क्षमा माँगने लगे। पाण्डुके कातर वचनोंको सुनकर ऋषि-कुमारने कहा,—"महाराज! आपने मुझे पहचाना नहीं। आपने यह न जाना, कि मैं ब्राह्मण हूँ। यदि आप जानते, तो कभी तीर न चलाते। अतः मेरी इस हत्यामें आपका अधिक दोष नहीं है। किन्तु आपने एक ऐसे कुलमें जन्म लिया है, जो सब तरहसे निष्कलङ्क और उज्ज्वल है। फिर कैसे आपको विहार करते हुए हिरनोंपर बाण चलानेकी इच्छा हुई? ऐसे अवसरपर भी क्या कोई समझदार आदमी, किसी जीवके जोड़ेको मारनेका यत्न करता है?"

राजाने लज्जित होकर कहा,—"ऋषे! शिकार खेलते समय हिरनको देखतेही, उसपर तीर चलानेकी मुझे आदतसी पड़ गयी है। इसीसे मैंने, बिना सोचे-समझे, आपपर तीर छोड़ दिया। शिकारका नियमही ऐसा है, फिर क्यों आप मुझे अपराधी समझते हैं?"

ऋषि-कुमारने कहा,—"राजन्! आपका यह तर्क एकदम निकम्मा है। अपने बचावके लिये इस तरहकी बातें करना, आपको शोभा नहीं देता। अस्तु; 'आपने मुझे हिरन समझकरही मारा है, इसलिये आपको ब्रह्म-हत्याका पाप नहीं लग सकता। परन्तु स्त्रीके साथ विहार करनेवाले हिरनको मारकर आपने बड़ी निष्ठुरताका काम किया है। अतएव इस निष्ठुरताका फल आपको अवश्यही भोगना पड़ेगा। जाइये, मैं आपको शाप देता हूँ, कि आपकी मृत्यु भी रानीके साथ क्रीड़ा करते समयही होगी।"

यह कहकर ऋषि-कुमार मर गया। पाण्डु, ऋषि-कुमारके उक्त शापको सुनकर, बड़े दुःखित हुए, पर करही क्या सकते थे? यह तो उनके कर्मका भोग था। इसलिये वे, तत्काल, वहाँसे लौट आये और मृगया-निवासमें आकर, उन्होंने, आजकी घटनाका सारा हाल रानियोंसे कह सुनाया। अब उनके मनमें संसारसे वैराग्य हो गया। इस वैराग्यमें रानियोंने भी उनका साथ दिया। सारे राजसी सामान, उसी समय, गरीब ब्राह्मणोंको दान कर दिये गये। राजधानीमें संवाद भेज दिया गया, कि "आजसे महाराज वन-वासी हो गये हैं। वे अब हस्तिनापुर न लौटेंगे।" अस्तु।

महाराजा पाण्डुने अपनी इन्द्रियोंको वशमें रख, वनमें कुटी बनाकर, बहुत दिनों तक घोर तपस्या की, जिससे उनकी गणना महर्षियोंमें होने लगी।

यहींपर महारानी कुन्तीने, धर्म, वायु और इन्द्र, इन तीन देवताओंको प्रसन्न कर, प्रसाद रूपमें, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनको प्राप्त किया था। साथही उन्होंने अश्विनीकुमारोंकी कृपासे माद्रीको भी 'नकुल' और 'सहदेव' नामक दो पुत्रोंकी प्राप्ति करायी थी।

ऋषि-कुमारकी मृत्यु हुए बहुत दिन बीत गये थे, इसलिये पाण्डु

उसके दिये हुए शापकी बात भी भूल गये। उन दिनों वसन्तकी सुहावनी ऋतु थी। वन-देवीने बड़ाही लुभावना रूप धारण कर रखा था। इस शोभाने पाण्डुका मन अपनी ओर खींच लिया। अतएव वे अपनी छोटी रानी माद्रीके साथ, वनकी सैर करने चल दिये। जहाँ सुन्दरता मूर्तिमान होकर विराज रही थी, वहीं पाण्डुका मन विहार करनेके लिये छटपटाने लगा। माद्री साथही थी; अतएव विहार करतेही, उस ऋषिके शापसे, अचानक महाराज पाण्डुकी मृत्यु हो गयी!

पाण्डुकी मृत्युसे समस्त कुरु-साम्राज्यमें शोक छा गया। सत्यवती और भीष्म तो शोक-सागरमें डूबसे गये। कुन्ती और माद्रीके लिये संसार अन्धकारमय दीखने लगा। वे दोनों जनी, उनकी मृत-देहके साथ, सती होनेको उद्यत हुईं। तब माद्रीने कुन्तीसे कहा,—

"बहिन! मैं सांसारिक कार्योंसे अनभिज्ञ हूँ; अनजान हूँ। तुम बड़ी हो—साथही विदुषीभी हो। सन्तान-पालन जैसा दु:साध्य कार्य मुझसे न हो सकेगा। अत: तुम तो अपने इन पाँचों पुत्रोंका पालन-पोषण करो और मैं स्वामीके साथ सती होती हूँ।" यह कहकर पतिप्राणा माद्री, मृत-पतिके साथ, चितामें जल गयीं। कुन्ती छोटे-छोटे बच्चोंकी देख-रेखके लिये जीवित रहीं।

पाण्डुके स्वर्ग-सिधार जानेके बाद भीष्म, अपनी स्वाभाविक उदारता और समदर्शिताके साथ, युधिष्ठिरादि कुमारोंकी देख-रेख करने लगे। इधर पाण्डुकी मृत्युसे सत्यवतीके मनमें बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे अपनी वधू अम्बिका और अम्बालिकाके साथ, वनमें चली गयीं। पवित्र-सलिला भागीरथीके तटपर जाकर उन्होंने तपस्या की और उसी शान्त-रस-भरे पवित्र स्थानमें, योगाभ्यास द्वारा, शरीर-त्यागकर परलोक-गमन किया। अब अन्धराज धृतराष्ट्रही, हस्तिनापुरके राज-सिंहासनपर बैठकर, राज-कार्य चलाने लगे।

पाण्डवोंका बाल्य-काल ।

इधर युधिष्ठिरादि पाँचो पाण्डव, हस्तिनापुरके राज-भवनमें पलते हुए, धीरे-धीरे बड़े होने लगे। उन सबका सीधा-सादा स्वभाव और सदाचार देख, कुन्ती, पति-वियोगका, सारा दुःख-शोक भूल-कर, आनन्द और सन्तोष-रसका स्वाद चखने लगीं। यथा-समय सब कुमारोंके उपनयनादि संस्कार हुए। पाँचो पाण्डवोंमें ज्येष्ठ युधिष्ठिर बड़े उदार, धर्मात्मा और सरल-चित्त थे। उनका शान्त स्वभाव, सरलता-पूर्ण मुख और धार्मिक भाव देख, ऐसा मालूम होता था, मानो साक्षात् धर्मराज, मनुष्य-मूर्ति धारणकर, इस धराधामपर अवतीर्ण हुए हैं। उधर धृतराष्ट्रका ज्येष्ठ पुत्र, दुर्योधन, बड़ा क्रूर, पापाचारी और ऐश्वर्य-लोलुप हुआ। युधि-ष्ठिरादि पञ्च पाण्डव तो बड़े उत्साहसे वेदादि शास्त्र पढ़ा करते थे; परन्तु दुर्योधन शास्त्राभ्यासमें उनके जैसा मन नहीं लगाता था। वह क्रमशः ऐश्वर्य्यके मदसे मतवाला हो, सङ्कोच त्यागकर, बड़ोंका भी अपमान करने लगा। युधिष्ठिरादि पाँचो पाण्डव उसे शत्रु दीख पड़ते थे। वह उनसे सदाही रूखा और दुश्मनों जैसा व्यवहार किया करता था। यहाँतक, कि उसने भीमको, अत्यन्त बलवान् देख और भविष्यमें अपनी उन्नतिका बाधक समझ, एक-बार छलसे, ज़हर देकर, गङ्गामें डुबो दिया था। कुशल यह हुई, कि जलकी शीतलतासे उनका ज़हर उतर गया और कई दिनों बाद, वे जीते-जागते घर लौट आये। भीष्मने, दुर्योधनके इन कर्मोंको देख, उसे अनेक प्रकारसे समझाया-बुझाया; परन्तु दुर्योधन सदा नीच-स्वभाव ही बना रहा।

कुन्ती, अपने पुत्रोंके प्रति दुर्योधनके उक्त व्यवहारको देख,

बड़ी दुःखित हुईं। उन्होंने महात्मा विदुरसे, युधिष्ठिरादिके प्रति दुर्योधनका शत्रु-भाव दिखलाते हुए, बहुत दुःख प्रकट किया। सब कुछ सुनकर विदुरने कहा,—"यदि ऐसा है, तो तुम बड़ी सावधानीसे अपने पुत्रोंकी देख-रेख करो। सबके सामने दुर्योधनकी निन्दा न किया करो; क्योंकि ऐसा करनेसे वह दुरात्मा उत्तेजित होकर पहलेसे भी अधिक उपद्रव करने लगेगा।"

भीष्म, युधिष्ठिरादि कुमारोंके धर्मभाव और सदाचारसे जितने प्रसन्न होते थे, दुर्योधनके कपटाचरण और पापाचारको देख, उतनेही दुःखी रहते थे। गुरुने सबको एकसा उपदेश दिया था, पर पात्रभेदसे फल-भेद हुआ। शास्त्रीय उपदेशोंसे युधिष्ठिरादि पाण्डव जैसे प्रसन्न, प्रशान्त और बुद्धिमान्—अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेवाले—हुए; दुर्योधनादि कौरवगण, उससे सर्वथा विपरीत बन गये। उनमें आलस्य, अशान्ति और अबोध भाव बढ़ने लगा।

एक दिन कौरव-पाण्डव, नगरके बाहरवाले मैदानमें, लोहेकी गदसे परस्पर खेल रहे थे। खेलते-खेलते वह गेंद एक, जल-शून्य, गहरे कुएँमें जा गिरी। कुमारोंने बहुतेरा चाहा, कि गेंदको कुएँसे निकाल लें; परन्तु उनका सारा परिश्रम व्यर्थ हुआ। इसी समय उधरसे एक वृद्ध ब्राह्मण जा रहे थे। उन्हें देख, सब कुमार उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये और नम्र भावसे बोले,—"बाबा! हमारी गेंद कुएँसे निकाल दीजिये।"

वृद्ध ब्राह्मणने मुस्कराकर, उन कुमारोंसे कहा,—"बालको! तुम महाप्रतापी भरत-वंशमें उत्पन्न होकर भी, इस सामान्य जल-शून्य कुएँसे, गेंद नहीं निकाल सकते? इससे मालूम होता है, कि तुम्हें कुछ भी अस्त्र-शिक्षा नहीं मिली। अच्छा, देखो; मैं अभी तुम्हारी गेंदको किस आसानीसे निकाले देता हूँ।"

यह कह, उन ब्राह्मण देवताने कुशाका एक मूठा उखाड़ लिया और उसीकी तीर-कमान बनाकर, उसकी सहायतासे, गेंदको कुएँसे निकाल दिया। वृद्ध ब्राह्मणकी इस असाधारण सामर्थ्यको देखकर, कुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अनन्तर युधिष्ठिरने उनका परिचय पूछा, जिसके जवाबमें उन्होंने सिर्फ़ इतनाही कहा, कि—"बेटा! तुम अपने बाबा भीष्मसे, जाकर, मेरी सूरत-शक्ल और गुण आदि वर्णन कर देना।"

युधिष्ठिरने वैसाही किया। युधिष्ठिरके मुखसे सब हाल सुनकर, भीष्मने जान लिया, कि धनुर्वेदके महात्मा आचार्य द्रोण पधारे हैं। भीष्म तो चाहते ही थे, कि राजकुमारोंको अस्त्र-विद्या सिखानेके लिये कोई अच्छा शिक्षक मिल जाये। बस, उन्होंने प्रसन्न हो, बड़े आदरके साथ, आचार्य द्रोणको अपने यहाँ बुलवा लिया और उनसे राजकुमारोंके अस्त्र-गुरु बननेकी प्रार्थनाकी। भीष्मकी सुजनता और शिष्टतासे प्रसन्न होकर द्रोणने, बड़ी खुशीसे राजकुमारोंकी अस्त्र-शिक्षाका भार ग्रहण कर लिया।

पाण्डवोंकी अस्त्र-शिक्षा।

अब आचार्य द्रोण, हस्तिनापुरमें रहकर, कुरुवंशीय राजकुमारोंको अस्त्र-विद्या सिखाने लगे। यह संवाद सुन, महाराजा धृतराष्ट्रके सारथी, सुबलका पुत्र कर्ण और अन्यान्य राजकुमार भी शिक्षार्थी होकर, द्रोणके समीप आये। जो द्रोण, कल, मुट्ठीभर अन्नके लिये वन-वनकी खाक छानते फिरते थे, आज उनके पास अतुल सम्पत्ति होगयी। आज वे एक राजाके समान सुख-पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे! सच है,—'हीरेकी परख जौहरीही कर सकता है।' यदि आचार्य द्रोणको भीष्म जैसे गुण-ग्राही न मिलते,

तो उनकी, वह अनुपम अस्त्र-विद्या, उनके शरीरके साथ ही नष्ट हो जाती। लोग उनकी, साधारण आदमियोंके लिये दुर्लभ, तेजस्विताको देख, विस्मित न होते। भीष्मकेही कारण दशों दिशाओंमें उनकी कीर्त्ति फैली। आचार्यका धन-कष्ट दूर हुआ। इससे सन्तुष्ट हो, वे अपने शिष्योंको, अस्त्र-विद्या सिखाने लगे।

धनुर्विद्यामें अर्जुनकी सबसे अधिक उन्नति हुई। सूत-पुत्र कर्णने दुर्योधनसे दोस्ती करली और वह उसका रुख देखकर पाण्डवोंका अपमान करने लगा; क्योंकि धनुर्विद्यामें उसने भी काफ़ी तरक़्क़ी की थी। पर अर्जुनके समान वह भी न हो सका। आचार्य द्रोण, अर्जुनके हाथकी सफ़ाई देखकर, बड़े प्रसन्न होते और अर्जुनको आग्रह-पूर्वक शिक्षा दिया करते थे। आचार्यका परिश्रम सफल हुआ। कुछही दिनों बाद अर्जुन, बाण चलानेमें, अद्वितीय गिने जाने लगे।

एक बार आचार्यने, अपने शिष्योंके, लक्ष्य-भेद-कौशल या निशाना मारनेकी परीक्षा लेनेके लिये, एक ऊँचे वृक्षकी शाखापर, एक बनावटी पक्षी रखवा दिया। इसके बाद, उन्होंने, सब शिष्योंको बुलाकर उनसे कहा,—"बच्चो! तुम अपने-अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर, मेरी आज्ञाकी प्रतीक्षा करो। मैं एक-एक करके तुम्हारे हाथकी सफ़ाईका इम्तिहान लूँगा। देखो, मेरा वाक्य पूरा होते-न-होते, वृक्षकी शाखापर बैठे हुए, उस पक्षीकी गर्दन काट दो।"

आचार्यके आज्ञानुसार, युधिष्ठिर, सबसे पहले, धनुषपर बाण चढ़ाकर, खड़े हुए। तब आचार्यने उनसे पूछा,—"पुत्र! क्या तुम पेड़पर बैठे हुए उस पक्षीको देखते हो?"

युधिष्ठिरने जवाब दिया,—"हाँ, भगवन्! मैं उस पक्षीको अच्छी तरह देख रहा हूँ।"

अर्जुनका शर-सन्धान।

“बेटा! क्या तुम पक्षीका शरीर भी देखते हो?”

[पृष्ठ—३५]

Burman Press, Calcutta.

द्रोण,—"बेटा ! क्या तुम इस वृक्षके साथ-ही-साथ मुझे और अपने भाइयोंको भी देख रहे हो ?"

युधिष्ठिर,—"हाँ, महाराज ! सबको देख रहा हूँ।"

द्रोण,—"तो बस करो। तुम लक्ष्य-भेद नहीं कर सकते; तुम यहाँसे हट जाओ।"

इसी प्रकार द्रोणने दुर्योधनादि अन्य कुमारोंको भी खड़ा किया और उनसे भी ऐसेही प्रश्न किये; जिनके उत्तर भी उन कुमारोंने युधिष्ठिर जैसेही दिये। फल यह हुआ, कि द्रोणाचार्यकी परीक्षामें वे सभी अनुत्तीर्ण होगये। सबसे पीछे द्रोणने, हँसते हुए, अर्जुनसे कहा,—"बेटा ! अब इस लक्ष्यको तुम्हेंही वेधना होगा। अतएव तुम धनुषपर बाण-सन्धानकर, निश्चित स्थानपर खड़े हो जाओ।"

अर्जुनने, गुरुकी आज्ञाके अनुसार, धनुषपर बाण चढ़ाया और उस वृक्षकी शाखापर बैठे हुए पक्षीको देखने लगे। तब द्रोणने, और शिष्योंकी भाँति, उनसे भी वेही सब प्रश्न पूछे। उत्तरमें अर्जुनने कहा,—"भगवन् ! मुझे न तो वृक्ष दिखाई पड़ता है, न आप और न मेरे भाई ही। मैं केवल उस पक्षीकोही देख रहा हूँ।"

अर्जुनका उत्तर सुन, आचार्य बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने, फिर अर्जुनसे पूछा,—"बेटा ! क्या तुम पक्षीका शरीर भी देखते हो ?"

अर्जुन,—"भगवन् ! मुझे तो केवल उसका मस्तकही दीखता है और कुछ भी नहीं।"

द्रोण,—"अच्छा तो वत्स ! अब लक्ष्य वेध करो।"

आचार्यकी बात पूरी भी न होने पायी थी, कि अर्जुनने एक-बाण द्वारा उस पक्षीका सिर काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। जो लोग वहाँ उपस्थित थे, वे सब अर्जुनके हाथकी सफ़ाई देख, बहुत प्रसन्न हुए। अस्त्र-परीक्षामें अर्जुनको उत्तीर्ण होते देख, द्रोण

उनको सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर समझने लगे। द्रोणकी शिष्य-मण्डलीमें अर्जुन, बाण चलानेमें जैसे चतुर थे, तलवार चलाने और रथ-पर बैठकर युद्ध करनेमें भी वैसेही निपुण थे। असीम-बलशाली भीमसेन गदा-युद्धमें प्रवीण समझे गये। नकुल और सहदेव तलवार चलानेमें श्रेष्ठ रहे। दुर्योधन गदा-युद्ध और तलवार चलानेमें चतुर माना गया। परन्तु अर्जुन जैसा बलशाली वीर, ससागरा पृथ्वीपर अन्य कोई न समझा गया। द्रोणने अर्जुनकी असामान्य गुरु-भक्ति और अस्त्र-विद्यामें उनकी विलक्षण पार-दर्शिता देख, प्रसन्न होकर कहा,—"बेटा! इस मर्त्यलोकमें तुम्हारी टक्कर-का दूसरा धनुर्धर न निकलेगा।"

पाण्डवोंकी अस्त्र-परीक्षा।

इस प्रकार सब कुमारोंको, अस्त्र-विद्यामें निपुण करके, द्रोणने, भीष्मको इस बातकी सूचना दी, कि राज-पुत्रोंने अब पूरी तरहसे युद्ध-शिक्षा प्राप्त करली है। अस्त्र-प्रयोगमें वे परम निपुण हो गये हैं। आचार्यके मुखसे यह बात सुन, भीष्म, बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उचित आदरके साथ द्रोणसे कहा,—"महात्मन्! आपकी इस कृपाके लिये मैं जीवनभर कृतज्ञ रहूँगा। आपने राज-कुमारोंको अस्त्र-कुशल बनाकर, मुझे परम सुखी किया है। आप यह बात महाराजा धृतराष्ट्रसे कहकर, कुमारों द्वारा, अस्त्र-क्रीड़ा दिखानेकी अनुमति लीजिये; क्योंकि उनकी आज्ञा बिना, अस्त्र-क्रीड़ाका प्रबन्ध न हो सकेगा।"

द्रोणने, भीष्मके परामर्शानुसार, एक दिन राज-सभामें यह बात ऐसे समय छेड़ी, जब वहाँ भीष्म, विदुर, और राज-गुरु कृपाचार्य आदि सब प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे। धृतराष्ट्र सहित सभी

लोगोंने इस बातको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। फिर धृतराष्ट्रने, उसी समय, विदुरको आज्ञा दी, कि द्रोणके मतानुसार सुन्दर रङ्ग-भूमि तैयार करायी जाये। विदुरने राजाज्ञा शिरोधार्यकर और चतुर कारीगरोंको बुलवाकर, द्रोणाचार्यके इच्छानुसार, एक सुरम्य और सुविस्तृत रङ्गभूमि तैयार करवादी। उस रङ्गभूमिकी सजावट वर्णन-शक्तिसे बाहर थी।

कुछ दिनों बाद द्रोणका निश्चित किया हुआ दिन उपस्थित हुआ। निश्चित समयपर रङ्गभूमि, दर्शकोंसे ठसाठस भर गयी। ठीक समयपर राजा धृतराष्ट्र, भीष्मको आगेकर, मन्त्रियों सहित, रङ्ग-शालामें उपस्थित हुए। स्त्रियोंके बैठनेके लिये भी उत्तम स्थान बनवाया गया था। वहीं गान्धारी और कुन्ती आदि स्त्रियाँ, अपनी-अपनी दासियों सहित, जा बैठीं। परीक्षाका समय निकट आया देखकर बाजेवालोंने, कोमल स्वरोंमें, धीरे-धीरे बाजा बजाना शुरू किया। इतनेमेंही श्वेतवस्त्र-धारी, श्वेत केश और सौम्य-मूर्त्ति आचार्य द्रोणने, अपने पुत्र अश्वत्थामाके साथ, रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। उनके आतेही रङ्ग-शालामें सन्नाटा छा गया। दर्शकोंका झुण्ड, एकटक दृष्टिसे, उनकी सौम्य-मूर्त्तिको देखने लगा।

अनन्तर, वीरोंके योग्य वेश-भूषासे सुसज्जित, सब राजकुमारोंने आकर, गुरुजनोंको यथायोग्य अभिवादन किया। उनके हाथोंमें एक प्रकारके दस्ताने थे; शरीरपर कवच और धनुष-बाण शोभित होरहे थे। अब सबने, द्रोणकी आज्ञासे, अपना-अपना रण-कौशल दिखाना आरम्भ किया। राजकुमार, कभी घोड़ोंपर और कभी रथपर चढ़, रङ्गभूमिमें बड़े वेगसे चक्कर लगाकर, अपने नामाङ्कित बाणोंसे लक्ष्य-भेद करने लगे। हाथमें गदा लिये भीम और दुर्योधनने आश्चर्यजनक-युद्ध-कौशल दिखाना आरम्भ किया। अन्ध-

राजने, एक-एक करके, सब बातें महात्मा विदुरके मुखसे सुनीं। पतिव्रता स्त्रियोंमें श्रेष्ठ, आदर्श-पत्नी गान्धारीने, साध्वी कुन्ती द्वारा, पुत्रोंका वीरत्व और शिक्षा-कौशल सुनकर, मनमें बड़ा सुख माना।

इधर दुर्योधन और भीम, लड़ते-लड़ते, एक दूसरेको लाल-लाल आँखोंसे देखने लगे। यह देख, आचार्यने, अश्वत्थामाको संकेतकर, दोनों वीरोंको युद्धसे विरत किया। अनन्तर द्रोणाचार्यने, सभा-मण्डपमें खड़े होकर, मेघ-गर्जनके समान स्वरमें कहा,—"आज इस सभा-क्षेत्रमें, अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वीर और गण्य-मान्य पुरुष उपस्थित हैं। मैं सबके सामने कहता हूँ, कि मेरे निज पुत्रसे भी बढ़कर, मेरा प्रिय शिष्य अर्जुन, धनुर्विद्यामें निपुण है! उसके जोड़का दूसरा वीर, इस पृथ्वी-मण्डलपर नहीं है। उत्साह और बुद्धि-कौशल दिखाकर वह, मेरी शिष्य-मण्डलीमें, सर्वप्रधान बन गया है। इस समय वह अपना युद्ध-कौशल दिखाकर आप लोगों-को प्रसन्न करेगा।"

इतना कहकर द्रोण बैठ गये। गुरुकी आज्ञा पातेही, सोनेका कवच पहने, वीर अर्जुन, प्रचण्ड धनुष धारणकर, रङ्ग-भूमिमें उतर पड़े। उनके आतेही, घोर शब्दसे, शङ्ख-ध्वनि होने लगी और बाजे बजने लगे। दर्शकोंका हृदय आनन्दसे उछल उठा। सब लोग बारम्बार, ऊँचे स्वरसे, अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे। पुत्र-वत्सला कुन्ती, प्राणाधिक पुत्रकी इतनी प्रशंसा सुनकर, अपने भाग्य-को सराहने लगीं।

धृतराष्ट्रने विदुरसे कोलाहल होनेका कारण पूछा। विदुरने कहा,—"वीरेन्द्र अर्जुनको, रण-वेशसे, रङ्गभूमिमें आते देख, दर्शक-गण उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। यह उन्हींके प्रशंसा-भरे वाक्योंका कोलाहल है।" यह सुनकर अन्धराज परम प्रसन्न हुए।

कुछ देर बाद कोलाहल थम गया। अर्जुन अपनी अस्त्र-निपुणता दिखाने लगे। वे, अपने शिक्षा-बलसे कभी आग्नेयास्त्र, कभी वरुणास्त्र और कभी वायव्यास्त्र छोड़कर, कभी आग लगाते, कभी पानी बरसाकर उसे बुझाते और कभी हवा चलाकर मेघ-राशिको दूर कर देते थे। कभी रथपर बैठकर और कभी पैदल चलकर सूक्ष्म तथा स्थूल लक्ष्योंको बेधते थे। अनन्तर, इसी प्रकार, अर्जुनने तलवार चलाकर हाथकी सफ़ाई भी दिखायी। दर्शक लोग, चित्रकी भाँति, अचल-अटल हो, अर्जुनके आश्चर्यजनक कर्त्तव्य देखने लगे। अर्जुनके सुकुमार शरीरमें असाधारण तेजस्विता और कमनीयता देखकर, उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। अर्जुनने, एक-एक करके, सब अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग-कौशल दिखाया। अस्त्र-क्रीड़ा बन्द हुई। अर्जुनके अस्त्र चलानेकी निपुणता देखकर, भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और द्रोणके आगे बड़ी कृतज्ञता प्रकट करने लगे। युधिष्ठिर सबसे बड़े और सर्वगुण-सम्पन्न थे। अब भीष्मकी यही इच्छा हुई, कि वे राज-सिंहासनपर बैठकर, राज्य-शासन और प्रजा-पालन करें। पुरवासियोंकी भी यही इच्छा थी। वे कहने लगे, कि युधिष्ठिर जैसे धर्म्मज्ञ, सत्यव्रती और दयालु हैं, न्यायकी दृष्टिसे देखनेपर, वैसेही राज्यके भी अधिकारी हैं। वे अकेलेही समस्त कुटुम्बका, नीति-सहित, पालन भी कर सकते हैं। भीष्म, धृतराष्ट्र और विदुरपर उनकी पूर्णभक्ति है। अतः हम लोग युधिष्ठिरको राजगद्दीपर बैठा देख, बड़े प्रसन्न होंगे। पुरवासियोंके मुखसे यह बात सुन, भीष्म, बहुत प्रसन्न हुए और आनन्दके आँसू बहाते हुए, कहने लगे,—

"भाइयो! मैंने सबसे पहले कुमारोंको सुशिक्षित बनाना अपना कर्त्तव्य समझा था। मेरी वह इच्छा आज पूरी हुई। सब राज-

कुमारोंमें बड़े कुमार, युधिष्ठिर, सर्व-गुण-सम्पन्न हैं। मुझे पूरी आशा है, कि वे प्रजा-पालनका कार्य करते हुए, अवश्य यशस्वी होंगे। मैं अब बूढ़ा हो चला हूँ; मेरे बाल पक गये हैं; शरीर शिथिल हो चला है। मैं कुरु-राजका आज्ञानुवर्ती होकर, उनके हितके कार्योंको करनेके लियेही, अबतक जीवन-धारण किये हूँ। अब मेरी एकमात्र यही इच्छा है, कि कुमार युधिष्ठिर राज-सिंहासनको सुशोभित करें। अन्य राजा लोग, उनके सामने आकर, मस्तक नवायें और वे पिताके समानही यशस्वी हों। जिसको मैंने पुत्र-वत् पाला है, अब, उसीका आज्ञाकारी बनकर, मैं उसको प्रसन्न करना चाहता हूँ।"

कौरवोंका विद्वेष।

भीष्मकी इस प्रकार धर्म-सङ्गत और उदारता-पूर्ण बातें सुन-कर, पुरवासी परम सन्तुष्ट हुए; परन्तु दुर्योधनके हृदयमें द्वेषकी अग्नि जलने लगी। युधिष्ठिरकी प्रशंसा उसे ऐसी बुरी लगी, मानो कोई उसके कानोंमें विषकी बुझी सलाई घुमा रहा हो। वह अपने मनमें सोचने लगा,—"यदि मैं या मेरे भाइयोंमेंसे और कोई ऐसा वीर होता, जैसा कि हमारे अन्नसे पला दुष्ट अर्जुन है, तो मैं अभी भीष्मको ऐसी बातें कहनेका मजा चखा देता।" इसी समय, सहसा, रङ्गभूमिके फाटकपर, कुछ गोलमाल सुनाई दिया। साथही महावीर कर्ण, ताल ठोकता हुआ, रङ्गभूमिके बीचमें आ खड़ा हुआ। उसकी वीरों जैसी आकृति और उज्ज्वल अस्त्रादि देखकर, दुर्योधनके आनन्दकी सीमा न रही। उसने मानो स्वर्गका सिंहासन पा लिया। वह आज, इस वीरके द्वारा, पाण्डवोंको नीचा दिखानेका विचार कर रहा था। अस्तु।

कर्ण, अवज्ञाके साथ, भीष्म, कृपाचार्य और द्रोणको प्रणामकर, कहने लगा,—"हे उपस्थित महानुभावो ! मैं भी अर्जुनकी तरह शस्त्र चलानेकी निपुणता दिखा सकता हूँ।" यह सुनकर अर्जुन कुछ लज्जित हुए। दुर्योधनके आनन्दकी सीमा न रही। उसने कर्णको, बड़े प्रेमसे, गले लगा लिया। कर्णने फिर कहा,—"मैं दुर्योधनसे मित्रता और अर्जुनसे शत्रुता करनेके लियेही यहाँ आया हूँ।"

कर्णके इन गर्व-भरे वाक्योंसे अर्जुनके साथ, दुर्योधनके विवाद-की सूचना हुई। यह देख, कृपाचार्यने रङ्गभूमिमें खड़े होकर कहा,—"राजा या राजपुत्रके सिवा, पाण्डव, दूसरोंसे प्रतिद्वन्दिता न कर सकेंगे।" यह सुन दुर्योधनने, उसी समय, कर्णको अङ्गदेशका राजा बना दिया। पर सन्ध्या हो चुकी थी; अतएव इन व्यर्थकी बातोंसे उकताकर दर्शकवृन्द, घर जानेकी तय्यारी करने लगे। दुर्योधनने अर्जुनके प्रतिद्वन्दी कर्णको मित्र बनाकर, प्रसन्नता प्रकट की और पाण्डवोंको परास्त करनेका सङ्कल्प किया। बस, यहींसे विवादकी जड़ जमी। यहींसे दुश्मनीका बीज बोया गया। खैर, किसी-किसी तरह उत्सव समाप्त हुआ।

घर आकर धृतराष्ट्र, अपने मनमें, बड़ेही खिन्न हुए। वे पाण्डवों-की उन्नति और अपने पुत्रोंकी अवनति देखकर बड़ेही दुःखी हुए। स्वाभाविक डाहने उनके मनकी शान्ति नष्ट कर दी। तीव्र द्वेषा-नलसे उनकी मानसिक साधुता दूषित हो गयी। जिन पाण्डुकी राज्य-प्राप्तिसे, एक बार, धृतराष्ट्र आनन्द-सागरमें निमग्न हो गये थे, इस बार वेही धृतराष्ट्र, पाण्डवोंके सौभाग्य-सूर्यके प्रभावसे, विकल हो, दया-धर्मको तिलाञ्जलि दे बैठे! सन्तानके मोहने उनके हृदयको कलुषित कर डाला! मन, प्राण और हृदयको व्याकुल बना डाला।

कौरवोंका षड्यन्त्र ।

गान्धारीका "शकुनि" नामक एक भाई था। वह बड़ा दुष्ट था। छल-कपट और नये-नये जाल रचनेमें तो उसका जोड़ा न था। धृतराष्ट्र उसका बड़ा आदर करते थे। अतः वह हस्तिनापुरमेंही रहा करता था। इस समय उसनेही, धृतराष्ट्र और दुर्योधनको, बहकाकर, पाण्डवोंका विरोधी बना दिया। एक दिन शकुनि, कर्ण, दुर्योधन और दुःशासनने आपसमें मिलकर सलाह की, कि पाण्डवोंसे युद्धमें जीतना असम्भव है; इसलिये उन्हें किसी घरमें बन्दकर, उसमें आग लगा, मार डालना चाहिये। दुर्योधनको यह युक्ति बड़ी अच्छी लगी। वह झट धृतराष्ट्रके पास गया और बोला,—"पिताजी! पुरवासी लोग आपको हटाकर, युधिष्ठिरको राज-गद्दीपर बैठाना चाहते हैं। बूढ़े पितामह भीष्म, स्वयं, इस प्रस्तावका हृदयसे अनुमोदन करते हैं। पुरवासियोंके मुँहसे ऐसी अमङ्गल-जनक बात सुनकर, मुझे, बड़ा भारी क्लेश हुआ है। जब आप राज-गद्दीसे उतार दिये जायेंगे, तब हमारी क्या दशा होगी? ज़रा सोचिये तो सही, कि उस समय हम क्या करेंगे?"

दुर्योधनकी बातें सुनकर, धृतराष्ट्रने, एक लम्बी साँस छोड़, कुछ देरके लिये, गर्दन नीची कर ली। युधिष्ठिरके राजा होनेपर, अन्धराजके पुत्रोंका जीवन-निर्वाह, उनकी प्रसन्नतापर निर्भर रहेगा, यह सोचकर वे मृतकके समान हो गये। धर्मराज युधिष्ठिरके राजा होनेपर, उनके पुत्रोंकी कैसी दुर्दशा होगी, उसका जीता-जागता चित्र उनकी आँखोंके सामने नाचने लगा। पर वे मुँहसे कुछ न कह सके; चुपचाप रह गये।

उन्हें, अपने प्रश्नका कुछ भी उत्तर न देते देख, दुर्योधन फिर

कहने लगा,—"पितृदेव ! यदि आप किसी तरह पाण्डवोंको, कुन्ती सहित, एकबार वारणावत भेज सकें, तो फिर किसी प्रकारका झगड़ा ही न रहेगा और हमलोग झट अपना काम सिद्ध कर लेंगे।"

धृतराष्ट्र,—"बेटा ! तुमने जो कुछ कहा, वह मैं समझ गया और उससे सहमत भी हूँ। परन्तु पाण्डु बड़ा योग्य था। मुझे सन्तुष्ट रखनेके सिवा, वह, प्रत्येक बातमें, मेरी सलाह ले लिया करता था। फिर मैं किस प्रकार उसकी निर्दोष सन्तानोंका अनिष्ट-साधन करूँ?"

दुर्योधन,—"निर्दोष सन्तान ! वाह, वाह ! जो आपको गद्दीसे उतारकर, स्वयं उसपर बैठना चाहते हैं, वे क्या निर्दोष हैं ? तभी तो मैं कहता हूँ, कि आप सीधे-सादे आदमी हैं। आप पाण्डवोंकी कूट-मन्त्रणाओंको क्या जानें ?"

धृतराष्ट्र,—"अच्छा, मान लो, कि मैं तुम्हारा कहा करही दूँ, तो भी यदि सब मन्त्री और शूर-सामन्त, पाण्डुके उपकारोंको यादकर, हमारे विरुद्ध खड़े हो जायें, तो क्या होगा ?"

दुर्योधन,—"उनको धन देकर सन्तुष्ट कर लिया जायेगा। हाँ, भीष्म, द्रोण और विदुरके ऊपर यह कौशल नहीं चल सकता ; पर भीष्म तो दोनों पक्षोंमें हैं। द्रोणका पुत्र, अश्वत्थामा, हमारा मित्र है ; अतः वे पुत्रके विरुद्ध कभी न जायेंगे। बाक़ी रहे विदुर, सो वे अकेले हमारा करही क्या सकते हैं ? इस लिये आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें और चटपट पाण्डवोंको वारणावत भेज दें। फिर सारा साम्राज्य हमारी मुट्ठीमें आ जायेगा और कोई अड़चन भी न रहेगी।"

लाक्षा-गृह-दाह।

धृतराष्ट्र दुर्योधनके वाक्य-जालमें फँस गये। उन्हें अच्छे-बुरेका कुछ भी ज्ञान न रहा। उधर दुर्योधनने घूस दे-देकर मन्त्रियों

और सेनापतियोंको अपनी ओर मिला लिया। इधर धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको बुलाकर, वसन्तोत्सव देखनेके उपलक्ष्यमें, उन्हें, कुछ दिनोंतक, वारणावत-नगरमें रहनेकी आज्ञा दी। पाण्डव, पितृ-तुल्य अन्धराजकी आज्ञा मानकर, माता कुन्तीके साथ, वारणावत जानेका उद्योग करने लगे। अनन्तर उन्होंने भीष्म, विदुर आदि गुरुजनोंके समीप जा, उनसे कुल हाल कहा और प्रणाम-पूर्वक विदा माँगी। सबने बड़े स्नेहके साथ उन्हें आशीर्वाद दिया। चलते समय विदुर-ने, चुपकेसे, दुर्योधनकी सारी कुमन्त्रणाका हाल बतलाकर, उन लोगोंको सावधान कर दिया। पाण्डवोंने, विदुरके अनुग्रह और हित-चिन्तनाकी प्रशंसा करते हुए, वारणावतकी ओर प्रस्थान किया।

इधर पापी दुर्योधनने, पाण्डवोंके पहुँचनेसे पहलेही, लाखका भवन बनवानेके लिये, पुरोचन नामक एक दुष्ट मन्त्रीको वारणावत-में भेज दिया था। पाण्डवोंके आते-न-आतेही, उसने भवन तैयार करा दिया। जब युधिष्ठिरादि, पाँचों पाण्डव, वारणावतमें पहुँचे, तब नगर-वासियोंने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया। समदर्शी युधिष्ठिर, सबकी अभ्यर्थना स्वीकारकर, पापी पुरोचनके पास पहुँचे। दुर्यो-धनके आदेशानुसार पुरोचन, बनावटी सुजनता दिखाकर, पाण्डवों-को एक रमणीक भवनमें ले गया और सब प्रकारके भोजनादि प्रस्तुत कराये। युधिष्ठिर उसकी सारी चालाकी समझ गये; पर उन्होंने उससे कुछ भी नहीं कहा। वे, माता कुन्तीके साथ, आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। दस दिनोंके बाद पुरोचन, पाण्डवोंको, लाखके उस नये भवनमें ले गया। वहाँ जाकर तत्वदर्शी पाण्डवोंने देखा, कि इस मकानमें लाख, चर्बी और घी आदिकी गन्ध आ रही है। इससे वे जान गये, कि हमें मार डालनेके लियेही, यह मकान बनवाया गया है; पर तो भी उन्होंने पुरोचनसे

कुछ न कहा। चुपके-चुपके उन्होंने अपने बचावका उपाय सोच लिया। विदुरके अनुग्रहसे, हस्तिनापुरके एक शिल्पीने आकर, पुरोचनके अनजानतेमेंही, उस घरके भीतर, घरसे बाहर आनेके लिये, एक सुरङ्ग तैयार करदी थी। उधर पापी पुरोचनने सोचा, कि अब पाण्डव मुझपर पूर्ण विश्वास करने लगे हैं; इस लिये अपना मतलब साधनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। अतः अब वह, उस भवनमें, आग लगानेका मौक़ा ढूँढ़ने लगा। पाण्डवोंने इसके पहलेही, उस सुरङ्गकी राहसे, निकल भागनेका परामर्श कर लिया था।

एक दिन बड़ी अन्धेरी रात थी। उस समय सारे वारणावत-वासी गाढ़ी नींदमें सो रहे थे। वायुदेव, कभी किसी वृक्षकी शाखाको हिलाकर, कभी शाखापर आश्रय लेनेवाले पक्षियोंके सुखमें बाधा डालकर और कभी-कभी जन-रव-शून्य नगरके सन्नाटेको भङ्गकर, बह रहे थे। पुरोचन भी, अपनी कुसुमसी कोमल शय्यापर, बेहोश पड़ा सो रहा था। इसी समय भीमसेनने, पुरोचनके शयन-गृहके द्वारपर, आग लगा दी। देखते-देखते, अनुकूल पवन पाकर, आग, उस गृहके चारों ओर फैल गयी। उधर पाण्डव, माताके साथ, सुरङ्गके रास्ते, घरके बाहर निकल गये।

थोड़ी देर बाद अग्निकी प्रचण्ड शिखाएँ आकाशसे बातें करने लगीं। चट-चटकी आवाज़से चारों दिशाएँ गूँज उठीं। उस शब्दसे जागकर पुरवासियोंने देखा, कि सर्वनाश उपस्थित है! पाण्डवोंका घर भीषण अग्निसे जल रहा है! इस भयङ्कर अग्नि-काण्डको देख, उनके सन्तापकी सीमा न रही। उन्हें वास्तविक वृत्तान्त तो मालूम नहीं था; अतएव सब यही समझकर, कि माता-सहित पाण्डव उस घरमें जलकर भस्म होगये हैं, सिर धुन-धुनकर रोने और विलाप करने लगे। जब सवेरा हुआ, तब वे घरकी राखमें पाण्डवोंका अस्थि-पञ्जर

ढूँढ़ने लगे। भाग्यकी मारी एक निषाद-पत्नी, अपने पाँच पुत्रोंको ले, उसी रातको, उस घरमें, आ टिकी थी। उसकी और उसके पाँचों पुत्रोंकी जली हुई ठठरियाँ देखकर, सबको इस बातका पूरा विश्वास हो गया, कि कुन्ती सहित, पाण्डव इस घरमें जल मरे हैं। अनन्तर सब लोग पाण्डवोंकी अकाल-मृत्युपर शोक प्रकट करने लगे। इस घटनाका संवाद धृतराष्ट्रके पास भी भेजा गया। धृतराष्ट्रने, भाई-बन्धुओंके साथ, बहुत तरहसे बनावटी शोक प्रकट किया।

हिडिम्ब-वध।

उधर माता-सहित पाण्डव-गण, सुरङ्गकी राहसे निकलकर, निर्जन वनमें पहुँच गये। वे लोग जल्दी-जल्दी किसी ऐसी जगहमें पहुँचनेका प्रयत्न करने लगे, जहाँ किसी तरहका डर न हो; परन्तु रात-भर जागने और चलनेके कारण, वे इतने थक गये थे, कि और एक पग भी चलना, उन्हें कठिन हो गया। यह दशा देख, महाबली भीम, माता कुन्तीको कन्धेपर चढ़ा, नकुल और सहदेवको गोदमें ले तथा युधिष्ठिर और अर्जुनका हाथ पकड़कर, बड़े वेगसे वनकी ओर भागे। भागते-भागते सब, गङ्गाजीके तटपर जा पहुँचे। गङ्गा-किनारे, धर्मात्मा विदुरका एक विश्वासी नौकर, नाव लिये पहलेसेही खड़ा था। उसने अपना परिचय देकर, उन्हें नदी-पार कर दिया। पाण्डव लोग वहाँसे भी आगे बढ़ चले। कुछ दूर जाकर उन्होंने अपना वेश बदला; जिसमें उन्हें कोई पहचान न सके। फिर भीमने कुन्तीको कन्धेपर चढ़ा लिया और सब भाइयों-से अपने पीछे-पीछे आनेको कहकर, वे बड़े वेगसे चलने लगे। पर युधिष्ठिरादि पाण्डव उनके इस वेगकी बराबरी न कर सके। उन्हें चलनेमें बड़ा कष्ट होने लगा। यह देख भीमसेन, पहलेकी

भाँतिही, सब भाइयोंको सहारा देते हुए चलने लगे। ऊँची-नीची जगहोंमें वे, नकुल और सहदेवको गोदमें ले लेते थे। इस प्रकार वे बराबर चलते रहे।

सायङ्कालके समय, उन्हें एक भयानक जङ्गल मिला। वह जङ्गल ऐसा विकट—ऐसा दुर्गम था, कि न तो वहाँ रात बितानेके लिये कोई स्थान था और न भोजन करनेके लिये कोई फल-वृक्ष। शेर, बाघ और रीछोंकी वहाँ मानो खानसी थी। थोड़ी देरमें घोर अन्धकारने चारों ओर अपना साम्राज्य फैला दिया। अब पाण्डवोंको भूख और प्यासने बड़े ज़ोरसे सताया। उनका शरीर, शिथिलताके कारण, अकड़सा गया। आगे चलनेकी शक्ति प्राय: किसीमें न रही। शायद भीमही चल सकें, तो कुछ चल सकें; क्योंकि वे सब भाइयोंकी अपेक्षा अधिक बलवान् थे और उनमें कई हाथियोंसे भी अधिक बल था। खेलके समय वे, अकेलेही, दुर्योधनादि सौ कौरवोंके नाकों दम कर देते थे।

इसी समय कुन्तीको बड़ी प्यास लगी। प्याससे व्याकुल होकर वे, अनेक प्रकारसे, विलाप करने लगीं। भीमसेनका हृदय बहुत कोमल था। वे माताके इस दु:खको न देख सके और विह्वल हो, बहुत देरतक, उस वनमें इधर-उधर घूमते रहे। घूमते-घूमते उन्हें, बरगदका, एक छायादार वृक्ष मिला। उसके नीचे विश्राम करने योग्य अच्छा स्थान था। अत: भीमसेन सबको वहीं ले गये और सबके विश्रामका प्रबन्धकर, स्वयं पानी लेने चले। चलते-चलते भीम एक सुन्दर तालावपर पहुँचे। तालावमें साफ़ पानी भरा हुआ था। उसे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। फिर उसमें स्नान करके उन्होंने, भरपेट, पानी पिया। इससे उनकी थकावट बहुत कुछ दूर होगयी। अनन्तर उन्होंने माता और भाइयोंके

पीनेके लिये अपने अँगोछेमें, वहुतसा पानी भर लिया और जल्दी-जल्दी उस वरगदकी ओर लौटे। वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि सब लोग अचेत पड़े सो रहे हैं। अपनी माता और पाण्डवोंको, इस प्रकार, अनाथकी तरह ज़मीनपर पड़े देख, भीमसेनको बड़ा दुःख हुआ। इस समय मानो पाण्डव वनके राजा थे; उस वृक्षकी जड़ही उनका राज-भवन था और जङ्गली फल-मूलही उनके भोजनकी सामग्री थी। कल जो सुन्दर और रमणीक राज-महलोंमें रहते थे—राज-वेश-भूषासे सजे अनेक प्रकारके राजसी सुख-भोग करते थे, आज वेही दीन-हीन होकर जङ्गलोंमें मारे-मारे फिर रहे हैं! उनके दुःखोंकी सीमा नहीं है! कहीं दुरात्मा दुर्योधनको पता न लग जाये, इसी डरसे वे, वेश वदलकर, छिपे फिरते हैं। हाय! वसुदेवकी वहन, शूरसेनकी पुत्री, चक्रवर्त्ती राजा पाण्डुकी महिषी और पञ्च पाण्डवोंकी माता कुन्ती, आज ज़मीनपर पड़ी धूलमें लोट रही हैं! रे मूर्ख दुर्योधन! इस समय तुझपर देवता प्रसन्न हैं; इसलिये तू भलेही अपनी इच्छा पूर्ण कर ले; परन्तु याद रख, जिस समय महावली भीम तुझपर कुपित होंगे, उस समय, तेरा, वंश-सहित, नाश हो जायेगा।

इसी स्थानके पास, शालका, एक वहुत वड़ा वृक्ष था। उसपर, नर-मांस-भोजी, 'हिडिम्व' नामका एक भयानक राक्षस, अपनी वहन हिडिम्वाके साथ, रहता था। दुष्ट राक्षसने, मनुष्यकी गन्ध पाकर, अपने स्थानके चारों ओर दृष्टि डालते हुए, पाण्डवोंको देख पाया और अपनी वहन हिडिम्वासे कहा,—"वहन! यदि तुम उस सामनेके वृक्षके नीचे सोये हुए मनुष्योंको मारकर ले आओ, तो हमलोग भरपेट मांस भक्षण करें।"

हिडिम्वाके शरीरमें वड़ा वल था। वह वात-की-वातमें कितनेही

आदमियोंकी, एक साथ, हत्या कर सकती थी। इस लिये वह, निडर होकर, भाईकी आज्ञा पा, तुरन्त उस वरगदके नीचे आयी। आकर उसने देखा, कि भीमसेन उन सोनेवालोंकी चौकसी कर रहे हैं। भीमसेनकी सुन्दरता और शरीरकी मनोहर गढ़न देखकर, हिडिम्वा उनपर मोहित हो गयी। कहाँ तो वह उन्हें मारने आयी थी और कहाँ अव उसके मनमें, उन्हें, अपना पति वनानेकी इच्छा हो आयी! अव उसने अपना राक्षसी रूप वदल डाला और अपनी मायासे वह एक वड़ीही सुन्दरी स्त्री वन गयी। इस प्रकार परम मनोहर रूप धारणकर, वह भीमसेनके पास गयी और मीठे स्वरसे कहने लगी,—"हे पुरुष-श्रेष्ठ! आप कौन हैं? इस निर्जन वनमें ये कौन निर्भय होकर सो रहे हैं? क्या आपको मालूम नहीं, कि यहाँ एक नर-घाती और महावली राक्षस रहता है? वह आप-लोगोंको मारने आ रहा है। यदि आप उससे वचना चाहते हैं, तो शीघ्र वचिये। यदि आप मुझे अपनी स्त्री वना लें, तो मैं अकेलीही उस राक्षससे आपलोगोंकी रक्षा कर सकती हूँ। जल, स्थल और आकाश, सव जगह मेरा प्रवेश है।"

उसकी यह वात सुनकर भीमसेन वोले,—"हे राक्षसी! तुम्हारा यह प्रस्ताव मुझे स्वीकार नहीं है। यदि राक्षस आता है, तो आने दो। जो कुछ होगा, देखा जायेगा। तुम्हारी सहायताकी मुझे ज़रा भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मैं अपने आगे उस राक्षसको कुछ नहीं समझता।"

हिडिम्वा और भीमसेनकी इस वात-चीतमें देर होते देख, हिडिम्व, स्वयंही पाण्डवोंके पास आया। उसे आते देख हिडिम्बा, डरसे, थर-थर काँपने और भीमसे कहने लगी,—"हे महात्मन्! देखिये, हिडिम्व आ रहा है। वह मुझे भी मार डालेगा और आपलोगोंको

भी। दासीका प्रस्ताव मान लीजिये। मैं आप छहोंको अभी आकाशमें उड़ा लेजाकर, अकेली सबकी रक्षा कर सकती हूँ।" पर भीमसेनने अब भी कुछ परवा न की। इतनेमें दौड़ता हुआ हिडिम्ब वहाँ आ पहुँचा और क्रोधसे विह्वल हो, हिडिम्बाका तिरस्कार करने लगा। फिर वह पाण्डवोंको मारने दौड़ा। अब क्या था? भीम ज़ोरसे झपटे और उन्होंने उसको पकड़कर अपने पास घसीट लिया। अब भीम और हिडिम्बमें कुश्ती होने लगी। उस राक्षसकी गर्जना और भीमकी धर-पकड़के शब्दसे कुन्ती और चारों पाण्डवोंकी नींद भी खुल गयी। नींदसे जागकर उन्होंने देखा, कि भीमसेन एक बड़े लम्बे-तगड़े राक्षससे लड़ रहे हैं और एक सुन्दरी स्त्री, खड़ी-खड़ी, उन दोनोंका युद्ध देख रही है। अनन्तर अर्जुन भीमसेनके पास गये। उन्होंने भीमकी सहायता करनी चाही; पर भीमने उन्हें मना कर दिया। अब भीम क्रोधसे पागल हो गये। उन्होंने एकाएक राक्षसको, दोनों हाथोंसे खूब ऊँचे उठाकर, ज़मीनपर पटक दिया और उसकी छातीपर घुटना रखकर उसे ज़ोरसे दबोच दिया। साथही राक्षसके प्राण निकल गये। चारों भाइयोंने प्रेमसे भीमसेनको गले लगा लिया।

अब हिडिम्बा बारबार भीमसे प्रार्थना करने लगी, कि "तुम किसी प्रकार मुझे अपनी स्त्री बनालो।" उसकी प्रार्थना और नम्रताको देख, कुन्ती और युधिष्ठिरके हृदयमें दयाका सञ्चार हुआ। उन्होंने भीमको आज्ञा दी, कि वे उससे गान्धर्व-विवाह करलें। भीम राज़ी हो गये। उन्होंने उसे प्रणयका वचन दे दिया। हिडिम्बा, प्रसन्न हो, भीमको लेकर आकाशसे उड़ गयी। कभी देवपुरी, कभी रमणीय वन-वाटिका और कभी मनोहर सरोवरोंमें, वह, भीमके साथ-साथ विहार करती फिरी। यथा समय उसके गर्भसे एक पुत्र

उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'घटोत्कच' पड़ा। घटोत्कचने आगे चलकर, जवान होनेपर, पाण्डवोंकी बड़ी सहायता की थी। अस्तु।

कुछ दिनोंके बाद, हिडिम्बा पुत्रके साथ और पाण्डव माताके साथ, अभिलषित स्थानपर चल दिये। घटोत्कचने जाते समय, कुन्ती सहित, पाण्डवोंके चरणोंमें प्रणाम करके कहा,—"हे तात! आवश्यकता होनेपर जब कभी आप मुझे याद करेंगे, तभी मैं सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा।"

वक-संहार।

इसके बाद पाण्डव लोग, शत्रुओंके भयसे, तपस्वियोंकासा वेश बनाये, अनेक नगरों और वनोंको पार करते हुए, आगे बढ़े। एक दिन, रास्तेमें, उनकी श्रीमद् वेदव्यासजीसे अचानक भेंट होगयी। कुरुवंशी राजकुमारोंकी दुःख-पूर्ण कथा सुनकर, व्यासजीको बड़ा दुःख हुआ। व्यासजीने उन्हें बहुत धीरज दिया और अन्तमें, वे, उन्हें समीपवर्त्तिनी 'एकचक्रा' * नगरीमें ले गये। वहाँ उन्होंने पाण्डवोंको अपने एक परिचित ब्राह्मणके घरमें टिका दिया और कहा, कि "जबतक मैं तुमसे दुबारा न मिलूँ, तबतक तुम कहीं न जाना।" अब पाण्डव, एकचक्रानगरीमें रहने लगे। कुछही दिनों बाद, साधु-प्रकृति पाण्डवोंने, सबको अपना प्यारा बना लिया। उदर-पोषणके लिये उनका एकमात्र अवलम्ब भिक्षा माँगनाही था।

एक दिन भीमसेनको माताके पास छोड़कर, चारो भाई, भिक्षा माँगनेके लिये, बाहर गये हुए थे। माता-पुत्र दोनों, उस ब्राह्मणके घरमें बैठे थे। अचानक भीतरसे रोने-पीटनेकी आवाज़ आने लगी।

---

* बिहार—शाहाबाद ज़िलेका आरा-नगरही, प्राचीनकालमें "एकचक्रा" नगरीके नामसे प्रसिद्ध था।

वह रोदन बहुतही कारुणिक था। उस करुण-रोदन-ध्वनिको सुन, करुणामयी कुन्तीने तत्काल ब्राह्मणके घरमें जाकर मालूम किया, कि इस, एक-चक्रानगरीके पासही 'वक' नामका एक राक्षस रहता है। नगर-वासी उसीकी प्रजा हैं। वही उन सबकी शेर, शूकर आदि वन्य-पशुओंसे रक्षा करता है; पर इसके बदलेमें राक्षसको, प्रत्येक घरसे, एक आदमी, दो भैंसे और दो सौ मन पक्के चावलोंका भोजन प्रतिदिन दिया जाता है। आज ब्राह्मणकी बारीका दिन है। अतः दरिद्र ब्राह्मण, अपने परिवारकी भावी दशाकी बात सोच-सोचकर, व्याकुल भावसे रो रहा है। स्त्री, कन्या और पुत्र भी उसका साथ दे रहे हैं। यह सब देख-सुनकर कुन्ती वहाँसे लौट आयीं और उन्होंने सारा समाचार भीमसेनसे कह सुनाया। दयालु भीमसेनने ब्राह्मणको बुलाकर, ढाढ़स बँधाया और माताकी आज्ञा ले, दुरात्मा वकको मारनेकी प्रतिज्ञा की।

अनन्तर भीमसेन, अन्न आदि लेकर 'वक' राक्षसके स्थानपर गये। वहाँ जाकर, वे, जो अन्न उसके लिये ले गये थे, उसे स्वयं-ही खाने लगे। राक्षसने आकर जब यह हाल देखा, तब तो उसके क्रोधकी सीमा न रही। वह गुस्सेमें भरकर बोला,—"रे दुष्ट! तू कौन है, जो मेरे हिस्सेका भोजन खा रहा है?" यह कह, वह, उन्हें मारनेको झपटा। भीमने चट, आगे बढ़कर, उसे पकड़ लिया और इतना मारा, कि वह मरही तो गया। राक्षसको मारकर भीमसेन घरकी ओर लौटे।

उधर युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव, भिक्षा लेकर, घर लौटे। आकर उन्होंने जब सुना, कि माताके कहनेसे भीम, राक्षसको अकेले मारने गये हैं, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। अब वे क्या करें? इसपर सोच-विचार करही रहे थे, कि इतनेमें भीम,

बक राक्षस और भीम।

"भीमने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया और इतना मारा, कि वह अधमरा होकर गिर पड़ा।"

[पृष्ठ—५२]

Burman Press, Calcutta.

मस्तानी चालसे चलते हुए, घर आ पहुँचे। वकका मारा जाना सुनकर सबके, विशेषकर उनके आश्रय-दाता ब्राह्मण-परिवारके, आनन्दकी सीमा न रही! उन्होंने, दिल खोलकर, कुन्तीको आशीर्वाद दिया और भीमसेनकी खूब प्रशंसा की।

रात बीत कर सवेरा हुआ। प्रातःकाल होनेपर, जब उस राक्षसका भयङ्कर मृत-शरीर लोगोंने मार्गमें पड़ा देखा, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनमेंसे कुछ लोग, इस बातका पता लगानेके लिये; कि राक्षसको किसने मारा, उस ब्राह्मणके पास आकर पूछने लगे। ब्राह्मणने पाण्डवोंकी अनुमतिसे असल हाल छिपाकर, सबसे यही कह दिया, कि किसी सिद्ध पुरुषने राक्षसको मारा है। भीमके इस कामसे, आस-पासके, राक्षसोंमें इतनी दहशत पैदा हो गयी, कि उस दिनसे उन लोगोंने नर-मांस-भक्षण करना बिलकुल-ही छोड़ दिया।

द्रौपदीका जन्म-वृत्तान्त।

कुछ दिनों बाद, एक ब्राह्मण, पाण्डवोंके आश्रय-दाता विप्रका अतिथि हुआ। युधिष्ठिर आदिने बड़े आदर और श्रद्धासे उसकी सेवा की, इससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने, बातों-ही-बातोंमें, अपने भ्रमणका कुल हाल उन्हें कह सुनाया। बातोंके सिलसिलेमें उसने अनेक राज्यों, अनेक देशों और विविध वनोंकी, आश्चर्य-जनक, कथाएँ कह सुनायीं। प्रसङ्ग-वश उसने पाञ्चाल-देशके राजा द्रुपदकी, यज्ञसे उत्पन्न हुई, कन्या, कृष्णाका स्वयंवर-संवाद भी प्रकाशित किया। ब्राह्मण कहने लगा,—"भरद्वाज मुनिके पुत्र, द्रोण जब परशुरामके निकट अस्त्र-विद्या सीखा करते थे, तब पाञ्चाल-राजपुत्र द्रुपद भी उनका सहपाठी था। एक जगह रहने और

एकही गुरुसे विद्याभ्यास करनेके कारण, द्रोण और द्रुपदमें गाढ़ी मित्रता हो गयी। पिताके मरनेपर राजपुत्र द्रुपद, पाञ्चालके राज-सिंहासनपर बैठे। इधर द्रोण भी, परशुरामसे, अस्त्र-शिक्षा प्राप्तकर, पिताके पास लौट आये और उन्होंने अपने पूज्य पिताकी आज्ञासे कृपाचार्यकी बहिन, कृपीके साथ विवाह कर लिया। उससे उन्हें 'अश्वत्थामा' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक बार द्रोणाचार्य, अपनी स्त्री और पुत्रके साथ, कार्यवश, किसी नगरमें गये। वहाँ, एक दिन, अश्वत्थामाने देखा, कि धनवानोंके कुछ लड़के गायका दूध पी रहे हैं। यह देख, वह भी पिताके पास रोता हुआ आया और उनसे दूधके लिये ज़िद करने लगा। परन्तु निर्धन ब्राह्मण द्रोणके पास गाय कहाँ? यह देख द्रोणको, अपनी दरिद्रतापर, बड़ा दुःख हुआ। अन्तमें उन्होंने, अपनी स्त्रीसे, थोड़ासा आटा पानीमें घोलकर मँगाया और उसे अश्वत्थामाको पीनेके लिये दिया। उसे पीकर अश्वत्थामा बड़ाही प्रसन्न हुआ और उन धनवान् लड़कोंके पास जाकर बोला,—'लो, मैंने भी आज गायका दूध पिया है। अहा! गायका दूध, बड़ाही स्वादिष्ट होता है।'

"लड़के जानते थे, कि उसका बाप एक दरिद्र ब्राह्मण है। वह गायका दूध कहाँसे लायेगा? यह ज़रूर पानीमें घोला हुआ आटा पीकर आया है। यही सोच, लड़कोंने, उसे चिढ़ाना शुरू किया। वे कहने लगे,—'अरे मूर्ख! दूधके बदलेमें तेरे बापने तुझे आटा घोलकर पिला दिया होगा। अच्छा, यदि तूने गायका दूध पिया है, तो बता, तेरे यहाँ गाय कहाँ है?'

"अश्वत्थामाने कहा,—'गाय तो नहीं है।'

"लड़के बोले,—'तब तू कैसे गायका दूध पी आया? मूर्ख! झूठ-मूठ उछल-कूद करता है? राम, राम, राम!'

"बालकोंको अपनी हँसी उड़ाते देख, अश्वत्थामा फिर बापके पास गया और बोला,—'तुमने तो मुझे दूधके बदलेमें आटा पिला दिया है, अब तो मैं गायका दूधही लेकर छोड़ूँगा।' उसकी बात सुन द्रोण, अपने मनमें, बड़े दुःखी हुए। बहुत सोच-विचारके बाद उन्हें याद आया, कि अपने मित्र, पाञ्चाल-नरेश, द्रुपदके पास जाकर, कुछ द्रव्य माँगना चाहिये। यदि वह कुछ द्रव्य दे दे, तो हमारे कुटुम्बका निर्वाह, भली भाँति, हो सकेगा। यह सोच और अपने स्त्री-पुत्रको साथ लेकर, द्रोण, द्रुपदके पास गये। वहाँ जाकर द्रोण, राज-सभामें उपस्थित हुए और द्रुपदको देखतेही दौड़कर, बाल्यकालके मित्रकी भाँति, उन्हें, बड़े प्रेमसे गलेसे लगाते हुए बोले,—'मित्र! क्या तुम मुझे पहचानते हो? मैं तुम्हारा वही, बाल्यकालका गुरु-भाई द्रोण हूँ।'

"द्रुपद, इस समय, एक विशाल राज्यके स्वामी थे। राज-पद पाकर भला किसे मद नहीं होता? राज-मदसे मतवाले लोग तो किसीको भी अपनी बराबरीका नहीं समझते। यही हाल द्रुपदका भी हुआ। वे द्रोणको देख और अपने मनमें उनका गुरु-भाई होना स्वीकार करके भी, लोग-दिखावेके लिये, अपने सम्मानको अछूता रखनेके लिये, उस समय ऐसे बन गये, मानो उन्होंने द्रोणको कभी देखाही नहीं था। इसीसे वे क्रोधित होकर बोले—'अरे ब्राह्मण! तेरी और हमारी मित्रता कैसी? हम क्या जानें, कि तू कहाँ बसता है? कहीं रङ्क और राजा भी गुरु-भाई होते हैं! तू झूठ बोलता है।'

"ऐसा रूखा जवाब पाकर द्रोण, क्रोधसे, आग-बबूला होगये; पर, उस समय, वे करही क्या सकते थे? लाचार वे चले आये और कुछ दिनों कुरुजाङ्गल-देशमें, रहकर, हस्तिनापुरके पास आ

पहुँचे। वहाँ महावीर भीष्मने, उनकी समस्त दुःख-कथा सुनकर, उन्हें, कौरव और पाण्डवोंको अस्त्र-विद्या सिखानेके लिये, शिक्षक नियुक्त कर दिया। अनन्तर जब, कुछ दिनोंमें, राजपुत्र शिक्षित हुए, तब द्रोणने उन सबसे अपनी गुरु-दक्षिणा माँगी। वे बोले,—'राजपुत्रो! गुरु-दक्षिणामें हम तुमसे एक बात चाहते हैं और वह यह है, कि तुम लोग राजा द्रुपदको पकड़ लाओ।' अस्त्र-पारदर्शी, पाण्डु-पुत्र अर्जुनने, तत्काल, द्रुपदको पराजित और बन्दीकर, गुरुके हवाले कर दिया। उस समय आचार्य द्रोणने स्वयंही, पाञ्चालका आधा राज्य अपने अधिकारमें कर लिया और बाक़ीका आधा राज्य उसे लौटाकर कहा,—'मित्र! वह दिन याद है, जब हम दरिद्रावस्थामें तुम्हारे पास गये थे? कहो, अब हमारी और तुम्हारी दोस्ती ठीक होसकती है या नहीं? तुमने गर्वसे कहा था, कि रङ्क और राजाकी मैत्री असम्भव है; पर अब तो हम भी राजा हैं न?'

"द्रुपद, लज्जासे सिर नीचाकर, चुप रह गये। द्रोणने द्रुपदका बन्धन खुलवा दिया। पाञ्चाल-नरेश द्रुपदने आचार्यसे पिछले व्यवहारके लिये क्षमा माँगी और आधा राज्य छिन जानेसे क्षुभित हो, वे अपने घर लौट गये।

वे घर तो लौट गये; पर उनके मनसे द्रोण-द्वारा अपमानित होनेका दुःख नहीं गया। वे द्रोणकी मृत्युके लिये, पुत्रकी इच्छाकर, यज्ञ करनेके निमित्त, बहुतसे ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें गये; परन्तु किसीने भी उनके मन चाहे यज्ञ करानेकी हामी न भरी। अन्तमें 'उपयाज' नामके एक ऋषिने, राजा द्रुपदके लिये, पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञके फलसे उन्हें एक, द्रोण-हन्ता, पुत्र और 'कृष्णा' नामकी एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उस अग्नि-समान तेजस्वी कुमारका नाम 'धृष्टद्युम्न' रखा गया।"

यह सारा हाल सुनाकर उस ब्राह्मणने, महा रूपवती, द्रुपद-सुता, सुकुमारी द्रौपदीके स्वयंवरका हाल भी कहा। ब्राह्मण बोला,—"पाञ्चाल देशमें, आज-कल, बड़े ठाठ-बाटसे इस स्वयंवरकी तैयारी हो रही है।"

ब्राह्मणके मुखसे सारा हाल सुनकर, पाण्डव, द्रौपदीका स्वयंवर देखने की इच्छासे, पाञ्चाल-देश जानेकी तैयारी करने लगे। वे चलनेकोही थे, कि इतनेमें व्यासदेव, अपने वचनके अनुसार, वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भी उन लोगोंको द्रौपदीके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेकी सम्मति दी। तब पाण्डवगण पाञ्चालकी ओर चले। रास्तेमें अनेक ब्राह्मणोंसे उनकी भेंट हुई। वे सब भी स्वयंवर देखनेही जा रहे थे।

कुन्ती सहित, पाँचों भाई शीघ्रही पाञ्चाल-देशमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने एक कुम्हारके घर डेरा डाला। जिस दिन वे पाञ्चाल-नगरमें पहुँचे, उसके बारह दिन बाद द्रौपदी-स्वयंवर हुआ।

द्रौपदी-स्वयंवर।

पाञ्चाल-राजमें नगरके बाहर, एक लम्बे-चौड़े मैदानमें, स्वयंवर-सभाका मण्डप बनवाया गया था। मण्डपकी सजावट बहुतही उत्तम रीतिसे हुई थी। सभाके फाटकपर शहनाई बजनेकी व्यवस्था हुई थी। अनेक देशोंके राजा, विचित्र वेश-भूषासे सजकर, मणि-मुक्ताओंसे जड़े मञ्चोंपर विराजमान थे। दूसरी ओर पुरवासी और दर्शकोंके बैठनेका स्थान था। वे वहाँसे, बैठे-बैठे, स्वयंवर-सभा-की शोभा देखकर प्रसन्न हो रहे थे। ब्राह्मणोंने, यथास्थान बैठकर, स्वस्ति-वाचन किया। पाँचों पाण्डव भी, दरिद्र ब्राह्मणोंका वेश बनाये, उन्हींके साथ बैठे हुए थे। दूसरी ओर एक सुन्दर मञ्चपर, राजाओंकी श्रेणीमें, दुर्योधनादि कौरवगण भी बैठे हुए थे।

अनन्तर, यथाविधि, मङ्गलाचार हो चुकनेपर, द्रौपदी, नखसे शिखतक सुन्दर और समयोचित शृङ्गार किये तथा हाथमें वरमाल्य लिये हुई, अपने भाई धृष्टद्युम्नके साथ, समास्थानमें आ उपस्थित हुई। सभामें बैठे हुए दर्शकगण यह देखनेके लिये उत्सुक हो उठे, कि देखें, इन राजोंमेंसे आज किसका भाग्य उदय होता है। उस सुन्दर वेशवाली, विचित्र वस्त्रोंसे सजी, सुन्दरी द्रौपदीकी सुन्दरताके प्रकाशसे सभा-मण्डप, सहसा, जगमगा उठा। वास्तवमें उस समय द्रौपदीके समान लावण्यवती कुमारी दूसरी नहीं थी। रूप-माधुरीमें कृष्णा, रमणी-समाजकी, सिर-मौर मानी जाती थी। असामान्य रूपका निधान, यह कन्या-रत्न, किसी धनुर्वेद-विशारद, उपयुक्त, पात्रके हाथ लगे, यही विचारकर, पाञ्चाल-राज द्रुपदने अपनी यह प्रण-घोषणा करा दी थी, कि 'जो वीर, एकही साथ, पाँच बाणोंसे निर्दिष्ट लक्ष्य-वेध कर देगा, वही पाञ्चाल-राजकुमारी कृष्णाका पाणि-ग्रहण कर सकेगा। उसी प्रणको पुनः जतानेके लिये, पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नने, द्रौपदीके पास खड़े होकर, बड़ी तेज़ आवाज़में कहा,—

"हे उपस्थित सभ्यगण! आप लोग ध्यानसे सुनिये। ये पाँचों तीर और धनुष रखा है। वह देखिये, ऊपर एक मछली लटक रही है और उसके नीचे, यन्त्रके बीचमें, एक छेद देख पड़ता है। जो वीर, उस मछलीकी परछाईं जलमें देखकर, उसकी पुतलीको पाँच बाणों द्वारा वेध सकेगा, आज मेरी त्रिभुवन-सुन्दरी भगिनी, उसीके गलेमें जयमाल्य पहिना देगी।" इसके बाद कृष्णाको, जितने राजा लोग वहाँपर बैठे हुए थे, उन सबके नाम, परिचय-सहित, बतला दिये गये। वहाँ, अपने बड़े भाई बलरामके साथ, भगवान् श्रीकृष्ण भी आये हुए थे। यद्यपि और किसीको

द्रौपदी-स्वयंवर।

"अर्जुनने जलमें परछाईं देखते हुए निशाना साधकर लक्षको वेध किया।"

[पृष्ठ—५६]

Burman Press, Calcutta.

मालूम न था, कि यहाँ पाण्डव भी आये हुए हैं ; तथापि ब्राह्मणोंके समुदायमें बैठे हुए, अपने फुफेरे भाइयोंको, अन्तर्यामी श्रीकृष्णने, फ़ौरन पहचान लिया। यही नहीं, बल्कि उन्होंने अपने भाई बल-रामको भी, उन्हें दिखला दिया।

अब धृष्टद्युम्न बैठ गया। उसके बैठतेही सभा-भवन कोला-हलसे भर गया। प्रणके अनुसार लक्ष्य-बेध करके, द्रौपदीके समान रमणी-रत्न पानेके लिये, अनेक राजा, बड़े उत्साहके साथ, आगे बढ़े ; किन्तु लक्ष्य-बेधकी बात तो दूर रही, उनमेंसे कोई उस धनुष-पर रोदातक न चढ़ा सका ! जब बहुतसे राजा इस काममें निराश होगये, तब कर्ण आगे बढ़ा और उसने लक्ष्य-बेध करना चाहा। यह देख, द्रौपदी चिल्लाकर बोल उठी,—"मैं सूत-पुत्रको नहीं वरूँगी।"

यह सुन, कर्ण, लज्जासे नीचा मुँह किये, अपने आसनपर जा बैठा। दुर्योधनके पास बैठे हुए भीष्म, इस घटनाको देखकर, थोड़ी देरके लिये कुछ खिन्न हुए। इसी समय, उन्हें पाण्डवोंका स्मरण हो आया। पाण्डवोंकी याद आतेही उनकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं।

बड़े-बड़े वीर राजा, जब एक-एक करके, हतोत्साह हो गये, तब अर्जुनसे न रहा गया। क्षत्रिय-वीरोंकी असफलता और उनकी दुर्दशा देख, छद्मवेशी अर्जुनका हृदय व्याकुल हो उठा। वे, अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर और भीमको प्रणामकर, ब्राह्मण-मण्डलीमेंसे उठ खड़े हुए और उन्मत्तकी भाँति उछलते-कूदते वहाँ जा पहुँचे, जहाँ धनुष-बाण और धृष्टद्युम्न द्वारा दिखाया हुआ लक्ष्य, रखा था। अब उन्होंने, धीरे-धीरे, उस धनुषको उठाया और सबके देखते-देखते उसपर रोदा भी चढ़ा दिया ! अनन्तर उसपर पाँचों बाण रख और जलमें मछलीकी परछाईं देखकर, लक्ष्यको बेध दिया ! बनावटी मछली बिंधकर ज़मीनपर आ गिरी।

अर्जुनके इस असाध्य-साधनको देख, सभामें, भारी हलचल मच गयी। सैकड़ों बाजे एक साथ बजने लगे। अर्जुनके मस्तक-पर पुष्प-वृष्टि होने लगी! मञ्चोंपर बैठे हुए राजाओंने शर्मसे, अपनी-अपनी, गर्दनें नीची कर लीं। कृष्णाने लक्ष्य-वेधी अर्जुनके गलेमें, उसी क्षण, अपने हाथकी वरमाला पहना दी!

इसके बाद अर्जुन, भाइयोंके साथ, स्वयंवर-मण्डपसे ज्योंही निकले, त्योंही द्रुपदने अर्जुनके हाथमें द्रौपदीको सौंप दिया। यह देख, सब राजा लोग, उनसे, युद्ध करनेको तैयार हो गये। वे बोले,—"इस ब्राह्मण और इस पापी द्रुपदको मार डालो; क्योंकि अपने वर्णके क्षत्रियोंके रहते, कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय-कन्यासे विवाह नहीं कर सकता।" यह दशा देख, द्रुपदने ब्राह्मणोंकी शरण ली। ब्राह्मणोंने कहा,—"राजन्! आप डरिये मत; हमलोग आपपर कुछ भी आँच न आने देंगे।" इधर भीमने, पासमेंही लगे, एक वृक्षको उखाड़ लिया और अर्जुनने, परीक्षाके लिये रखे हुए, धनुषको उठा लिया। बस, फिर क्या था! दोनों ओरसे मार-काट होने लगी! कर्ण और मद्र-नरेश शल्य, अर्जुन और भीमके हाथोंसे पिटकर, ऐसे भागे, कि फिर उन्होंने पीछे फिरकर भी न देखा। उनको भागते देख, अन्यान्य राजा लोग भी भाग गये। जीत पाण्डवोंके ही पाले पड़ी।

पाण्डवोंका विवाह।

अब पाण्डवगण, द्रौपदीको साथ लिये, उस कुम्हारके यहाँ पहुँचे, जहाँ उनकी माता, कुन्ती, बैठी हुई पुत्रोंके आनेकी बाट जोह रही थीं। दरवाज़ेपर पहुँचकर, उन्होंने, प्रसन्नतापूर्वक, कहा,—"माता! आज हम भिक्षामें एक बड़ीही सुन्दर वस्तु लाये

हैं।" कुन्तीने भीतरसेही, विना देखे-भाले, उत्तर दिया,—"सर्वे समेत्य भुङ्क्त।" (अर्थात्—सब मिलकर भोगो।)

परन्तु जब उन्होंने द्रौपदीको देखा, तब वे बड़े असमञ्जसमें पड़ गयीं। उन्होंने कहा,—"पुत्रो! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, जो विना सोचे-समझे मैंने यह कह दिया, कि तुम सब मिलकर भोगो! अब क्या होगा? मैं तो आजतक कभी झूठ नहीं बोली!"

उस समय युधिष्ठिरने, अपने भाई, अर्जुनसे कहा,—"अर्जुन! न्यायसे तो द्रौपदी तुम्हारी है।"

अर्जुन,—"परन्तु भय्या! शास्त्रोंमें लिखा है, कि बड़े भाईके होते हुए, छोटेका व्याह पहले होना महापाप है। अतः न्यायसे तो द्रौपदी आपकीही होती है।"

युधिष्टिर,—"तो भाई! सुनो; मेरा विचार यह है, कि द्रौपदी सबकी हो। इससे माताका कथन भी सत्य होगा और हम लोगोंमें भी, परस्पर, एक विशेष स्नेह उत्पन्न हो जायेगा।"

इसी समय वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण भी आ पहुँचे। पाण्डवोंने, देखतेही, उन्हें गलेसे लगा लिया! बलराम और श्रीकृष्णने, अपनी फूफी, कुन्तीको प्रणामकर, कुशल पूछी। परस्पर मिलकर, सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद, श्रीकृष्ण और बलराम, दोनों जने अपने निवास-स्थानको चले गये।

कन्या-रत्न किसीके हाथ लगा? पहले तो द्रुपदको इसका कुछ भी पता न था; परन्तु पीछे, जब मालूम हुआ, कि कन्याका पाणिग्रहण किसी अज्ञात कुलवाले व्यक्तिने किया है, तब उन्हें बड़ाही दुःख हुआ। किन्तु धृष्टद्युम्न और राज-पुरोहितने, कुम्हारके घर जाकर, पाण्डवोंका असली परिचय पा लिया और किसी अज्ञात पुरुषने द्रौपदीको प्राप्त किया है, इस चिन्तासे राजाको मुक्त कर दिया।

अनन्तर, द्रुपदने बड़े सम्मानसे, माता सहित, पाण्डवोंको अपने यहाँ बुला लिया और उनके आनेपर, युधिष्ठिरसे कहा,—"धर्मराज! आज शुभ दिन है। अतः आजही अर्जुनका विवाह द्रौपदीके साथ, अवश्य, होजाना चाहिये।"

युधिष्ठिरने कहा,—"महाराज! यदि अर्जुन यही चाहते हों, तो प्रसन्नताके साथ, यह शुभ कृत्य, आजही समाप्त हो जाना चाहिये; परन्तु अर्जुनको यह बात स्वीकार नहीं है।"

द्रुपद,—"वे क्या चाहते हैं?"

युधिष्ठिर,—"उनका कथन है, कि बड़े भाईके रहते, छोटेका व्याह होना महापाप है।"

द्रुपद,—"तब आपही इसके साथ विवाह कीजिये।"

युधिष्ठिर,—"महाराज! हम यह भी नहीं कर सकते; क्योंकि माताने हम पाँचोंको यह कन्या देदी है। अतः हम माताका वचन मिथ्या नहीं करना चाहते। आप हम पाँचों भाइयोंके साथ इस कन्याका विवाह कर दीजिये। यह ठीक है, कि एक पुरुषके कई पत्नियाँ हो सकती हैं; परन्तु एक स्त्रीके कई पति नहीं हो सकते; पर वही बात, जिसे लोग अधर्म समझते है, कहीं-कहीं धर्ममें भी परिणत हो जाती है। एक तो हम पाँचों भाई एक-मन, एक-प्राण हैं; दूसरे, माताकी आज्ञा है। पिता-माताकी आज्ञाको, कहीं-कहीं, शास्त्रोंकी आज्ञासे भी अधिक महत्व मिला है। अतः आप, इस विषयमें, अधिक सोच-विचार न कर, यथोचित कार्य कीजिये।"

इसी समय वहाँ व्यासजी भी आ पहुँचे। उन्होंने सारा हाल सुनकर कहा,—"आप लोग क्यों वृथा व्याकुल होते हैं? यह बात असम्भव नहीं है। वास्तवमें द्रौपदीके पाँचही पति होंगे। इसका असली कारण मैं तुम्हें बताये देता हूँ। पहले ज़मानेमें किसी

ऋषिकी एक परम सुन्दरी कन्या थी। वह अपना विवाह किसी योग्य, गुणी, व्यक्तिके साथ करना चाहती थी। इसके लिये उसने घोर तप किया। तपसे महादेव प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा,—'पुत्री! वर माँगो।' वर माँगते हुए उसने पाँच वार 'पतिं देहि' कहा। इसपर महादेव बोले,—'हे सुन्दरि! तुमने पाँच वार पतिकी प्रार्थना की है; इसलिये पाँच पुरुषोंके साथ तुम्हारा विवाह होगा।' वही ऋषि-कन्या आपके यहाँ, द्रौपदीके रूपमें, उत्पन्न हुई है। अतः शिवजीके वरदानके अनुसार उसके पाँच पति ही होंगे।"

व्यासजीकी यह बात सुनकर सब लोग चुप होगये।

अब विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। मनुष्योंकी भीड़, बाजोंकी गगन-भेदिनी ध्वनि, गानेवालोंका समतान गान, इन सबने मिलकर, वहाँ, महा समारोह मचा दिया। राजा द्रुपदने शुभ लग्न और शुभ घड़ीमें पाण्डवोंका विवाह, द्रौपदीके साथ, कर दिया। युधिष्ठिरादि पाँचों भाई, द्रौपदीका पाणि-ग्रहणकर, द्रुपदके भवनमें, परम सुखसे समय बिताने लगे। सुशिक्षिता, सदाचारिणी और सुशीला पुत्र-वधूको पाकर, कुन्तीदेवी भी बड़ी प्रसन्न हुईं।

पाण्डवोंकी राज्य-प्राप्ति।

जब दुर्योधनादि कौरवोंको यह बात मालूम हुई, कि पाण्डव जीवित हैं, वे लाक्षा-गृह-दाहमें नहीं जले; तब उनकी मण्डलीने फिर धृतराष्ट्रको बहकाना शुरू किया।

दुर्योधन बोला,—"पिताजी! हमारा यह कौशल भी व्यर्थ हुआ! अब कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिये, जिससे ये लोग, आपसमेंही, लड़कर मर जायें।"

कर्णने कहा,—"दुर्योधन! तुमने अबतक, पाण्डवोंके नाशके

लिये सैकड़ों चालें चलीं; परन्तु वे सब-की-सब व्यर्थही हुईं। अब षड्यन्त्र रचनेकी क्या आवश्यकता है? यदि उन्हें मारनाही चाहते हो, तो सम्मुख युद्ध करके मारो।"

धृतराष्ट्रको इस प्रकार बहकानेपर भी, भीष्म, विदुर, द्रोण और कृपकी यही सम्मति रही, कि 'यदि तुम अपना भला चाहते हो, तो पाण्डवोंको उनका आधा राज्य बाँट दो।' दुर्योधन, कर्ण और दुःशासनने बहुतेरा चाहा, कि धृतराष्ट्र ऐसा न करें; परन्तु भीष्मकी न्याय-सङ्गत बातोंने धृतराष्ट्रको, राज्यका अर्द्धांश, युधिष्ठिरको, देनेके लिये मजबूर कर दिया।

भीष्मने कहा,—"बेटा धृतराष्ट्र! मेरे लिये तुम और पाण्डु, दोनोंही, समान रहे हो। अतः तुम दोनोंकी सन्तानें भी मुझे समान रूपसे प्यारी हैं। ऐसी अवस्थामें पाण्डवोंका अनिष्ट, मैं कैसे देख सकता हूँ? आपसकी फूट बुरी होती है; इस लिये पाण्डवों-को उनका आधा राज्य दे देनाही उचित है। दुर्योधन! तुम जिस तरह समझते हो, कि यह समस्त राज्य मेरी पैतृक सम्पत्ति है, पाण्डव भी वैसाही समझते हैं। यदि उन्हें राज्य न मिला, तो तुम किस प्रकार राज्य पा सकते हो? मेरी सम्मति तो यही है, कि अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको, प्रसन्नता-पूर्वक आधा राज्य देकर, तुम-लोग, सदाके लिये बैरको आग बुझा दो। वैर बाँधनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आधा राज्य दे देनेसे, दोनों ही पक्षोंका मङ्गल है। यदि ऐसा न होगा, तो किसीकी भी भलाई न होगी। विशेषकर, सब लोग, तुम्हेंही दोषी ठहरायेंगे। याद रखो, इस वसुन्धरापर, कीर्तिही मानव-जातिका एकमात्र धन है। कीर्ति-मान् लोग, मरजानेपर भी, सदैव जीवित रहते हैं और निन्दनीय व्यक्ति, जीते हुए भी मृतकके समान हैं। तुम भी इस समय, कीर्ति-

रक्षाके लिये, कुरु-कुलके योग्य, न्याय और धर्मके अनुसार काम करो। किसी कविने कहा है,—'महाजनो येन गतः स पन्थः'—अर्थात् जिस मार्गका अवलम्बन तुम्हारे पूर्व-पुरुष कर चुके हैं, उसीका अनुकरण तुम भी करो। हमलोगोंके सौभाग्यसे, माता सहित, पाण्डव बच गये हैं। अच्छा हुआ, जो दुरात्मा पुरोचनका मनोरथ पूरा न हो सका। जिस दिन मैंने सुना, कि माता सहित पाँचों पाण्डव जल मरे हैं, उसी दिनसे मेरा, लोगोंके सामने, मुँह दिखाना, कठिन होगया था। लोग पुरोचनको बुरा न कहकर, तुम्हें ही बुरा बताते हैं। पाण्डव एक मत, एक हृदय और एक आत्मा हैं। अधर्मसे भलेही तुम उनका हिस्सा न दो; पर धर्मकी दृष्टिसे देखनेपर, तुम ऐसा नहीं कर सकते। यदि तुम धर्मानुसार चलना चाहते हो, यदि तुम मुझे प्रसन्न रखना चाहते हो और यदि तुम्हें अपनी भलाई करनी स्वीकार है, तो मेरा कहा मानो। उनका न्यायोचित भाग, उन्हें लौटा दो।"

अन्तमें धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुर, पाण्डवोंको लिवाने, पाञ्चाल गये। श्रीकृष्ण और कुन्ती सहित पाण्डव, विदुरके साथ, हस्तिनापुरमें लौट आये। "पाण्डव-गण, राजनीति-विशारद भगवान् श्रीकृष्ण, कुन्ती और द्रौपदीके साथ, आ रहे हैं"—यह समाचार सुनतेही, उनकी अभ्यर्थनाके लिये, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और कितनेही कौरव गण, नगरके बाहर आये। पाण्डवोंका आना सुनकर, पुरवासियोंके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने एक स्वरसे कहना आरम्भ किया,—"आज धर्मात्मा युधिष्ठिर, पितृ-राज्यमें, लौटकर आरहे हैं। उनका आगमन हमारे लिये ऐसा है, मानो महाराजा पाण्डु स्वयं, हमलोगोंके हितके लिये, स्वर्गसे उतरकर आरहे हों। पाण्डवोंके आगमनसे आज हमारा आनन्द-सागर उथल-पुथल हो रहा है।

यदि, इस जन्म वा पूर्व जन्ममें, हमने कोई पुण्य-कार्य किया हो, तो उस पुण्यके फलसे धर्मराज, युधिष्ठिर, सहस्र वर्षों तक जीवित रहें, यही हमारी कामना है।"

क्रमशः पाण्डव राज-भवनमें आ पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने अपने बड़ोंको प्रणाम किया। कुछ समय विश्राम करनेके बाद, भीष्मने, पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके पास बुला भेजा। वे, विनीत भावसे, राज-सभामें आये। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको, आधा राज्य देकर, उन्हें खाण्डव-प्रस्थमें रहनेकी आज्ञा दी। तदनुसार, प्रसन्न मनसे, पाण्डव, श्रीकृष्णको साथमें लेकर, खाण्डवप्रस्थकी ओर चल पड़े।

राज्य-प्रतिष्ठा।

पाण्डव, वहाँ पहुँच और 'इन्द्रप्रस्थ'* नामका एक विस्तृत नगर निर्माणकर, सुख-पूर्वक रहने लगे। देखते-देखते खाण्डवप्रस्थकी, आशातीत, उन्नति हो गयी! बड़े-बड़े धनिक, व्यापारी और ब्रह्म-वेत्ता ब्राह्मणोंने वहाँ आकर अपने रहने तथा व्यापारादिके लिये अच्छे-अच्छे रमणीय भवन बनवा लिये। स्थान-स्थानपर हाट-बाज़ार और बाग़-बग़ीचे लग गये! ये सब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी पसन्दसे बनवाये थे। जब खाण्डवप्रस्थ, अच्छी तरहसे, बस गया, तब श्रीकृष्ण अपने नगरको लौट गये।

पाँचों पाण्डवों और द्रौपदीमें, परस्पर, बहुतही प्रेम था। उन सबका वर्ताव बुद्धिमान्, धार्मिक और नीतिज्ञ-कुटुम्बियों जैसा था। जिस समय एक भाई द्रौपदीके साथ विहार करता, उस समय, अन्य भाई, भूलकर भी, उसके सुख-वासमें बाधा न डालते थे। उन लोगोंने यह नियम बना रखा था, कि उनमेंसे यदि कोई, किसी

* 'इन्द्रप्रस्थ'कोही आजकल 'दिल्ली' कहते हैं।

समय, किसी प्रकार, इस नियमका उल्लङ्घन करेगा, तो उसे बारह वर्षतक, संन्यासी बनकर, वनमें रहना पड़ेगा। पाण्डव अत्यन्त धर्मात्मा थे ; इसीसे उनके नीति-पूर्ण शासनमें प्रजाकी सुख-समृद्धि-की सीमा न थी। पाण्डव अस्त्र-बलसे शत्रु-शासन और शास्त्र-बलसे प्रजा-पालन किया करते थे। पाण्डवोंके धर्मानुष्ठानसे सारा देश दोष-हीन, दुःख-व्याधि-रहित और धन-धान्य-पूर्ण हो गया था।

अर्जुन-वन-वास।

एक दिन कुछ चोरोंने एक ब्राह्मणकी गाय चुरा ली। वह ब्राह्मण, पाण्डवोंकी दुहाई देता हुआ, राज-भवनमें आकर, कहने लगा,—"राजन्! मेरी गायको चोर चुराये लिये जाते हैं। आप उनसे मेरी गायका उद्धार कराइये। राजाका धर्म है, कि वह, अपने आप कष्ट सहनकर, प्रजाकी रक्षा करे। प्रजाकी आयका छठा भाग लेकर भी, जो राजा उसकी रक्षा नहीं करता, वह नरक-गामी होता है।" उस समय, राज-भवनमें, सिवा अर्जुनके और कोई उपस्थित नहीं था। ब्राह्मणका विलाप सुनकर अर्जुनने कहा,—"हे विप्र! आप धैर्य धरिये। मैं अभी चोरोंको दण्ड देकर, आपकी गाय छुड़ाये देता हूँ।" यह कहकर अर्जुन, अपना धनुष लेनेके लिये, अस्त्रागारमें गये। उस समय महाराजा युधिष्ठिर, द्रौपदी-सहित, उसी अस्त्रागारमें थे। यह देख, अर्जुन, सब भाइयोंके बाँधे हुए नियमको यादकर, सहसा भीतर जाते हुए संकुचित हुए ; पर प्रजाका कार्य भी तो अवश्य करना होगा? यह सोचकर, वे, भीतर घुस गये और अस्त्र लेकर गाय ढूँढ़ने चले गये। चोरोंको दण्ड देकर, गाय ब्राह्मणको देनेमें, उन्हें, देर न लगी। ब्राह्मण, गाय लेकर अर्जुनको अनन्त आशीर्वाद देता हुआ, अपने घर चला गया।

इसके बाद अर्जुन, महाराजा युधिष्ठिरके पास गये और हाथ जोड़कर, बोले,—"मान्यवर! मैंने आपके बाँधे हुए नियमका उल्लङ्घन किया है; इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये, कि मैं संन्यासी होकर, बारह वर्षके लिये, वनमें निवास करूँ।"

युधिष्ठिरने कहा,—"भय्या! तुमने जो किया है, उसका नाम नियम-भङ्ग नहीं है। तुमने तो एक ब्राह्मणकी सहायता करनेके लियेही अस्त्रागारमें प्रवेश किया था। इसमें तो मैं भी पूर्णतया सहमत हूँ। फिर तुम मुझसे छोटे हो। यदि स्त्रीके साथ छोटा भाई घरमें हो और बड़ा वहाँ चला जाये, तब तो अवश्य अधर्म है; पर यदि स्त्रीके साथ बड़ा भाई घरमें हो, तो छोटे भाईका वहाँ जाना, अनुचित और अधर्म नहीं माना जा सकता। इस लिये तुम मेरा कहा मानकर, बारह वर्षके लिये वन-वासी होनेकी इच्छा त्याग दो; क्योंकि तुमने कोई भी अनुचित काम नहीं किया है।"

अर्जुन,—"मान्यवर! आप यह क्या कहते हैं? आपनेही तो मुझे अनेक बार उपदेश दिया है, कि छलपूर्वक सत्य, धर्म और प्रतिज्ञाका पालन कभी न करना चाहिये। अतः इस समय, स्नेहके वशमें होकर, आप मुझे कर्त्तव्य-पालनसे न रोकिये।"

यह सुनकर युधिष्ठिरने बड़े कष्टसे, अर्जुनको वन-गमनकी अनुमति दे दी। उनकी आज्ञा ले अर्जुन, शीघ्रही ब्रह्मचारीकासा वेश बनाकर, वनको चले गये।

जितने समयतक अर्जुन वनवासी रहे, उतने समयके बीचमें, वनमें, अनेक अद्भुत घटनाएँ घटीं। वहाँ उनसे अनेक विद्वान् लोगोंका सम्भाषण हुआ। घटना-वश उनका, नाग-कन्या उलूपी और मणिपुरकी राजकुमारी चित्राङ्गदाके साथ विवाह हुआ। अनन्तर अर्जुन गङ्गा-तीर्थपर चले गये। वहाँ एक दिन वे गङ्गा-स्नान

करने गये। गङ्गाके किनारेपर पहुँचकर, उन्होंने देखा, कि वहाँ बड़े-बड़े सुन्दर पाँच तीर्थ हैं; किन्तु सुन्दर होनेपर भी वहाँ, न कोई रहता है और न उनमें कोई स्नानही करता है। यह देख, उन्हें, बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसका असली कारण जाननेके लिये, पासके आश्रमोंमें गये और वहाँ रहनेवाले ऋषि-मुनियोंसे, उक्त तीर्थोंके निर्जन रहनेका कारण पूछा! उत्तरमें उन लोगोंने कहा,—"इन पाँचो तीर्थोंमें पाँच मगर रहते हैं, जो वहाँ स्नान करनेवाले व्यक्तिको फ़ौरन पकड़कर खा जाते हैं। इसीसे किसीको वहाँपर रहनेका साहस नहीं होता।"

कारण जानकर अर्जुन फिर वहाँ गये। उन्होंने उन तीर्थोंमेंसे सबसे बड़े एक तीर्थके जलमें जैसेही पाँव रखा, वैसेही एक बड़े भारी मगरने उनका पैर पकड़ लिया। अर्जुन बड़े बली थे; इसलिये वे उसे किनारेपर खींच लाये। स्थलपर आतेही मगर,मगर नहीं रहा; बल्कि एक बड़ी सुन्दर कन्या बन गया! यह देखकर अर्जुनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने उससे पूछा,—"अरी सुन्दरी! तू कौन है?"

सुन्दरीने हाथ जोड़कर,विनयके साथ कहा,—"मैं 'वर्गा' नामकी अप्सरा हूँ। एक तपस्वीका अपमान करनेके कारण, उसीके शापसे, मुझे तथा मेरी चार बहनोंको यह देह धारण करना पड़ा था। शाप देते समय, तपस्वीने कहा था, 'जब कोई मनुष्य, तुम्हें बल-पूर्वक किनारेपर खींच लायेगा, तब तुम इस देहसे छुटकारा पा जाओगी।' आज आपने तपस्वीके उस शापसे हमारा उद्धार किया है; इसलिये हम अब आपको अनन्त आशीर्वाद देती हुई, अपने धामको जाती हैं।" यह कह, वह अप्सरा तथा पासके चार तीर्थोंमें रहने वाली उसकी चारों बहनें स्वर्गको चली गयीं। इसके बाद अर्जुन, अनेक तीर्थोंमें होते हुए, प्रभास-तीर्थमें पहुँचे। वहाँ उनकी, सपरिवार,

श्रीकृष्णसे भेंट हुई। बलराम, आदि यादव अर्जुनको, सत्कार-पूर्वक द्वारका ले गये।

वहाँ एक उत्सवमें जब सब लोग, अपनी स्त्रियों सहित, रैवतक-पर्वतपर जमा हुए, तब बलरामकी बहिन, सुभद्राको देख, अर्जुनका मन उसपर मोहित हो गया। एक तो सुभद्रा गुण और रूपमें अनुपम थी ही, तिसपर वस्त्राभूषणोंकी अपूर्व सज्जासे, उस समय, उसका रूप सैकड़ों धाराओंसे वह निकला था। उधर सुभद्राकी दृष्टि भी, चारों ओरसे खिँचकर, अर्जुनके अलौकिक सौन्दर्यपर जा पड़ी। मनका भाव मुखपर झलकने लगा। श्रीकृष्ण दोनोंके मनकी बात समझ गये। उन्होंने हँसकर अर्जुनसे कहा,—"मित्र! तुम वन-वासी, संन्यासी होकर भी, स्त्रियोंके नयन-बाणोंसे चञ्चल हो जाते हो!"

यह सुनकर अर्जुनने लज्जासे सिर नीचा कर लिया। कृष्ण जानते ही थे, कि अर्जुनसे बढ़कर पृथ्वीमें अन्य कोई वीर नहीं है*।

---

* अर्जुनकी बराबरी करनेवाला एक वीर था। उसका नाम था, निषाद एकलव्य। पर अर्जुनने उसे भी अपनी बराबरीका न रखा था। उसकी कथा महाभारतमें यों लिखी है,—"एक दिन हिरण्यधनु-निषादका पुत्र एकलव्य, गुरु द्रोणके पास अस्त्रविद्या सीखने आया। परन्तु द्रोणने नीच जातिका होनेके कारण, उसे शिष्य बनाना स्वीकार न किया। इसलिये एकलव्य, गुरु द्रोणको प्रणामकर, चला गया; पर वह निराश न हुआ, वरन् वनमें द्रोणकी एक मट्टीकी मूर्त्ति बनाकर, उसीके सामने, वह बाण-विद्याका अभ्यास करने लगा। फल यह हुआ; कि कुछही दिन बाद, एकलव्य, अचूक निशाना मारने लगा। उसे अस्त्रोंका परखना तथा प्रयोग और संहार करना—सभी कुछ आ गया।

एक दिन गुरुको लेकर, कुरुवंशी राजकुमार, शिकार खेलनेके लिये गये। उनके साथ कई शिकारी कुत्ते भी थे। उनमेंसे एक कुत्ता एकलव्यके पास जा पहुँचा। एक तो एकलव्य वनवासी, तिसपर नीच और

महाभारत
SHRI SANMATI LIB

एकलव्य और द्रोण।

"निषादने निर्भयतासे अंगूठा काट गुरुके आगे रख दिया।"

[पृष्ठ—७१]

Bruman Press, Calcutta.

अतः उन्होंने सोचा, कि अच्छा हो, यदि सुभद्रा अर्जुनकेही साथ ब्याह दी जाये। पर विवाह किस तरह हो? क्षत्रियोंके विवाहकी कई प्रथाएँ हैं। कन्याको बलपूर्वक हर लेजाना भी, उनके विवाहकी एक प्रथा है। यह सोच, उन्होंने, अर्जुनको बलपूर्वक सुभद्रा-हरणकी सलाह दी। अर्जुनने श्रीकृष्णके कहनेके अनुसार, उसी क्षण, एक दूतके द्वारा, यह विचार युधिष्ठिरपर भी प्रकट किया। उन्होंने भी वैसा करनेके लिये अपनी सम्मति दे दी।

कुछ समय बाद, एक दिन, सुभद्रा, दासियोंके साथ, रैवतक पर्वतपर गयी। वहाँ सब देवताओंके दर्शन तथा रैवतककी प्रदक्षिणा

गँवार होनेके कारण, बड़ा डरावना मालूम होता था। उसका ऐसा रूप देखकर कुत्ता भौंकने लगा। इसपर एकलव्यको बड़ा क्रोध हो आया। उसने कुत्तेके मुँहमें सात बाण मारकर, उसका भौंकना बन्द कर दिया। कुत्ता भागता हुआ अपने दलमें आगया। उसकी ऐसी दशा देखकर, राजकुमारों-को बड़ा विस्मय हुआ और वे उस बाण चलानेवालेको ढूंढ़ने लगे। अन्तमें उन्हें बाण-विद्याका अभ्यास करता हुआ, एकलव्य देख पड़ा। राजकुमारोंने पूछा,—"भाई! तुम कौन हो?" इसपर एकलव्यने कहा,—"मैं हिरण्यधनु निषादका पुत्र और गुरु द्रोणका शिष्य एकलव्य हूँ।' राजकुमार शिकारसे लौट आये। आकर अर्जुनने द्रोणसे कहा,—'महाराज! आप तो यह कहा करते हैं, कि 'तू अस्त्र-विद्यामें अद्वितीय है'; पर आपका शिष्य एकलव्य तो मुझसे भी अधिक हस्तलाघवी है।" द्रोणको निषादका कुछ ध्यान भी न था। वे सारा भेद जाननेके लिये, अर्जुन सहित, एकलव्यके पास गये। एक-लव्यने गुरुकी बड़ी अभ्यर्थना की। वह बोला;—"आचार्य! मैं आपका कौनसा अभीष्ट साधन करूं?' इसपर द्रोणने गुरु-दक्षिणा-स्वरूप उसके दाहिने हाथका अगूंठा माँगा। निषादने निर्भयतासे अपना अंगूठा काट-कर गुरुके आगे रख दिया। इससे उसकी बाण चलानेकी फुर्ती जाती रही। अर्जुन अब सचमुचही पृथ्वीभरमें 'सर्वश्रेष्ठ वीर' हो गये।

करके जब वह द्वारिकाको जाने लगी, तब अर्जुन उसको अपने रथपर बैठाकर इन्द्रप्रस्थकी ओर चल दिये। ज्योंही यह समाचार यादवोंको मालूम हुआ, त्योंही वे युद्धकी तैयारीकर, अर्जुनको पकड़ने चले। विशेषकर बलराम, अर्जुनके ऊपर, बहुतही क्रुद्ध हुए; परन्तु श्रीकृष्णने अर्जुनके शौर्य-वीर्य आदि गुणोंकी प्रशंसाकर, सबको रोक दिया और कहा,—"अर्जुनका इसमें अपराधही क्या है? क्षत्रिय लोग तो विवाहकी इस प्रथाको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। तिसपर अर्जुन इतने बलवान् हैं, कि आप उन्हें, युद्ध करके—किसी तरह भी नहीं जीत सकते। ऐसी हालतमें यदि वे आप सबको जीतकर सुभद्राको ले जायेंगे, तो आपकी बड़ी हँसी होगी। इससे यही अच्छा है, कि आपलोग अर्जुनको, सम्मान-पूर्वक, लौटाकर सुभद्राका विवाह उनके साथ, खुशी-खुशी, कर दीजिये।"

कृष्णके इस कथनसे सबका क्रोध शान्त होगया। यादवोंने अर्जुन तथा सुभद्राको लौटाकर, द्वारकामें, उनका, यथारीति विवाह कर दिया। बारह वर्षमें जो कुछ दिन बाकी थे, उन्हें पुष्करतीर्थमें बिताकर अर्जुन, सुभद्रा सहित, खाण्डवप्रस्थको लौट आये। अर्जुनके सस्त्रीक और सानन्द लौट आनेसे, पाण्डव-परिवारके आनन्दकी सीमा न रही।

कुछ दिनोंके बाद अर्जुनको सुभद्राके गर्भसे 'अभिमन्यु' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। द्रौपदीके भी युधिष्ठिरसे 'प्रतिविन्ध्य,' भीमसेनसे 'सूतसोम,' अर्जुनसे 'श्रुतकर्म्मा,' नकुलसे 'शतानीक' और सहदेवसे 'श्रुताशन' नामके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए।

खाण्डव-वन-दाह।

एक दिन अर्जुन और श्रीकृष्ण, यमुना-तटपर, जल-क्रीड़ा करने गये। वहाँ, अग्नि-देवता, ब्राह्मणका रूप बनाकर, उनके पास आये

और बोले,—"महाशय ! मैं अग्निदेव हूँ। मुझे इस समय बड़ी भूख लगी है। श्वेतकी राजाके सौ वर्षवाले यज्ञमें निरन्तर हवि-भक्षण कर, मैं विकृत और मलिन होगया हूँ ; इसीसे मेरी भूख प्रबल होगयी है। पर अब अन्न खानेकी अभिलाषा नहीं ; वरन् खाण्डव-वनके जीव-जन्तुओंको जलाकर खानेकी अभिलाषा है। परन्तु उसमें इन्द्रका मित्र तक्षक रहता है। इसलिये, जब मैं वनको जलाऊँगा, तब इन्द्र अवश्य जल बरसाकर उसमें बाधा देगा। अतः इस कार्यमें आप मेरी सहायता कीजिये।"

अर्जुन,—"हे प्रभो ! हमारे अस्त्रादि ठीक नहीं हैं। यदि हमें उत्तम अस्त्र मिल जायें, तो हम आपका मनोरथ पूरा कर दें।"

अर्जुनकी बात सुनतेही अग्निदेवने वरुणदेवसे 'गाण्डीव' धनुष, कभी खाली न होनेवाला 'अक्षय' नामका तूणीर और 'कपिध्वज' नामक एक रथ लाकर, उन्हें दे दिया। इसके सिवा वे 'सुदर्शन' नामका एक चक्र भी लाये थे। उसे उन्होंने श्रीकृष्णको दे दिया। अस्त्रादि पाकर, अर्जुन और श्रीकृष्ण, बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अग्निको अभय दे दिया,कि "अब आप सानन्द, प्रज्ज्वलित होकर, अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये। यह सुनतेही अग्निदेवने खाण्डव-वनमें प्रवेश किया। बातकी-बातमें चारों ओर आग लग गयी। अनेक जीव-जन्तु, जलकर, भस्म होगये। जो उससे बचकर भागे, वे अर्जुन और श्रीकृष्णके शिकार बने। इन्द्रने अपने मित्र, तक्षकके कुटुम्बको बचानेका बड़ा प्रयत्न किया, पानी भी बरसाया ; पर अर्जुनके अस्त्र-प्रभावसे उसका कुछ भी असर न हुआ। अन्तमें देवराज इन्द्र, श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास आकर बोले,—"वीरो ! वास्तवमें आप लोग महाबली हैं। आपको कोई भी हरा नहीं सकता ; अतः मैं आप लोगोंपर प्रसन्न हूँ। कोई वर माँगिये।"

अर्जुनने कहा,—"देव ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं, तो हमें अनेक प्रकारके दिव्यास्त्र प्रदान कीजिये।"

इन्द्र,—"वत्स ! जैसे अस्त्र तुम चाहते हो, वैसे मेरे पास नहीं हैं, तुम देवादिदेव महादेवजीकी तपस्या करो। उनसे अवश्यही तुम्हें अच्छे-अच्छे अस्त्र प्राप्त होजायेंगे।"

यह कहकर इन्द्र चले गये। अग्निदेवका मनोरथ सिद्ध हुआ। वे श्रीकृष्ण और अर्जुनपर बड़े प्रसन्न हुए। अग्निके इस प्रचण्ड प्रकोपसे केवल छः जीव बचे—तक्षक, मयासुर और मन्दपाल-मुनिके चार पुत्र, जो एक पक्षीके रूपमें वहाँ रहा करते थे। जब अग्निदेव, अनेक आशीर्वाद देते हुए, कृष्णार्जुनसे विदा होगये, तब मयासुरने उनके पास आकर, बड़ी नम्रताके साथ कहा,—"हे वीरवर ! आपने मुझे दूसरा जन्म दिया है। अतः आज्ञा कीजिये, कि मैं प्रत्युपकारमें आपका कौनसा प्रिय-कार्य करूँ ?"

अर्जुन,—"यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो तुम मेरे परम मित्र श्रीकृष्णका कोई काम कर दो !"

यह सुनकर मयासुरने श्रीकृष्णसे कोई सेवा लेनेकी प्रार्थना की।

तब श्रीकृष्णने कहा,—"मयासुर ! तुम, प्रत्युपकार स्वरूप महाराजा युधिष्ठिरके लिये एक ऐसा अपूर्व सभा-भवन निर्माण करो, जिसके जोड़का भवन त्रिभुवनमें दूसरा न निकले।"

सभा-पर्व

यज्ञका विचार ।

मयासुर, श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर, सभा-भवन बनानेके प्रयत्नमें लगा। सभा-भवन बनानेके लिये, पाँच हज़ार गज़ लम्बी-चौड़ी भूमि निर्दिष्ट हुई; पर सभा-भवनका कार्य प्रारम्भ होनेसे पहलेही श्रीकृष्ण द्वारका चले गये। चौदह मासमें सभा-भवन बनकर तैयार होगया। वह भवन बड़ाही अद्भुत बना था। मयासुरने, वास्तवमें श्रीकृष्ण जैसा चाहते थे, उससे भी कहीं बढ़कर भवन बना दिया। शुभ-तिथि और शुभ-लग्नमें महाराजा युधिष्ठिरने, बड़े समारोहके साथ, उसमें प्रवेश किया!

इसी समय, देवर्षि नारदके वहाँ आजानेपर, युधिष्ठिरने बड़ी आवभगतसे उनकी अभ्यर्थना की। देवर्षिने प्रसन्न होकर युधिष्ठिरको, प्रश्नोत्तर-रूपमें, राज्य-शासन-सम्बन्धी अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ दीं। सभा-भवनके सम्बन्धमें, देवर्षिके साथ युधिष्ठिरकी अनेक बातें हुईं। नारदने पाण्डव-सभाकी प्रशंसा करते हुए इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर और ब्रह्माकी सभाओंका वर्णन किया। इसी कथोपकथनके प्रसङ्गमें, राजसूय-यज्ञका फल-वर्णनकर, वे द्वारकाको चले गये। महाराजा युधिष्ठिर भी, राजसूय-यज्ञके विषयमें, अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगे।

चिन्ता करनेके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने, यज्ञ करनेका दृढ़ निश्चय कर, प्रजाके हित-साधनमें मन लगाया। उनकी धर्म-परायणता, भीमके प्रण-पालन, अर्जुनके शत्रु-नाशन, नकुलके सभ्य विनय-वाक्य और सहदेवके धर्मानुरागसे सारा राज्य, सर्वथा सुसम्पन्न और निरापद् होगया। प्रजाके सुख तथा स्वतन्त्रताकी सीमा न रही। मन्त्री, प्रधान, मुनि, ऋषि, पुरोहित, उपाध्याय और भाई-लोग युधिष्ठिरको अब राजसूय-यज्ञ करनेके लिये उत्साहित करने लगे। यह देख, उन्होंने, सबके उत्साह-वाक्योंकी आलोचना करनेके बाद, श्रीकृष्णको बुलवा भेजा।

श्रीकृष्णके आनेपर धर्मराजने, उनके सामने, अपना मनोरथ प्रकट किया। उसे सुन श्रीकृष्णने कहा,—"महाराज! आपका यह मनोरथ सर्वथा प्रशंसनीय है; परन्तु राजसूय-यज्ञ करनेमें पृथ्वीके समस्त राजाओंको पराजित और अनुगतकर, उनका माण्डलीक बनना होता है। किन्तु प्रबल पराक्रमी वीर जरासन्धके जीवित रहते, सब राजाओंको वशमें करना असम्भव है। उसने स्वयं राजसूय-यज्ञ करनेके अभिप्रायसे, बहुतेरे राजाओंको हराकर, बन्दी कर रखा है। हाँ, यदि इस प्रचण्ड प्रतापी जरासन्धको पराजित-कर, बन्दी राजाओंको छुड़ा लिया जाये, तो वे कृतज्ञ चित्तसे आपकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। अतः एक युद्धसेही बहुतसे युद्धोंका लाभ होगा और यज्ञका रास्ता सुगम हो जायेगा।"

श्रीकृष्णकी युक्ति-सङ्गत बात सुनकर, महावीर भीमसेनने भी जरासन्ध-वधकी सम्मति दी। श्रीकृष्णने फिर कहा,—"पापिष्ट ज़रासन्ध इतने राजाओंको जीतकर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसकी प्रबल इच्छा है, कि 'जब मैं, एक सौ राजाओंको बन्दी कर लूँगा, तब उनकी यज्ञमें बलि दूँगा!' इस समय उसके बन्दियोंकी संख्या

छियासी है। संख्या पूर्ण होनेमें, अब, केवल चौदह राजाओंकी और आवश्यकता है। उनके बन्दी होतेही, वह, उन्हें यज्ञमें बलि दे देगा; अतः अब जो राजा, इस दुराचारीको परास्तकर, जगत्में यशस्वी होगा, वही सम्राट्-पदका अधिकारी समझा जायेगा।"

यह सुनकर युधिष्ठिर, जरासन्धकी अजेयता याद करके, यज्ञ-करनेके सङ्कल्पको छोड़ देनेका विचार करने लगे। इसी समय महावीर अर्जुनने, वहाँ पहुँचकर, ओज-भरे वाक्योंसे, उन्हें, इस चिन्ताके त्यागनेका अनुरोध किया। श्रीकृष्णके नीति-पूर्ण वाक्यों और अर्जुनकी ओजस्विनी वक्तृतासे, युधिष्ठिरके मनकी सारी जड़ता दूर होगयी और उन्होंने भीम तथा अर्जुनको, जरासन्धके वधकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर श्रीकृष्णके साथ भीम और अर्जुन, ब्राह्मणके वेशमें, मगध देशकी ओर चले*।

कुछही कालमें तीनों वीर जरासन्धके दरबारमें जा पहुँचे। वहाँ जातेही उन्होंने, उसे, युद्धके लिये ललकारा। श्रीकृष्णने कहा,—"हे राजन्! मैं, भीम और अर्जुन आपसे लड़नेके लिये आये हैं; क्योंकि जब आप, अपनीही जातिके राजाओंको, पशु-तुल्य समझकर, बलि देनेको तैयार हैं, तब सभी क्षत्रिय आपके शत्रु हो सकते हैं। बिना परीक्षाके अपनेको बड़ा भारी बलवान् समझ लेना, अक्षम्य भूल है। महाराजा युधिष्ठिरने, आपकी इस भूलको ठीक करनेके लियेही, हमें यहाँ भेजा है। अब या तो आप, बन्दी राजाओंको छोड़कर, कुरु-राज युधिष्ठिरकी अधीनता स्वीकार कीजिये अथवा हमसे युद्ध कीजिये।"

श्रीकृष्णके साथ बहुत देरतक तर्क-वितर्क करनेके बाद, जरासन्ध

---

* बिहारके 'पटना' और 'गया'—ये दो ज़िले आज भी 'मगह' कहे जाते हैं। 'मगह' शब्द 'मगध'का अपभ्रंश मात्र है।

उनसे युद्ध करनेके लिये तैयार हो गया। श्रीकृष्णने कहा,—"हम तीन व्यक्ति हैं और आप अकेले हैं; इसलिये हममेंसे, जिसके साथ लड़ना चाहें, आप, उसके साथ लड़ सकते हैं।" जरासन्ध, हृष्ट-पुष्ट व्यक्तिको अधिक पसन्द करता था। अतः उसने भीमसेनको मोटा-ताज़ा देख, उन्हींके साथ युद्ध करनेकी इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन भीम और जरासन्ध, परस्पर जीतनेकी इच्छासे, द्वन्द्व-युद्धमें प्रवृत्त हुए। युद्धने धीरे-धीरे महा भयङ्कर रूप धारण कर लिया; क्योंकि दोनोंही वीर, एकसे एक बढ़कर बलवान् थे। कई दिनोंतक युद्ध होनेके बाद, एक दिन, भीमसेनने, क्रोधसे विह्वल होकर, जरासन्धको ज़मीनसे अधरपर उठाकर दे मारा और श्रीकृष्णके इशारेपर, उसकी दोनों टाँगें पकड़ और लात-पर-लात धरकर, बीचसे चीर दिया!

यज्ञका आरम्भ।

जरासन्धके मारे जानेपर श्रीकृष्णने, शीघ्रही, सारे क़ैदी राजाओं-को छुड़ाकर गलेसे लगा लिया। छुटे हुए राजा लोग, श्रीकृष्ण और अर्जुन-द्वारा पुनर्जन्म पाकर, कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, उनके चरणों-पर लोट गये। अनन्तर श्रीकृष्णने उन सबसे कहा,—"राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करेंगे। वे माण्डलीक बननेके अभिलाषी हैं। इस काममें आपलोग उनकी सहायता कीजिये।" राजाओंने प्रसन्नता-पूर्वक युधिष्ठिरकी अधीनता स्वीकार करली और नाना प्रकारके रत्नालङ्कार उनकी भेंटमें दिये। इसके बाद, कृष्ण, भीम और अर्जुन जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधके राज-सिंहासनपर बैठाकर, बहुतसा रत्नादि द्रव्य साथमें लिये, खाण्डवप्रस्थमें लौट आये। धर्मराज युधिष्ठिर, जरासन्ध-वधका वृत्तान्त सुनकर, बहुत ही प्रसन्न हुए!

अब यज्ञकी तैयारियाँ होने लगीं। भीम, अर्जुन, नकुल और

सहदेव, दिग्विजयके लिये निकल पड़े। कुछ दिनों बाद, चारों भाइयोंके दिग्विजय करके लौट आनेपर, जीते हुए धनसे, राज-कोष भर गया। धर्मराज युधिष्ठिर, राजसूय यज्ञके व्ययका अनुमान लगाकर, यज्ञकी तैयारियाँ करने लगे। धीरे-धीरे यज्ञकी वस्तुओंसे सारा खाण्डवप्रस्थ भर गया। सहदेवके भेजे हुए दूतोंने समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि, चारों वर्णोंको निमन्त्रण दिया। अभ्यागत व्यक्तियोंके आनन्द-कोलाहलसे, खाण्डवप्रस्थकी राजधानी, इन्द्रप्रस्थ नगरी गूँज उठी। हस्तिनापुरसे भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य, अश्वत्थामा जयद्रथ और दुर्योधनादि सौ भाई बुलाये गये। राजा लोग, राजधानीकी रमणीयता, यज्ञ-द्रव्योंकी विपुलता और अभ्यर्थनाकी बहुलता देखकर, विस्मित हो गये। ऐसे अपूर्व महोत्सवकी बात, उनलोगोंने, आजतक कभी नहीं सुनी थी।

समस्त निमन्त्रित व्यक्तियोंके आजानेपर युधिष्ठिरने, विनीत भावसे, उनको यज्ञ-सम्बन्धी विविध कार्योंका भार सौंपा। दुःशासनने खिलाने-पिलाने, अश्वत्थामाने ब्राह्मण-सेवा, नीति-चतुर सञ्जयने राज-सेवा, कृपाचार्यने राजाओंके दिये हुए धनका संग्रह, धृतराष्ट्र, जयद्रथ, सोमदत्त तथा बाह्लिकने गृह-पति और राजा दुर्योधनने, दान-दक्षिणा देनेका भार लिया। पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण, सब बातोंकी देख-रेखके लिये नियुक्त किये गये। भगवान् श्रीकृष्णने, निमन्त्रणमें आये हुए, ब्राह्मणोंके पाँव धोनेका भार ग्रहण किया। नियत समयपर, अपूर्व उत्साहके साथ, यज्ञका कार्य आरम्भ हुआ।

अभिषेकके दिन ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, ब्राह्मण और राजाओंके, सभामें, एकत्रित होनेपर, यज्ञ-मण्डपने अपूर्व शोभा धारण की। चारों ओर अनेक प्रकारका वादानुवाद और शास्त्र-विचार होने लगा।

सभामें बैठे देवर्षि नारदने, राजाओंके साथ, यज्ञेश्वर श्रीकृष्णको यज्ञमें उपस्थित देख, चिन्तित चित्तसे, एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा ! उस महोत्सवके समय भी, देवर्षिने, दिव्य दृष्टिसे देखा, कि यह विराट् क्षत्रिय-बल, परस्परकी ईर्ष्यासे, शीघ्रही नष्ट होनेवाला है।

शिशुपाल-वध।

इसके बाद, "समस्त राजाओंमें कौन प्रवीण है ? किसको अर्घ्य-प्रदान करना चाहिये ?" इस विषयकी आलोचना होने लगी। कुरु-श्रेष्ठ महात्मा भीष्मने, श्रीकृष्णकोही अर्घ्य पानेका अधिकारी बताया। उन्होंने सभा-मण्डपको निनादित करते हुए, गम्भीर स्वरमें, युधिष्ठिरसे कहा,—"वत्स ! इस समय तो एक मात्र श्रीकृष्णही ऐसे पुरुष हैं, जो समस्त मण्डलीमें पूजे जा सकें। अतः उन्हींको, सबसे प्रथम, अर्घ्य देना उचित है।" इसके उपरान्त, महामति भीष्मकी आज्ञासे, युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकाही पूजन किया।

यह देख, चेदि-राज, शिशुपाल बहुत बिगड़ा। उसने भीष्म और युधिष्ठिरको घोर मूर्ख बताया तथा श्रीकृष्णको अनन्त कटु-वाक्य कहे ; पर कोई कुछ न बोला। जब वह लगातार बकताही रहा, तब श्रीकृष्णने, यज्ञमें विघ्न होता देख, क्रोधमें आकर, सुदर्शनचक्रसे, उसका सिर काट लिया। शिशुपालके मरतेही फिर किसीने कानतक न हिलाया और यज्ञ सकुशल समाप्त हो गया।

युधिष्ठिरकी आज्ञासे शिशुपालकी अन्त्येष्टि क्रिया, बड़े समारोहसे, की गयी और उसका पुत्र चेदिके राज-सिंहासनपर बैठा दिया गया। राजसूय यज्ञमें निमन्त्रित होकर आये हुए राजालोग, युधिष्ठिरको अपना सम्राट् स्वीकारकर, अपने-अपने देशको लौट गये। श्रीकृष्णने भी द्वारकाकी ओर प्रस्थान किया। अब एकमात्र दुर्योधनही, अपने

मामा शकुनिके साथ, पाण्डवोंके सभा-भवनकी, अच्छी तरहसे, सैर करनेके लिये रह गया।

दुर्योधनकी इर्ष्या।

मयासुरका बनाया हुआ सभा-भवन बड़ा विचित्र था। उसकी अद्भुत बातें देखकर दर्शकगण दाँतों-तले उँगली दबा लेते थे। एक तो दुर्योधन, युधिष्ठिरका वैभव देखकर, वैसेही जल रहा था; तिसपर उसका अभिमान! वह बिना किसीको साथ लियेही सभा-भवनकी विचित्रताको देखने लगा। दिखानेवाले दूसरे किसी आदमीको साथ लेनेकी, उसने, कोई ज़रूरतही न समझी। भवनका फ़र्श स्फटिकका बना हुआ था; उसमें, जहाँ स्थल था, वहाँ जलका भ्रम होता था और जहाँ जल था, वहाँ स्थलकी धारणा होती थी। सर्वत्र ऐसीही चमत्कारपूर्ण कारीगरी की गयी थी।

दुर्योधन एक जगह, स्थलको जल समझ, वस्त्र सिकोड़कर चलने लगा और एक जगह, जलको स्थल समझकर, ज्योंही आगे बढ़ा, त्योंही धम्मसे पानीमें गिर पड़ा! उसके तमाम कपड़े भींग गये। देखनेवाले सब लोग ठठाकर हँस पड़े। अनन्तर, युधिष्ठिरकी आज्ञासे, भीमने उसे नये कपड़े पहननेके लिये ला दिये। यह सब कुछ हुआ; परन्तु दुर्योधनको पाण्डवोंका हँसना बहुत बुरा लगा। वह क्रोधसे दाँत पीसने और हाथ मलने लगा; पर करही क्या सकता था? इसके बाद लज्जा और आत्मग्लानिसे दुःखी हुआ दुर्योधन, शकुनिके साथ, हस्तिनापुर लौट गया।

पाण्डवोंके ऐश्वर्य, महानुभावता, दान-शीलता और आधिपत्य आदिको देखकर दुर्योधनका हृदय, ईर्ष्याकी आगसे, जलने लगा। विशेषकर, सबसे उत्कृष्ट, सभाकी शोभाने उसका मन और

भी मोह लिया। "यह अद्भुत सभा, यह विपुल धन-रत्न, किस तरह मेरा हो?" अब उसे इसी बातकी चिन्ता लग गयी। अन्तमें दुर्योधन शकुनिके पास जाकर बोला,—"मामा! मेरे जीवनको शत बार धिक्कार है। मैं हस्तिनापुरका महाराजा होकर भी, पाण्डवोंसे, सब तरहसे हीनही हूँ। पाण्डवोंका अभ्युदय मेरे हृदयमें, शूल होकर चुभ रहा है। राजसूय-यज्ञ करनेसे चारों दिशाओंमें उनका यश फैल गया है। पृथ्वीके प्राय: सभी राजा उनके अधीन हो गये हैं। मैं उनसे द्वेष रखकर भी, आजतक, उनका कुछ न बिगाड़ सका। अब आपही बताइये, कि मैं क्या करूँ और किस तरहसे उन्हें नीचा दिखाऊँ?"

शकुनि बड़ा धूर्त्त था। उसका स्वभाव था, कि दो जनोंको लड़ाकर, आप, दूर खड़ा हो, तमाशा देखे। अपनी इस लालसाको पूरा करनेके लिये वह, सदाही, मौक़ा ढूँढ़ा करता था। आज दुर्योधनके मुँहसे, उक्त बातको सुनकर, उसकी बन आयी। वह बोला,—"दुर्योधन! तुम क्यों दु:ख करते हो? तुम्हारा हृदय व्यर्थही हिंसाकी आगसे जला जाता है। तुमने, सब कुछ तो कर लिया; पाण्डवोंका विनाश करनेके लिये, तुमने, सभी प्रयत्न तो कर डाले; किन्तु तुम आजतक पाण्डवोंका कुछ भी न बिगाड़ सके। जब वे तुम्हारे आश्रित थे, तब वे साधारण दशामें थे; परन्तु अब तो उनके पास बड़ा वैभव हो गया है। महाबली द्रुपद और परम नीतिज्ञ श्रीकृष्ण तो, एक प्रकारसे, उनके दाहिने हाथही हैं। तिसपर वे स्वयं भी, बल-विक्रममें पृथ्वीभरमें, सर्व-श्रेष्ठ हैं। पैतृक सम्पत्तिको, अपनी चेष्टासे, उन्होंने, सौगुना बढ़ा लिया है। अब उनके सामने तुम कुछ भी नहीं हो। उनसे बैर बाँधना या छल-कौशल करना, विडम्बना मात्र है। तुम्हारे पास अनन्त बल, अनन्त धन

रहते हुए भी तुम वैसे ही हो, जैसे कोई महा शक्तिशाली सिंह, सदा निश्चेष्ट पड़ा रहता हो।"

दुर्योधन,—"तो फिर आपही बताइये, कि मैं कौनसा ऐसा यत्न करूँ, जिससे पाण्डव नीचा देखें ?"

शकुनि,—"यत्न केवल एक है और उस यत्नसे मैं, कलही, पाण्डवोंकी कुल धन-सम्पत्ति छीन सकता हूँ। वह यह है, कि मैं द्यूत-विद्यामें अपना सानी नहीं रखता। तुम युधिष्ठिरको मेरे साथ जुआ खेलनेके लिये बुलवा भेजो। उन्हें भी जुएका कुछ शौक़ है; पर वे जानते कुछ भी नहीं। मैं उनको, कुछही देरमें, हराकर दर-दरका भिखारी बना दूँगा। उनकी इस चमकती हुई लक्ष्मीको ज़रासी देरमें मिट्टीमें मिला दूँगा ; पर इस विषयमें पिताकी आज्ञा ले लेनी परम आवश्यक है।"

यह बात दुर्योधनको बहुत पसन्द आयी। अब वे दोनों धृतराष्ट्रके पास गये और उन्होंने उनसे सब हाल कह सुनाया।

सर्वनाशका सूत्र-पात।

दोनोंकी बातें सुनकर धृतराष्ट्रने कहा,—"बेटा ! यह समय शान्तिके साथ बैठनेका है, न कि फ़साद मचानेका। तुमने पाण्डवोंको अनेक प्रकारके कष्ट दिये हैं ; अब बस करो। यदि तुम अब भी पाण्डवोंका अनिष्ट सोचोगे, तो भीष्म और विदुर, रुष्ट हो जायेंगे। जुआ खेलना महापाप है। मनको शान्त करो। मनको वशमें रखनेसे, सब जगह विजय मिलती है।"

दुर्योधन,—"पिताजी ! आप तो संसारकी बातोंसे एक-दमही अनभिज्ञ हैं। पाण्डवोंने अपने घर बुलाकर मेरा अपमान किया है। मैं उस अपमानको जन्म-भर न भूलूँगा। यदि

आप जुआ खेलनेकी आज्ञा न देंगे, तो सच जानिये, मैं आत्म-हत्या कर लूँगा।"

धृतराष्ट्र इस धमकीको सुनकर, बड़े असमञ्जसमें पड़े। बहुत सोच-विचारके बाद, उन्होंने, पुत्रको जुआ खेलनेकी आज्ञा देदी। फिर उन्होंने विदुरको बुलवाकर, इस विषयमें, उनकी भी सम्मति चाही। भला विदुर क्यों ऐसे बुरे कामको पसन्द करने लगे थे? उन्होंने धृतराष्ट्रकी, उस इच्छाकी, बड़ी निन्दा की। वे बोले,—"महाराज! आप बुद्धिमान् होकर भी अनजानोंके समान काम करनेपर उतारू हैं! आप नहीं जानते, कि इस जुएने सहस्रों घर बरबाद कर डाले हैं। जुआ बड़ा बुरा व्यसन है। यह अनर्थ-कारक और सर्वनाशक है। यदि आप ऐसा करेंगे, तो पीछे बड़ा भारी बखेड़ा खड़ा हो जायेगा।"

विदुरके चले जानेपर धृतराष्ट्रने, दुर्योधनसे कहा,—"बेटा! विदुर बड़े दूर-दर्शी और बुद्धिमान् हैं। वे सदाही हमारे हित-चिन्तनमें लगे रहते हैं; परन्तु उनकी सम्मति भी जुआ खेलनेकी नहीं है। अब तुम इस पाप-वासनाको त्यागदो और सुख-शान्तिसे, राज-सुखका उपभोग करो।"

दुर्योधन,—"निस्सन्देह, विदुर सदैव हमारे हित-चिन्तनमेंही लगे रहते हैं; पर पिताजी! आप नहीं जानते, कि विदुर भीतरके कैसे काले हैं। वे हमारा हित चाहनेके बदले, पाण्डवोंकाही हित चाहा करते हैं। मैं उनकी नस-नसको जानता हूँ। यदि आप इस भुलावेमें रहेंगे, कि विदुर हमारा भला चाहनेवाले हैं, तो कलके होते आजही, हमारा नाश होजायेगा। आप मुझे जुआ खेलनेकी आज्ञा दे चुके हैं। अब आप उससे पीछे न हटिये। मैं जुआ खेलूँगा और ज़रूर खेलूँगा। अब या तो पाण्डवही संसारमें सुखका उपभोग करेंगे, या मैं ही।"

जुएका दरबार ।

"दाव लगातेही शकुनि बोल उठता, 'कि हम जीते' बस युधिष्ठिर हार मान लेते" ।

Burman Press, Calcutta

[पृष्ठ—८५]

दुर्योधनके हठके आगे धृतराष्ट्रने हार मानी और उसे जुआ खेलनेकी आज्ञा दे दी। धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुर पाण्डवोंको, हस्तिनापुरसे, बुला लाये। पाण्डव, द्रौपदी सहित, आगये। राजसूय यज्ञके अन्तमें युधिष्ठिरने, भाइयों सहित, यह प्रतिज्ञा कर ली थी, कि,—"आजसे हम जातिवालोंके आज्ञानुसारही सब काम करेंगे। मित्र-भेद होनेका कोई काम न किया जायेगा।" इसी प्रतिज्ञाके अनुवर्ती होकर वे, कौरव-सभामें, जुआ खेलने आ गये।

बड़ी धूम-धामसे जुआ होने लगा। उस खेलको देखनेके लिये, सभा-मण्डपमें, बड़ी भीड़ जमा हो गयी। शकुनि बड़ा चतुर था। उसने, देखते-देखते, अपने हाथकी सफ़ाईसे युधिष्ठिरका सारा धन-रत्न जीत लिया। युधिष्ठिर जैसे-जैसे हारते जाते थे, वैसेही-वैसे, खिसियाकर, दाँव बढ़ाते जाते थे। धूर्त्त शकुनिकी सफ़ाईको ताड़ लेना साधारण काम नहीं था। दाँव लगातेही शकुनि पासा फेंकता और बोल उठता,—"हम जीते।" बस, युधिष्ठिर हार मान लेते थे। धीरे-धीरे जुएने बड़ा भयङ्कर रूप धारण किया। अब युधिष्ठिर, नौकर-चाकर, हाथी, घोड़े, रथ, सेना—सब कुछ हार गये। यह सत्यानाश देखकर विदुर धृतराष्ट्रसे कहने लगे,—"महाराज! अब कौरव-कुल नष्ट हुआ चाहता है! यदि आप अपना और अपनी सन्तानोंका भला चाहते हैं, तो अभी जुआ रोक दें। शकुनि सरासर बेईमानी कर रहा है। इस पापीका कुछ न बिगड़ेगा, बिगड़ेगा आपका।"

विदुरकी इस बातपर धृतराष्ट्रने ध्यान न दिया। विदुर चुप होरहे। जिन महाराजा युधिष्ठिरको लोग विद्वान्, धार्मिक, सत्यवादी और बुद्धिमानोंमें आदर्श पुरुष मानते थे, उन्होंने, दुराचारियोंके कपट-जालमें फँसकर, अज्ञान बालककी भाँति, अपना बना-

बनाया सारा साम्राज्य मिट्टीमें मिला दिया ! धन गया, राज्य गया, सारी प्रजा गयी ; पर उनकी तृप्ति न हुई ! युधिष्ठिरकी मानो सारी बुद्धि मारी गयी। अब उन्होंने, एक-एक करके, सब भाइयोंको भी जुएमें हारना शुरू कर दिया। उस समय दुर्योधनकी भाग्य-लक्ष्मी सुप्रसन्न थी। यही कारण था, जो युधिष्ठिरकी बारम्बार हार होती जाती थी। हाय ! लिखते हृदय विदीर्ण होता है, लज्जा हाथ पकड़कर आगेका हाल लिखनेसे रोकती है। युधिष्ठिरका उस समय इतना पतन हुआ, कि जब उनके पास कुछ भी न रहा, तब उन्होंने, दया-धर्मको तिलाञ्जलि दे, अपनी प्राण-प्रतिमा, दया-दाक्षिण्यकी साक्षात् प्रतिमूर्त्ति और प्यारी धर्मपत्नी, द्रौपदीको भी दाँवपर लगा दिया ! यह देख उपस्थित सभ्य-मण्डली, एक मुँहसे, युधिष्ठिरकी निन्दा करने लगी। भीष्म, द्रोण और विदुरकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली ; पर महाराजा धृतराष्ट्र, अपने वृद्ध सारथि सञ्जयके मुँहसे, बारम्बार अपने पुत्रोंकी जीत सुनकर, खुशीके मारे फूले अङ्ग न समाते थे।

द्रौपदी-वस्त्र-हरण।

द्रौपदी भी गयी ! अब युधिष्ठिरके पास फूटी कौड़ी भी न रही। वे अपनी स्वाधीनतातक भी खो बैठे ! अब कौरवोंके अत्याचारोंका थैला खुला। दुर्योधनने, घमण्डमें आकर, विदुरसे व्यङ्ग पूर्वक कहा,—"चाचाजी ! आप, अन्तःपुरमें जाकर, शीघ्र द्रौपदीको यहाँ ले आइये। हम उससे अपनी सेवा करायेंगे।"

विदुर नीचा मुँहकर, साँपकी भाँति, फुफकारने लगे। अन्तमें दुरात्मा दुःशासन, दुष्ट दुर्योधनकी आज्ञा पाकर, द्रौपदीको बाल पकड़े हुए सभामें घसीट लाया ! द्रौपदी उस समय रजस्वला थी।

लज्जाके कारण, वह, सभामें आना नहीं चाहती थी ; परन्तु पापी दुःशासन, उस रोती-बिलखती अबलाको, बाल पकड़कर, वहाँ घसीट लाया ! द्रौपदीका कलेजा फटने लगा। उसने करुण-कण्ठसे, सभाके लोगोंको पुकारकर, कहा,—"दोहाई ! दोहाई ! अरे आज क्षत्रियोंका पवित्र धर्म नष्ट हुआ जाता है। कोई है, जो मेरी रक्षा करे ?"

द्रौपदीको दुःखी देख, पाण्डव, क्रोधमें भरकर, काँपने लगे ; पर उनके मुखसे कोई बात न निकली। इधर पाखण्डी दुःशासन, द्रौपदीका झोंटा पकड़, उसे नङ्गा करनेका यत्न करता हुआ, "सेवा करो, अब सेवा करो" कहकर हँसने लगा। उसी समय कर्ण भी बोल उठा,—"क्यों द्रौपदी ! अब कहो ? याद है, जब स्वयंवरके समय, तुमने, भरी सभामें 'सूत-पुत्र' कहकर मेरा अपमान किया था ? यह सब उसी घमण्डका फल है।"

दुर्योधन भी बोला,—"क्यों द्रौपदी ! याद है, जब तुमने, सभा-भवन देखते समय, मेरी हँसी की थी ? तुम भी तो मुझे जलमें गिरा देख, पाण्डवोंके साथ, खिलखिलाकर हँसी थीं ? आजका यह अपमान उसीका फल है। तुम्हारे पतियोंने तुम्हें जुएमें हार दिया है। अब तुम हमारी दासी हो। आओ, हमारी बग़लमें बैठो।"

यह सुन, क्षोभ और अपमानके मारे, भीमसेनका हृदय फटने लगा ! पर युधिष्ठिरको चुप देख, वे विषका घूँट पियेसे रह गये।

अनन्तर कर्णने कहा,—"पाण्डव और द्रौपदी जुएमें हार गये हैं। अब इनके गहने-कपड़े उतार लेने चाहिये।"

यह सुनतेही पाण्डवोंने अपने-अपने वस्त्र और अलङ्कार उतार-कर कौरवोंको सौंप दिये ; पर द्रौपदीके पास उस समय एकही वस्त्र था। भला वह उसे क्योंकर उतार सकती थी ? यह देख, निर्लज्ज और पापी दुःशासन, झपटकर, बीच-सभामें, द्रौपदीको नङ्गी

करने लगा! हा भगवन्! उस समयका दृश्य—उस समयकी द्रौपदीकी दशा—भला कौन वर्णन कर सकता है? हमारी लेखनीमें तो इतनी शक्ति नहीं है, कि उस समयका दृश्य पाठकोंके हृदयपर खींच सके। हाँ, कविवर मैथिलीशरणगुप्तने उस समयके दृश्यको, अपनी एक कवितामें, बड़ेही मार्मिक शब्दोंमें प्रकट किया है। पाठकोंके अवलोकनार्थ हम उसे यहाँ उद्धृत किये देते हैं:—

"ऐसे समय एक हरिको ही अपना रक्षक जान वहाँ।
लगी उन्हींको वह पुकारने धरकर उनका ध्यान वहाँ,—
'हे अन्तर्यामी मधुसूदन! कृष्णचन्द्र! करुणासिन्धो!
रमा-रमण! दुखहरण! दयामय! अशरण-शरण दीनबन्धो!
मुझ अभागिनीकी अबतक तुम भूल रहे हो सुधि कैसे?
नहीं जानते हो क्या केशव! कष्ट पा रही हूँ जैसे? ॥ १ ॥
ज़रा देरमें ही अब मेरी लुटी लाज सब जाती है।
क्षण-क्षणमें आपत्ति भयंकर भारी होती जाती है!
करती हुई विकट ताण्डव सी निकट मृत्यु दिखलाती है।
केवल एक तुम्हारी आशा प्राणोंको अटकाती है ॥ २ ॥
दुःशासन-दावानल द्वारा मेरा हृदय जला जाता।
विना तुम्हारे यहाँ न कोई रक्षक अपना दिखलाता ॥
ऐसे समय तुम्हें भी मेरा ध्यान नहीं जो आयेगा।
तो हा! हा! फिर अहो दयामय! मुझको कौन बचायेगा ॥ ३ ॥
क्रियाहीन ये चित्र लिखेसे बैठे यहाँ मौन धारे।
मेरी यह दुर्दशा सभामें देख रहे गुरुजन सारे ॥
तुम भी इसी भाँति सह लोगे जो ये अत्याचार हरे!
निःसंशय तब हम अनाथ जन विना दोषही हाय! मरे ॥ ४ ॥
किसी समय भ्रम वश जो कोई मुझसे गुरुतर दोष हुआ—
हो, जिससे मेरे ऊपर यह ऐसा भारी रोष हुआ ॥
तो सदैवके लिये भले ही मुझको नरक-दण्ड दीजे।
किन्तु आज इस पाप-सभामें लज्जा मेरी रख लीजे ॥ ५ ॥
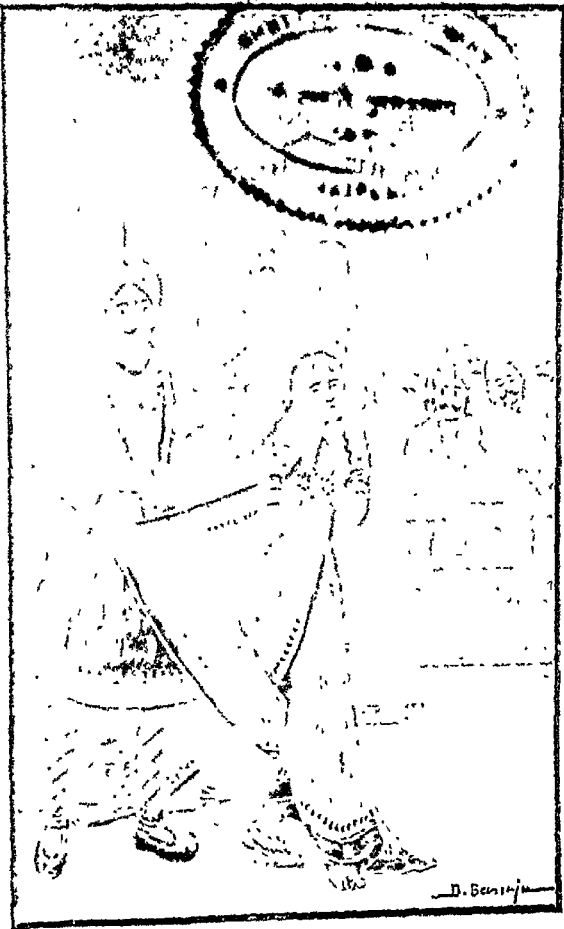
द्रौपदी-चीर-हरण।

"ईश्वरकी कृपासे द्रौपदीकी साड़ी इतनी लम्बी हो गयी, कि दुःशासन खींचते-खींचते थक गया।"

[पृष्ठ—८६]

सदा धर्म्म संरक्षण करने, हरनेको सब पापाचार।
हे जगदीश्वर! तुम धरणीपर धारण करते हो अवतार॥
फिर अधर्म्ममय अनाचार यह किस प्रकार तुम रहे निहार?
क्या यह कोमल हृदय तुम्हारा हुआ वज्र मेरीही बार॥ ६॥
शरणागतकी रक्षा करना सहज स्वभाव तुम्हारा है।
वेद-पुराणोंमें अति अद्भुत विदित प्रभाव तुम्हारा है॥
सो यदि ऐसे समय न मुझपर दया-दृष्टि दिखलाओगे।
सुयश-भ्रष्ट होनेसे निश्चय प्रभु! पीछे पछताओगे॥ ७॥
जब जिसपर जो पड़ी आपदा तुमने उसे बचाया है।
तो फिर क्यों इस भाँति दयामय! तुमने मुझे भुलाया है?
इस मरणाधिक दुखसे जो मैं मुक्ति आज पा जाऊँगी।
गणिका-गज-गृद्धादिकसे मैं कम न कीर्त्ति फैलाऊँगी॥ ८॥
जो अनिष्ट मनसे भी मैंने नहीं किसीका चाहा है।
जो कर्त्तव्य धर्म्म-युत अपना मैंने सदा निवाहा है॥
तो अवश्य इस विपद-सिन्धुसे तुम मुझको उद्धारोगे।
निश्चय दया-दृष्टिसे माधव! मेरी ओर निहारोगे॥ ९॥"

इतना कहकर द्रौपदीने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये। ध्यानमें लवलीन होनेसे, उसे, बाहरी जगत्‌का कुछ भी ध्यान न रहा। अब भगवान्‌का आसन डिगा! उन्होंने तत्काल भक्तकी आपत्तिमें सहायता प्रदान की। ईश्वरकी कृपासे द्रौपदीकी साड़ी इतनी लम्बी होगयी, कि दुःशासन, खींचते खींचते, थक गया; पर साड़ीका छोर न आया। कहते हैं, खींचते-खींचते, उस समय, वस्त्रका पहाड़सा लग गया था। दुःशासनके शरीरसे पसीनेकी धारा बह निकली थी! आखिर, मनमें, हार मान, उसे, वस्त्र छोड़कर, बैठ जाना पड़ा। इस अद्भुत व्यापारको देखकर सभाके सारे लोग, विस्मयसे भर गये और द्रौपदीकी प्रशंसा तथा दुःशासनका तिरस्कार करने लगे।

अमित तेजस्वी भीमसेन, इस पैशाचिक काण्डको देखकर, और स्थिर न रह सके। वे क्रुद्ध यमराजकी भाँति, सभा-क्षेत्रमें खड़े होकर, कठोर स्वरसे कहने लगे,—"हे उपस्थित सभ्यो! मैं आप-लोगोंके सामने, आज, प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जिस भुजासे पापी दुःशासनने द्रौपदीका वस्त्र खींचा है, उसे मैं अवश्य तोड़कर फेंक दूँगा और इस दुराचारीकी छाती फाड़कर उसका रक्त पान करूँगा।"

इसपर दुर्योधनने, पाण्डवोंको खिजानेके लिये, अपनी दाहिनी जाँघ दिखाकर द्रौपदीको उसपर बैठनेका संकेत किया।

अब तो भीमका क्रोध सौगुना बढ़ गया। वे ललकारकर बोले,—"रे दुष्ट दुर्योधन! क्यों वृथा घमण्डमें चूर हुआ जाता है! होशमें आ! क्या मुझे नहीं जानता? पापी! युद्ध-स्थलमें यदि मैंने तेरी इस जाँघको न तोड़ा, तो क्षत्रिय कहलाना छोड़ दूँगा और पूर्व पुरुषोंकी कीर्त्ति लुप्तकर नरकगामी बनूँगा!"

भीमकी इन भीषण प्रतिज्ञाओंको सुनकर विदुर, कुरु-कुलकी, भावी विपत्तियोंको, मानो सामने खड़ी देखने लगे। उन्होंने धृत-राष्ट्रको सम्बोधनकर कहा,—"महाराज! अब यदि आप भला चाहते हों, तो इस अत्याचारको बन्द करें। भीमकी ये भीषण प्रतिज्ञाएँ कौरव-वंशका समूल नाश कर देंगी। अब जिस तरह हो, इस आगको बुझानेका यत्न कीजिये।"

विदुरकी इस धमकीको सुनकर दुर्योधन तो, मूछोंपर ताव देता हुआ, वहाँसे खिसक गया; पर धृतराष्ट्रने द्रौपदीसे कहा,—"बेटी! मैं तुम्हारे साधुस्वभावको देख बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ, कि तुम स्वतन्त्र हो जाओ और जो इच्छा हो, मुझसे माँगो।"

महाराजा धृतराष्ट्रके इस कथनको सुनकर, द्रौपदीको कुछ धीरज हुआ। वह नीचा सिरकर, विनयके साथ बोली,—"महाराज!

यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं केवल यही माँगती हूँ, कि आप मेरे पतियोंको दासत्वसे मुक्त कर दीजिये।"

धृतराष्ट्र,—"ऐसाही हो! पाण्डव अब स्वतन्त्र हैं। और जो इच्छा हो, सो माँग लो।"

द्रौपदी,—"बस, महाराज! मेरे स्वामियोंने दासतासे छुटकारा पाया; इसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हुई, कोई पुण्य-अनुष्ठान करूँगी। अब आप हम सबको जानेकी आज्ञा दीजिये।"

धृतराष्ट्र,—"ठीक है, अब तुम तथा पाण्डव यहाँसे जाओ और पहलेकी भाँति खाण्डवप्रस्थका राज्य करो।"

यह सुन, युधिष्ठिरादि पाँचों भाई, बड़ोंकी पद-वन्दनाकर, द्रौपदी सहित, अपनी राजधानीको चल दिये। जाते समय उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुतसा दान दिया।

पाण्डव-वन-वास।

यह देख दुर्मति दुःशासन दुर्योधनके पास गया और रो-रोकर कहने लगा,—"भाई साहब! हमलोगोंने बड़े-बड़े कौशलोंसे जो कुछ एकत्र किया था, सो सब पिताजीने नष्ट कर दिया। जुएमें जीता हुआ सारा सामान, शत्रुओंको लौटा दिया। यह तो कुछ न हुआ!"

इतना सुनकर दुर्योधन, नितान्त दुःखित चित्तसे, कर्ण और शकुनिसे सलाह करने लगा। उन्होंने विचारा, कि इतना कष्ट सह-कर, हमने जो कुछ जीता था, उसे पाण्डव सहजमेंही लौटाये लिये जाते हैं। यह तो बड़ा अन्धेर है!

इस संसारमें सिवा सुकर्मके, कोई ऐसा काम नहीं, जो कुकर्मी लोग न कर सकें।' इसी कहावतके अनुसार आपसमें सलाह-मशविराकर, कौरवोंकी यह चौकड़ी, फिर धृतराष्ट्रके पास गयी। सबने

मिलकर, देखते-देखते, अन्धराजको बुद्धि फिर अन्धी कर दी। उन्होंने कहा,—"महाराज! यह आपने क्या किया? आप नहीं जानते, कि क्रोधान्ध पाण्डव सदा हमारे अनिष्टकी चिन्तामें रहते हैं। फिर आज उनके साथ जैसा व्यवहार किया गया है, उसको वे सहजमेंही न भूल जायेंगे। अतः उनके प्रति दयाका व्यवहार करना सर्वथा असङ्गत है। वे शीघ्रही अपने घर पहुँचकर युद्धकी तैयारी करेंगे। सुना है, भीम और अर्जुन तो अभीसे लड़नेके लिये अपने हथियारोंको साफ़ कर रहे हैं।"

यह सुन धृतराष्ट्रने घबराकर कहा,—"अब क्या किया जाये?"

दुर्योधन,—"किया क्या जाये? अब जुआ खेलनेके लिये फिर युधिष्ठिरको बुलाना चाहिये। इस बार ऐसा प्रबन्ध करना होगा, जिसमें पाण्डवोंके बदला लेनेका रास्ता, एक साथही, बन्द हो जाये। उनको जुएमें फिर हराना होगा; पर अबके ऐसी कोई वस्तु दाँवपर न लगायी जायेगी, जिससे दङ्गा-फ़साद पैदा हो। इस बारका दाँव वन-वास होगा; अर्थात् जो हारे, उसे मृग-चर्मादि धारणकर, तापस-वेशमें, बारह वर्षतक वनमें और तेरहवें वर्षमें छिपकर रहना होगा। यदि उस एक वर्षमें, वह किसी तरह देख लिया जायेगा, तो फिर उसे बारह वर्ष पर्यन्त वन-वासी होना पड़ेगा, तब कहीं वह अपना राज्य पा सकेगा। शकुनि, अपनी चतुरता द्वारा, निश्चयही जीतेंगे। इस लिये, यह रास्ता, हमारे लिये बड़ाही सुगम और पाण्डवोंके लिये अत्यन्त दुर्गम है।"

पुत्र-स्नेहसे अन्धे हुए अन्धराज, आगा-पीछा न देख, फ़ौरन, दुर्योधनका कहा पूरा करनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने पाण्डवोंको, रास्तेसेही लौटा लानेके लिये दूत भेज दिया। भीष्म, द्रोण और विदुर आदिने बहुत समझाया और कहा,—"महाराज! बड़ी

मुश्किलसे शान्ति हुई है। अब बारम्बार नाश करनेवाले झगड़ेका बीज न बोइये।" पर अन्धमति अन्धराजने उनकी एक न सुनी।

मनस्विनी, पति-परायणा, गान्धारीने भी जब सुना, कि अन्धराज फिर आग लगानेको तैयार हैं, तब वे अत्यन्त दु:खित होकर, धृत-राष्ट्रके पास आयीं और उन्हें बहुत कुछ ऊँच-नीच समझाने लगीं ; परन्तु वे कब माननेवाले थे ? उन्हें तो बड़े पक्के धूर्तोंने अपने शिकञ्जेमें कस रखा था !

दूतने शीघ्रतासे जाकर, रास्तेमेंही, धर्मराजको अन्धराजकी आज्ञा कह सुनायी। 'रण और जुएमें बुलाये जानेपर, क्षत्रिय लोग कभी मुँह नहीं मोड़ते'—इस वाक्यको स्मरणकर, युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डव, फिर लौट आये। फिर सत्यकी रक्षापूर्वक जुआ होने लगा ; किन्तु धूर्त्त शकुनिने, उन्हें इस बार भी हरा दिया। फलत: अब उन्हें बारह वर्षतक वन-वास और एक वर्षतक अज्ञातवास करनेके लिये तैयार होना पड़ा। दुर्योधनने मृग-चर्म मँगाकर पाण्डवोंसे कहा,— "अब आपलोग इन्हें पहनकर वनकी ओर प्रस्थान कीजिये।"

पाण्डव-प्रतिज्ञा।

प्रतिज्ञाके पूरे पाण्डव, मृगचर्म पहन और राजसी वस्त्रोंको त्यागकर, गुरुजनोंको प्रणाम करके वन जाने लगे। यह देख, धृत-राष्ट्रके सभी पुत्र, विशेषकर निर्दयी दु:शासन, अनेक व्यङ्ग-भरे कुवा-क्य कह-कहकर उन्हें खिजाने लगा। उन्हें सुनकर भीमसेन अपना क्रोध न रोक सके। वे बोले,—"रे पाखण्डियो ! दुरात्मा शकु-निके कपटाचारपरही तुम्हें इतना घमण्ड हो गया है। तभी ऐसे-ऐसे मर्म-भेदी कटुवाक्य कह रहे हो ; पर यह निश्चय जान लो, कि मैं एक दिन, रण-क्षेत्रमें, इन वाक्योंका पूरा-पूरा बदला चुका लूँगा।"

इसपर दुःशासन, "जारे मूर्ख ! ज़रा मुँह धोकर आ"—कहकर सभा-भवनमें नाचने लगा। पाण्डवोंके वन-गमनके लिये बाहर निकलनेपर दुर्योधन, भीमसेनके पीछे-पीछे जा, उनके जानेकी नक़ल उतारने लगा। यह देख, दुर्योधनके अन्यान्य भाई भी एक साथ ठठाकर हँस पड़े। इसपर अर्जुनने कहा,—"पापियो ! इन कुकर्मों से तुम अपनेको कृतार्थ न समझना। शीघ्रही तुम सबको यमपुर भेजा जायेगा। जिसके बलपर तुमको इतना अभिमान है, उसी, दूसरेकी वृद्धिको देखकर जलनेवाले और आत्म-प्रशंसक, कर्णको, मैं कभी और कहीं जीता न छोड़ूँगा।"

अनन्तर, नकुल और सहदेवने कहा,—"जिस दुष्ट, दुरात्मा और कपटीने, कपटताके बलसे, जुएमें हराकर, हमें, लज्जित और अपमानित किया है, हम उस पापीको—उस जुआरी शकुनिको—उसके सहायकों सहित, नरकमें भेजेंगे।"

युधिष्ठिर सौम्य थे। उन्होंने कुछ नहीं कहा। वे विदुरके यहाँ, उनके कहनेसे, अपनी माता कुन्तीको रख, पुरोहित धौम्य और द्रौपदीको लेकर, भाइयोंके साथ वनको चल दिये।

इधर पाण्डवोंके चले जानेपर धृतराष्ट्र, एकान्त स्थानमें बैठे हुए, कुछ सोच रहे थे; इतनेमें वहाँ विदुरजी आ पहुँचे। धृतराष्ट्रने उनसे पूछा,—"विदुर ! पाण्डव किस भावसे वनको गये हैं ?"

विदुरने कहा,—"महाराज ! कुछ मत पूछिये। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और पुरोहित धौम्य, क्रमशः आगे-पीछे, जिस भावसे चले जाते थे, वह बड़ाही भयङ्कर और हृदय-विदारक दृश्य था। उस समय धर्मराजने अपनी दोनों आँखें, दोनों हाथोंसे, मूँद रखी थीं। भीम अपनी भीम भुजाओं-को निरखते और अर्जुन मार्गमें धूल उड़ाते हुए जा रहे थे। सह-

देवने अपने मुँहपर स्याही पोत ली थी। कन्दर्प-कान्ति नकुलने अपना सारा शरीर धूलसे मैला कर लिया था। द्रौपदीने अपने केश खोल लिये थे और उन्हींसे अपना मुँह ढाँपकर, वह, रोती हुई चली जाती थी। पुरोहित धौम्य, हाथमें कुश ले, यमराजका स्तुति-गान करते हुए जा रहे थे। बस, यही उनके जानेका ढङ्ग था।"

धृतराष्ट्रने पूछा,—"हे नीतिज्ञ! पाण्डवोंके इस भावसे वन जानेका क्या मतलब है?"

विदुर,—"महाराज! युधिष्ठिर अत्यन्त दयालु हैं। उन्होंने अपने नेत्र इस लिये मूँद लिये थे, कि कहीं उनकी क्रोध-भरी दृष्टिसे, यह पाप-पूर्ण राज्य, भस्म न हो जाये! दुर्योधनके अनेक अत्याचारोंसे भी उनके हृदयमें तबतक क्रोधका सञ्चार नहीं हुआ था; किन्तु इस समय उनके साथ जैसा व्यवहार किया गया है, उससे वे बड़ेही क्रुद्ध हो उठे हैं। भीम, यह सोचते हुए अपनी भुजाओंको देखते जाते थे, कि साध्वी द्रौपदीको सताकर, जिन शत्रुओंने हमारा राज्य छीन लिया है, उनको पीस डालनेका अवसर, देखूँ, अब इन भुजाओंको कब मिलता है? अर्जुन, जो रास्तेमें धूल उड़ाते हुए जाते थे, उसका भाव यह है, कि युद्ध-क्षेत्रमें धूलके कणोंके समान, अजस्र धारासे, अनवरत बाण-वर्षाकर, मैं इन शत्रुओंको जर्जरित कर डालूँगा। नकुलका सौन्दर्य स्वर्गीय सौन्दर्य है। उनके शरीरकी कान्तिको सहन करना, हर किसीका काम नहीं है। अतः उन्होंने अपने सारे शरीरमें भस्म रमा लिया था। सहदेवने अपने मुँहपर इस लिये स्याही पोत ली थी, कि जिससे उन्हें कोई पहचान न सके। कारण, कि बिना बदला लियेही उनके, सीधे-सादे ढङ्गसे, चले जानेपर लोग आश्चर्य करेंगे। यह विषय दारुण लोक-लज्जाका था!

"लाल-लाल नेत्र किये, एक वसन-धारिणी, पतिव्रता द्रौपदी, यह जताती थी, कि मैं, जिस प्रकार, इस समय बाल खोले और रुदन करती हुई जा रही हूँ, तेरह वर्षके बाद, रणमें पति-पुत्रादिकोंके मर:; जानेसे कातर हुई शत्रुओंकी स्त्रियाँ भी, मेरीही भाँति, बाल बिखराये और रुदन करती हुईं, शोणित-सनी देहसे, इस रास्तेसे जाती दिखाई देंगी। धौम्यके यम-स्तुति-गान करनेका कारण यह था, कि युद्धमें जब समस्त कौरव समर-शायी हो जायेंगे, तब दाहके समय, उनके पुरोहित भी इसी भाँति यमका गान करेंगे। पाण्डवोंके निकलते समय तरह-तरहके उत्पात हो रहे थे और अपशकुनोंके होनेसे प्रकृति-देवीने भी मानो दारुण शोक प्रकट किया था।"

यह सुनकर अन्धमति अन्धराज, आनेवाले भयसे भीत हो, अनेक चिन्ताएँ करने लगे; पर दुर्योधनादिके ऊपर इसका कुछ भी असर न पड़ा। उनकी चण्डाल-चौकड़ी तो इस बातपर बहुत प्रसन्न हुई, कि एकमात्र जुएसेही, बिना एक बाण छोड़े और बिना रक्तकी एक बूँद गिराये, पाण्डवोंकी वह झल-झलाती हुई झलक मिट्टीमें मिला दी गयी, जो राजसूय यज्ञको करते समय उन्होंने बड़े ठाट-बाटसे झलकायी थी। इतनाही नहीं, वरन् तेरह वर्षके लिये वनमें निकाल, उनका राज्य भी छीन लिया।

वन-पर्व

किर्मीर-वध ।

यह सुनकर, कि "आज कौरवोंके घृणित कौशलसे, पाण्डव, घर-घरके भिखारी हो, वनको जा रहे हैं" बहुतसे नगर-निवासी पाण्डवोंके पीछे-पीछे जाने लगे। कुछ दूर जानेपर पाण्डवोंको देख उन लोगोंने, दौड़ते-दौड़ते, कहा,—"हे धर्मराज! आप हम लोगोंको कहाँ छोड़ जाते हैं? ठहरिये, हम भी आपके साथ चलते हैं।"

युधिष्ठिरने पूछा,—"यह किस लिये?"

पुरवासी,—"इसलिये, कि जहाँ दुर्योधनके समान दुष्ट और कृतघ्नी राजा राज्य करता है, वहाँ हमलोगोंका, क्षणभरके लिये भी, निर्वाह नहीं हो सकता; क्योंकि पापियोंके स्पर्श, सम्भाषण और दर्शनसे भी मनुष्यको पाप लगता है और सद्गुणी तथा धार्मिक मनुष्यकी सङ्गतिसेही उसके गुण अपनेमें आते हैं। आप धर्मात्मा हैं; इसलिये हमलोग भी नगरका निवास छोड़कर, अब आपके साथ वन-वासही करेंगे।"

युधिष्ठिर,—"यदि ऐसा है, तो हम अनुरोध करते हैं, कि आप लोग, हमारे चाचा विदुर, बाबा भीष्म और माता कुन्ती आदिकोही हमारे जैसा समझें। उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये,

इसका विशेष ध्यान रखकर, उनकी सेवा-शुश्रूषा करें। इसीसे हम आपसे अत्यन्त सन्तुष्ट होंगे।"

यह सुनकर कुछ लोग तो नगरको लौट गये ; पर ब्राह्मण लोगोंने उनका साथ नहीं छोड़ा। वे बोले,—"राजन्! हमारा निर्वाह केवल आप लोगों द्वाराही होता है। दुर्योधन अधर्मी है। उसकी अधीनतामें क्षणभर भी रहना हमें पसन्द नहीं है।"

युधिष्ठिर बड़े दुःखी हुए। उन्होंने सोचा,—"अपनी तो यह दशा है, कि खानेतकका ठिकाना नहीं ; उसपर इतने ब्राह्मणोंके भोजनका प्रबन्ध कैसे हो सकेगा ?" यह विचारकर उन्होंने अपने पुरोहित धौम्यसे कहा,—"महात्मन्! अब बताइये,हम क्या करें ?"

धौम्यने कहा,—"महाराज ! सुनिये ; राजाका कर्त्तव्य है, कि वह जप, तप, व्रत, नियम और पूजन आदिसे, जिस प्रकार हो, अपने शरणागतोंका पालन करे। इसलिये आप सूर्यको, उपासना-द्वारा, प्रसन्न करें। वे अवश्य आपकी विपत्ति दूर करेंगे।"

यह सुन युधिष्ठिरने, एक वनमें जाकर, सूर्यकी पूजा की। सूर्य भगवान्ने, प्रत्यक्ष दर्शन देकर, उन्हें, ताँबेकी एक बटलोही दी और कहा,—"हम तुम्हारे पूजनसे सन्तुष्ट होकर, यह बटलोही देते हैं। हमारे आशीर्वाद और इस बटलोहीके प्रभावसे तुमको बारह वर्षतक कभी अन्न-कष्ट न होगा। नित्य प्रति, जबतक द्रौपदी भोजन न कर लेगी, यह बटलोही तुमको सब प्रकारके इच्छित भोजन देती रहेगी।"

इसके बाद ही सूर्यनारायण अन्तर्द्धान हो गये। युधिष्ठिरकी अन्न-चिन्ता जाती रही। अब उन्होंने प्रसन्न-मनसे, सबके साथ, काम्यक वनकी ओर प्रस्थान किया। काम्यक वन बड़ा भयानक वन था। उसमें बहुतसे सिंह-व्याघ्रादि हिंसक जीव और अनेक राक्षस निवास करते थे। निडर कहानेवाले मुनि-ऋषियोंने भी वहाँ

रहना छोड़ दिया था। जब पाण्डव लोग वहाँ पहुँचे, तब रातके दोपहर बीत चुके थे। पृथ्वीके सारे जीव-जन्तु,निद्राके वशीभूत होकर खर्राटे ले रहे थे। चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य फैला हुआ था। सर्वत्र नीरवता छायी हुई थी। इसी समय, सहसा पाण्डवोंने देखा, कि एक विशालकाय, भयानक राक्षस, उनका रास्ता रोककर खड़ा गम्भीर गर्जना कर रहा है! द्रौपदी उसकी भयानक सूरतको देखतेही डर गयी। युधिष्ठिरने,कुछ आगे बढ़कर पूछा,—"भाई! तुम कौन हो? क्यों हमारा रास्ता रोककर खड़े हो?"

इसपर राक्षस कहने लगा,—"मेरा नाम किर्म्मीर है। इस समय भूखके मारे मेरी जान निकल रही है। सौभाग्यवश तुम लोग यहाँ आगये हो। अब मैं तुम्हारा भोजन करके तृप्त होजाऊँगा।"

यह सुनतेही प्रबल पराक्रमी भीमसेनने आगे बढ़कर कहा,—"क्यों बे पाजी! तू भीमको नहीं जानता? हट यहाँसे, नहीं तो अभी जानसे हाथ धोना पड़ेगा।"

राक्षस,—"वाह रे भीम! खूब आये! आज मैं अपने भाई बक और प्यारे दोस्त हिडिम्बका बदला चुकाऊँगा। क्यों, तुम्हींने न मेरे उन बन्धुओंको मारा था? अच्छा तो लो, अब अपने कियेका फल भोगो। आज तुम मेरे हाथोंसे न बचोगे।"

इतना कहकर राक्षस, बड़े वेगसे, भीमपर झपटा। भीम पहलेसेही एक पेड़को उखाड़कर तैयार खड़े थे। उन्होंने उसीसे किर्मीरकी छातीपर प्रहार किया। किर्मीर भी पासही पड़े पत्थरोंसे लड़ने लगा। पत्थरों और पेड़ोंकी लड़ाईके बाद द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। किर्मीर भी भीमसे कम बलवान् न था। दोनोंमें बहुत देरतक घमासान युद्ध होता रहा। अन्तमें लड़ते-लड़ते किर्मीरका दम उखड़ गया। अब क्या था, भीमने मौक़ा पाकर, उसे, अधरमें

उठा लिया और ज़मीनपर दे पटका। गिरतेही किर्मीरका प्राण-पक्षी उड़ गया। युधिष्ठिरादिने प्रसन्न होकर भीमको छातीसे लगा लिया।

अब काम्यक वन, सब तरहकी विपत्तियोंसे सूना होगया। वहाँकी सारी रुकावटें जाती रहीं। पाण्डवोंने अब वहीं रहनेकी ठहरायी। एक पर्णकुटीर बनाकर, वे लोग वहीं रहने लगे। फिर ऋषि-मुनियोंने भी वहाँ, धीरे-धीरे, निवास करना शुरू कर दिया।

क्षमाकी जय।

एक दिन उसी वनमें, सहसा, विदुरने आकर पाण्डवोंसे भेंट की। दूरसे उन्हें आते देख, युधिष्ठिर अपने मनमें कुछ डरे। उन्होंने सोचा,—"कहीं फिर तो जुआ खेलनेके लिये बुलावा नहीं आया?" किन्तु महात्मा विदुर इस कामके लिये नहीं आये थे। पाण्डवोंका प्रत्येक विषयमें पक्ष लेनेपर, अन्धमति अन्धराजने, क्रोधमें भरकर, उनसे कहा था,—"विदुर! तुम यहाँसे अभी निकल जाओ और जो कुछ कहना हो, पाण्डवोंसे जाकर कहो! अब हम जान गये, कि तुम बड़े कुटिल हो! तुम्हारे हृदयमें हलाहल विष भरा हुआ है।" विदुरने इस अपमानको न सहा और आज वे इसीसे, पाण्डवोंको खोजते हुए काम्यक वनमें आ पहुँचे थे।

उधर धृतराष्ट्र, विदुरके चले जानेसे, बहुत दुःखी हुए। क्रोधके शान्त होजानेपर उन्होंने विचारा, कि "विदुर बड़े विद्वान् हैं। वे हमारे हितके लियेही सदा उपदेश देते थे। ऐसे हितेच्छुका पाण्डवोंसे मिल जाना कभी ठीक न होगा।" इतना सोचकर धृतराष्ट्र पछताने लगे। उन्होंने, उसी समय, सञ्जयको बुलाकर कहा,—"सारथि! तुम काम्यक वनमें जाकर शीघ्रही विदुरको लौटा लाओ। नहीं तो मेरा जीना दुश्वार हो जायेगा।"

सञ्जयने, पाण्डवोंके आश्रममें जाकर, विदुरसे, धृतराष्ट्रकी आज्ञा कह सुनायी। उसे सुन, दयालु विदुरजी, युधिष्ठिरकी सम्मति लेकर, फिर अन्धराजके पास लौट आये ; पर विदुरका लौट आना दुर्योधनादिकी चण्डाल चौकड़ीको अच्छा न लगा।

पाण्डवोंने केवल काम्यक वनमें रहकरही, वन-वासका, सारा समय व्यतीत किया हो, यह बात नहीं है। उन्होंने कभी काम्यक वनमें, कभी द्वैत वनमें और कभी तीर्थ-भ्रमणकरके, अपने वन-वासका बहुतसा समय बिता दिया। उस कालमें अनेक ऋषि और मुनि पाण्डवोंसे मिलने आये। श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव-पक्षीय महापुरुषोंने जब सुना, कि जुएमें हारकर पाण्डव लोग आजकल वनवास करते हैं, तब वे भी, सकुटुम्ब, वहाँ पधारे। पाण्डवोंकी दुर्दशाका हाल सुनकर, उन्हें, बड़ा क्षोभ और क्रोध हुआ। विशेषकर पतिप्राणा कृष्णाकी करुण-कहानीको तो वे लोग, दुःखके मारे, सुनही न सके। उन्होंने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको बहुतसी गालियाँ दीं और कहा,—"हम उन दुष्टोंको, उनकी करनीका फल चखाकर, शीघ्रही, युधिष्ठिरको, उनका राज्य दिलवायेंगे।"

अनन्तर श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्नने, पाण्डवोंको समझा-बुझाकर, अभिमन्यु, सुभद्रा तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके साथ, अपने-अपने स्थानको प्रस्थान किया।

एक दिन, सन्ध्याके समय, पाण्डवगण परस्परमें अनेक विषयोंपर विचार कर रहे थे। उसी समय शोक-दुःख-क्लिष्ट-हृदया द्रौपदीने धर्मराजको सम्बोधन करके कहा,—

"महाराज! मुझे इस बातका बड़ा आश्चर्य है, कि हमें इतना दुःख देकर भी, पापी दुर्योधनका हृदय, बिन्दुमात्र भी, द्रवित न हुआ; वरन् दुष्टने अनायासही जटा-वल्कल पहनाकर, हमें, वनमें निकाल

दिया। इतना हो जानेपर भी आप मौनावलम्बन किये बैठे हैं! क्या वनमें रहना आपको अच्छा लगता है? मेरा हृदय तो आप लोगोंकी दुर्दशा देख-देखकर, फटा जाता है! जहाँ आपलोगोंके लिये बड़ी-बड़ी बहुमूल्य, सुकोमल-शय्याएँ बिछी रहती थीं, वहाँ, इन कठोर,शरीर-भेदी,कुशासनोंको देख, मैं महान् शोक-सागरमें गोते खाने लगती हूँ। आपके धूलि-धूसरित शरीरको देखकर, मैं, कभी-कभी पागल हो जाती हूँ; पर आपको इन बातोंकी कुछ भी परवाह नहीं है! जिनके महा बलशाली भीम, महा धनुर्धर अर्जुन, अद्वितीय वीर नकुल और सहदेव जैसे भाई हों, वे ऐसे अकर्मण्य होकर बैठे रहें! यह आश्चर्य नहीं, तो क्या है? कहिये तो, आपको, अपनी ऐसी दुर्दशा देखकर भी, शत्रुओंपर क्रोध क्यों नहीं आता?"

युधिष्ठिर,—"प्रिये! तुम्हारा यह कथन सर्वथा सत्य है; परन्तु मैं धर्मके बन्धनमें बेतरह बँधा हुआ हूँ। जबतक इस शरीरमें प्राण रहेंगे, तबतक मैं उसका त्याग न करूँगा। मुझमें क्रोध नहीं है, इसका कारण यह है, कि मैं क्षमाको एक बहुत बड़ी वस्तु समझता हूँ। क्षमाही विद्वानोंकी शोभनीय वस्तु है; क्षमाही ज्ञानियोंका प्रधान कर्त्तव्य है। तुम क्षमाके रहस्यको नहीं जानतीं।"

यह सुनकर द्रौपदी, अपने चित्तमें, बड़ी दुःखित हुई। अब उसने विधाताको दोष दिया। बोली,—"विधाताने किस लिये ऐसे धर्म-प्राण धर्मराजको दुःख-सागरमें निमग्नकर,पापात्मा दुर्योधनको राज्य-ऐश्वर्य्य दे, सुख-सरितामें निमग्न किया है? इसीसे तो प्रायः लोग कहा करते हैं, कि विधाता बड़ा कुटिल है!"

युधिष्ठिर,—"द्रौपदी! तुम्हारी बातें यद्यपि सुननेमें बड़ी मधुर और विचित्र वाक्य-विन्यास-युक्त होती हैं; तथापि उनमें सार कुछ भी नहीं होता! एकदम नास्तिकों जैसी होती हैं। बुरा कर्म तो

हम करें और दोष विधाताके सिरपर धरें ! भला यह कौनसी नीति है ? तुम समझदार हो ; ऐसी बातें तो मूढ़ किया करते हैं ।"

धर्मराजके इस कथनसे, द्रौपदी कुछ लज्जित होकर बोली,—"मैं विधाताकी अवज्ञा नहीं करती, केवल दुःखसे विमूढ़ होकर, परिताप और प्रलाप करती हूँ ; परन्तु जब मैं आप लोगोंके कष्टोंकी ओर देखती हूँ, तब, स्त्री-स्वभाव-सुलभ चपलताके वशवर्ती होकर, मुझे बड़े कष्टका अनुभव होता है । मैं सोचती हूँ, कि यदि धर्मराज अपने कर्म-पथपर एक बार अग्रसर हो जायें, तो, भीम, अर्जुन आदि भाइयोंके उद्यमसे, अनायासही दुःखसे छुटकारा मिल सकता है । फिर, स्वराज्य-लाभ करते देर न लगेगी ।"

द्रौपदीका यह विचार भीमको बहुत अच्छा लगा । उन्होंने तत्काल उसके प्रस्तावका—आत्मपक्षके प्रबल पराक्रमका—वर्णन करते हुए, हृदयसे अनुमोदन किया । वे बोले,—"महाराज ! यदि आप आज्ञा दें, तो हमलोग अभी, दुर्योधनको मारकर, आपको भारतके राज-सिंहासनपर बैठा सकते हैं ।" परन्तु यह बात धर्मराजको पसन्द न आयी । उन्होंने कुछ हँसकर कहा,—

"निःसन्देह तुमलोगोंसे मुझे ऐसीही आशा है ; पर बिना प्रतिज्ञा पूर्ण किये, यदि मैं युद्ध छेड़ दूँगा, तो आज जो हमें सहायता देनेका वचन दे रहे हैं, कल वेही हमारी निन्दा करने लगेंगे । सत्य-पथका अवलम्बन सदा कल्याणकारी होता है । जब हम, जुएमें की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार, वन-वासके दिन पूरे कर लेंगे, तब हमें, युद्ध करना लाभदायक होगा और उसी समय हम विजयी होंगे ।"

ऐसीही बातें नित्यप्रति परस्परमें हुआ करती थीं । अनेक तर्क-वितर्क भी होते थे ; पर विजय सदा धर्मराजकी ही होती थी ; क्योंकि उनका पक्ष धर्म-युक्त होता था ।

अर्जुनकी तपस्या ।

एक दिन श्रीमद् वेदव्यास, युधिष्ठिरसे मिलने आये। कुशल-प्रश्नके उपरान्त उन्होंने कहा,—"वत्स ! तुमको हम प्रतिस्मृति नामकी एक विद्या सिखाते हैं ; इसे तुम अर्जुनको बता देना। इस विद्याके बलसे अर्जुनको, अनेक देवताओंको सन्तुष्टकर, बड़े-बड़े अमोघास्त्र-लाभ करनेमें कुछ भी कष्ट न होगा ।"

युधिष्ठिरने व्यासदेवके प्रस्तावको, अवनत मस्तकसे, स्वीकार कर, उनसे वह विद्या सीख ली। व्यासदेवके चले जानेपर, धर्मराजने अर्जुनको अपने पास बुलाकर कहा,—"भय्या ! तुम तो जानते हो, कि भीष्म, द्रोण, कृप और कर्णादि वीरगण अस्त्र-विद्यामें किस प्रकार पारदर्शी हैं ! वे प्रायः सभी अस्त्रोंकी प्रक्रिया जानते हैं और दुर्योधन उन्हींके बलपर हमसे ऐसी शत्रुता कर रहा है। अतः दुर्योधनको पराजित करनेके लिये, इन सब लोगोंको भी हमें हराना होगा। जब ये लोग हार जायेंगे, तब फिर उसके पास कोई ऐसा बल न रह जायेगा, जो हमारा सामना कर सके। अब मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। देवराज इन्द्रके पास बहुत अच्छे-अच्छे अस्त्र हैं। तुम तपस्या-द्वारा उन्हें सन्तुष्टकर, उनसे सब अस्त्र माँग लो। महर्षि वेदव्यासने मुझे एक बड़ा अच्छा मन्त्र बताया है ; उसे तुम सीख लो। उसके प्रभावसे तुम, अनायासही, देवराज इन्द्र तथा अन्य देवताओंको प्रसन्न कर सकोगे।"

यह कह युधिष्ठिरने वह प्रतिस्मृति नामकी विद्या अर्जुनको सिखा दी। युधिष्ठिरसे विद्या सीख लेनेपर अर्जुन, तपस्याके लिये, उत्तर दिशाकी ओर चले गये।

अर्जुन थोड़े दिन बादही, हिमालयके समीपवर्ती इन्द्रकील-पर्वत-

किरातार्जुन।

"मेरे शिकारपर तीर चलानेवाले तुम कौन हो? क्या तुम नहीं जानते, कि मैं कौन हूँ?"

Burman Press, Calcutta

[पृष्ठ—१०५]

पर जा पहुँचे और वहाँ महादेवजीकी आराधना की। चार मासकी कठोर तपस्याके बाद, महादेवजी उनपर प्रसन्न हुए। भूत-भावन महादेवने किरातका रूप धारण किया और भगवती पार्वती भी, किरात-रमणीके वेशमें, उनके साथ चलीं।

शिवार्जुन-युद्ध।

इसी समय एक दानवने, सूअरका रूप धारणकर, अर्जुनपर आक्रमण किया। अर्जुन, धनुष लेकर, उसका सामना करनेके लिये तैयार हुए। इतनेमें किरातरूपी महादेवजीने प्रकट होकर उनसे कहा,—"तनिक ठहरो, मैं इसे मारूँगा।" पर अर्जुनने उनकी बातपर कुछ भी ध्यान न देकर, बाणको सूअरके ऊपर छोड़ दिया। किरातवेशी शिवने भी उसी क्षण बाण छोड़ा। दोनोंके छोड़े बाण एक साथही, सूअरको जा लगे।

जो पुरुष शिकारको एक बार घेरले, उसपर दूसरेका प्रहार करना अनुचित है। यही आखेटका नियम है। अतः आखेटका नियम भङ्ग करनेके कारण, किरात और अर्जुनमें, झगड़ा शुरू हो गया। अर्जुनने कहा,—"मेरे शिकारपर तीर चलानेवाले तुम कौन हो? क्या तुम नहीं जानते, कि मैं कौन हूँ?"

किरात-वेशी शिवने कहा,—"शिकार मेरा था। तुम तीर चलानेवाले कौन थे? शिकारका नियम तो तुम्हींने भङ्ग किया है! मैं जानता हूँ, तुम एक अज्ञान बालक हो।"

यह सुनतेही अर्जुनके तन-बदनमें आग लग गयी और उन्होंने, क्रोधमें भरकर, किरातके ऊपर, लगातार, बाण बरसाने आरम्भ कर दिये; किन्तु किरातने उन बाणोंकी ज़रा भी परवा न की। यह देख अर्जुनने उसपर तलवारका एक भरपूर हाथ जमाया। इससे

भी किरात अपने स्थानपर दृढ़ रहा। अन्तमें मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ और अर्जुन, किरातके हाथसे, निपीड़ित तथा हत-चेतन हो, ज़मीन-पर गिर पड़े। क्षणभर बाद, चेतना लाभकर, अर्जुन शिवजीका ध्यान करने लगे। उस ध्यानमें उन्हें किरातकीही मूर्त्ति देख पड़ी। यह देख, अर्जुने, झट किरातके चरण पकड़ लिये। वे समझ गये, कि ये किरात-रूपधारी व्यक्तिही साक्षात् महादेव हैं। अर्जुनने कहा,—"प्रभो! क्षमा कीजिये! मैंने अज्ञानसे अन्धा रहनेके कारणही आपपर अस्त्र-प्रयोग किये हैं।"

महादेवजी बोले,—"वत्स! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। माँगो, कौनसा वर माँगते हो?"

अर्जुन,—"महाराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो कृपा-कर मुझे कुछ अमोघास्त्र प्रदान कीजिये; जिनसे मैं अजेय हो जाऊँ और मेरे जोड़का अन्य कोई वीर न निकले।"

यह सुन, महादेवजीने, अर्जुनको, 'पाशुपत' और 'ब्रह्म-शिरा' नामके दो अमोघास्त्र दिये तथा उनका धारण, चालन और संहार करना भी बता दिया। उक्त कार्यकी समाप्तिके बाद शिवजी वहाँसे चले गये।

अनन्तर यम, वरुण आदि लोकपालोंने भी आकर अर्जुनको अनेक दिव्यास्त्र दिये। इसी समय इन्द्रका सारथि मातलि, रथ लेकर, वहाँ आया और अर्जुनसे बोला,—"आपको इन्द्रदेवने स्वर्गमें बुलाया है।

अर्जुनका स्वर्ग-प्रस्थान।

यह सुन अर्जुन, स्नानादिसे निपट और समीपवर्त्ती ऋषि-मुनि-योंको प्रणामकर, इन्द्रके रथमें सवार हो, स्वर्गको चल दिये। रथ-आकाश-मार्गसे जाने लगा। रास्तेमें अर्जुनने ऐसे अनेक लोक देखे, जहाँ सूर्य-चन्द्रमा नहीं थे, वरन् सभी अपने प्रकाशसे देदीप्य-

घ्यमान थे। जिनका आकार-प्रकार बहुत दीर्घ था; परन्तु तो भी पृथ्वीसे दूर होनेके कारण, वे छोटे-छोटे तारोंकी भाँति देख पड़ते थे। अन्तमें रथ अमरावती नगरीमें पहुँचा। इन्द्रने पहलेही सुन रखा था, कि 'अर्जुन, अब संसार-विख्यात धनुर्धर हो गये हैं; अतः उन्होंने अर्जुनका बड़े उत्साहके साथ स्वागत किया। अनन्तर देवराजने राक्षसोंके संहार करनेमें, उनसे सहायता माँगी। कारण, कि उन दिनों राक्षस लोग, प्रायः, देवताओंको बहुत तङ्ग किया करते थे। अर्जुनने, देवराजकी आज्ञा स्वीकारकर, दानवोंपर चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें राक्षसगण हारकर भाग गये। यह देख, देवराज अर्जुनपर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुनको बहुतसे अमोघास्त्र प्रदान किये।
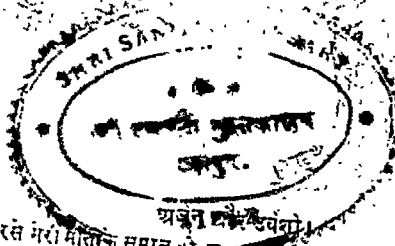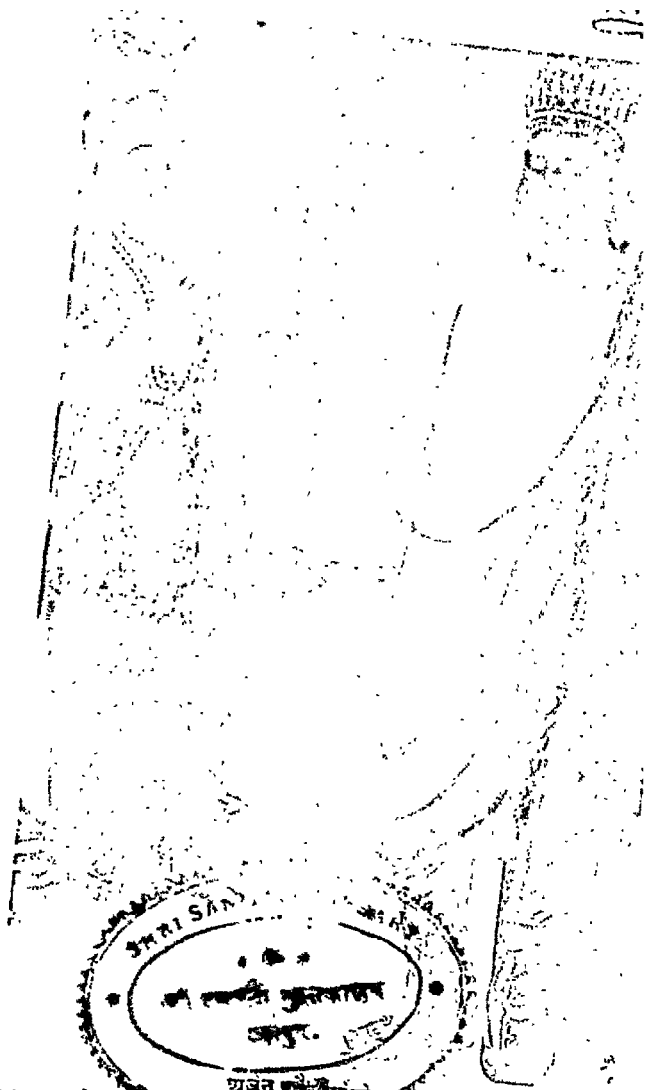
अमरावतीमें अर्जुनने पाँच वर्ष निवास किया। युद्ध-विद्या सीखनेके अतिरिक्त, उन्होंने, वहाँ गान-विद्यामें भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। उस अभ्यास-गुणके प्रभावसेही, इन्द्रकी प्रधान अप्सरा, उर्वशी उनपर मोहित हो गयी; किन्तु अर्जुनने उसे समझाया और कहा,—"तुम एक प्रकारसे मेरी माताके समान हो; अतः तुम्हें इस बातपर लज्जा आनी चाहिये।"

उर्वशीने बहुतेरा चाहा, कि किसी प्रकार अर्जुन उसकी इच्छा पूरी कर दें; किन्तु इन्द्रिय-जीत, मनस्वी अर्जुन, किसी प्रकार भी अपने धर्म-पथसे विचलित न हुए!

उधर, जब अर्जुन तपस्या करनेके लिये चले गये, तब युधिष्ठिरादि पाण्डव कुछ दिनोंतक तो वहीं रहे; परन्तु अन्तमें लोमप ऋषिके बहुत कहने-सुननेसे, तीर्थ-पर्यटनके लिये चल दिये। उन्होंने कोई तीर्थ, अथवा भारतवर्षका कोई भी भाग, देखनेसे न छोड़ा। भ्रमण करते-करते वे लोग, हिमालयको पारकर, गन्धमादन पर्वतपर जा

पहुँचे। वह पर्वत बड़ाही मनोहर था। वहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ाही सुन्दर था। अब, द्रौपदी सहित, पाण्डव वहाँ रहने लगे। एक दिन, वहाँपर, बड़े वेगसे आँधी-पानी आया। बादल गरजने लगे। ओले बरसने लगे। चारों ओर अन्धकारने अधिकार जमा लिया। पाण्डवोंको चिन्ता होने लगी, कि देखें, आज कैसे प्राण बचते हैं। भीमने बड़े कष्टसे द्रौपदीकी रक्षा की। द्रौपदी उस समय रास्तेकी थकावट और वनके कष्टोंसे बहुतही कमज़ोर हो गयी थी। अतः उसे मूर्च्छा आगयी। यह देख, सबको बड़ा कष्ट हुआ। इसी समय भीमने घटोत्कचको याद किया। याद करतेही घटोत्कच आ उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा,—"पिताजी! क्या आज्ञा है? आपने मुझे क्यों याद किया है?"

भीम,—"वत्स! द्रौपदी आजकल बहुतही कमज़ोर हो गयी है। उससे चला नहीं जाता; अतः तुम उसे अपने कन्धेपर बैठा कर ले चलो।"

यह सुनकर घटोत्कचने, द्रौपदीको अपने कन्धेपर चढ़ा लिया। घटोत्कचके साथ और भी अनेक राक्षस आये थे। उन्होंने नकुल और सहदेवको उठा लिया। अब सब लोग वहाँसे चल दिये। क्रमशः अनेक सुन्दर उपवनों, दिव्य-देशों और विद्याधर, किन्नर आदिके विहार-स्थलोंको देखते हुए, पाण्डव, बदरिकाश्रममें पहुँचे। यहींपर अर्जुनसे मिलनेकी आशा थी। अतः उनलोगोंने कुछ दिनोंतक यहीं ठहरनेका विचार किया।

कमलकी कथा।

एक दिन कमलका एक अद्भुत फूल, न जाने कहाँसे, द्रौपदीके सामने आ गिरा। उस फूलका रक्त वर्ण मन-मोहक और सुगन्ध

बड़ी तीव्र थी। द्रौपदीको वह पुष्प बहुतही प्रिय मालूम हुआ। उसने भीमसे कहा,—"स्वामिन्! यह कैसा सुन्दर पुष्प है! अच्छा हो, यदि आप मुझे कुछ ऐसे पुष्प और ला दें।"

इतना सुनकर भीम फूल लेने चल दिये। वह फूल ईशान-कोणकी ओरसे उड़कर आया था; इसलिये भीमने समझा, कि वैसे फूल शायद उधरही मिलेंगे। बहुत दूर निकल जानेपर, भीमको एक बड़ा लम्बा-चौड़ा सरोवर मिला। उसे देख भीमने, बड़े ज़ोरसे, प्रसन्न-गर्जना की। आनन्द-मत्त भीमसेनके भीम नादसे, समस्त दिशाएँ निनादित हो उठीं। अब भीमसेन आगे बढ़े। आगे बढ़कर उन्होंने देखा, कि एक अनल-शिखाके समान कान्ति-वाला, बूढ़ा बन्दर सो रहा है। जिस मार्गसे उन्हें जाना था, बन्दर-उसी मार्गको रोके पड़ा हुआ था। बन्दरको भगानेके लिये, भीमने उसे ललकारा। वह ललकार इतनी भयङ्कर थी, कि उससे समस्त पर्वत-भाग प्रतिध्वनित हो उठा और डरपोक स्वभाववाले मृग तथा पक्षीगण, चञ्चल होकर, इधर-उधर भागने लगे; पर विशालकाय बन्दरने, उस ललकारकी कुछ परवा न की! केवल एक बार आँख खोलकर, उनकी ओर देख लिया और एक जमुहाई लेकर फिर निश्चिन्त-मनसे सो रहा।

यह देख भीमको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने डपटकर कहा,—"अरे बन्दर! रास्ता छोड़कर अलग क्यों नहीं हो जाता?"

बन्दर,—"तुम बड़े दुःखदायी हो! मुझसे तो उठा नहीं जाता, तुम्हीं क्यों नहीं मुझको लाँघकर चले जाते?"

भीम,—"किसीको लाँघना शास्त्रमें निषिद्ध है। मैं शास्त्र-विरुद्ध कार्य न करूँगा।"

बन्दर,—"भाई! बूढ़ा होनेके कारण, मुझमें, अब उठकर सर-

कनेकी ताक़त नहीं रही है; इसलिये मेरी पूँछ पकड़कर खींच दो, तुम्हारा रास्ता साफ़ हो जायेगा।"

यह सुन भीम, एक हाथसे, उसकी पूँछ पकड़कर उठाने लगे; पर वह ज़रा भी नहीं उठी। अन्तमें वे दोनों हाथ लगाकर उठाने लगे; पर पूँछ अब भी टस-से-मस न हुई! अन्तमें सारा बल लगा देनेपर भी, भीम, उस बन्दरको खसका न सके। अब भीमकी आँखें खुलीं। उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा,—"प्रभो! आप कौन हैं?"

बन्दर,—"मेरा नाम हनुमान् है। मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रके वर-लाभसे चिरजीवी होकर, बहुत दिनोंसे, यहाँ रहता हूँ। अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। तुम्हारे बलकी परीक्षा करनेके लियेही मैंने ऐसा किया था। अब तुम अपना काम सिद्ध कर सकते हो।"

भीम प्रणाम करके, कमल-वनकी ओर चल दिये। बहुत दूर जानेपर, वे एक बड़े सुन्दर तालाबके पास पहुँचे। उस तालाबमें वैसेही बहुतसे कमलके फूल खिले हुए थे, जैसा एक फूल, उन्होंने द्रौपदीके पास देखा था।

जब भीम फूल लेनेके लिये तालाबमें घुसे, तब वहाँके रक्षक उनसे लड़नेको तैयार होगये। वह तालाब कुबेरका था। भीमने क्रोधमें आकर बहुतोंको मार डाला और बहुतोंको भगा दिया।

इधर युधिष्ठिर, भीमको आश्रममें न देखकर, बड़े व्याकुल हुए। उन्होंने द्रौपदीसे उनका हाल पूछा। द्रौपदीने कमलके फूलकी सारी कथा कह सुनायी। अब भ्रातृ-प्रेमसे विवश होकर युधिष्ठिर, सबके साथ, भीमको खोजने चले। बहुत दूर निकल जानेपर उन्होंने देखा, कि भीम एक पहाड़की चट्टानपर बैठे हैं। पूछनेपर भीमने सब हाल कह सुनाया और द्रौपदीको वैसेही बहुतसे कमलके फूल दिये, जैसे वह चाहती थी। अनन्तर सब लोग आश्रममें लौट आये।

जटासुर-वध ।

कुछ दिनोंके बाद, पाण्डवोंपर, एक बड़ी भारी विपत्ति आयी। जटासुर नामका एक राक्षस, ब्राह्मणका वेश धारणकर, आश्रमवासी ब्राह्मणोंमें मिल गया और पाण्डवोंके हथियारोंपर नज़र रखकर द्रौपदीको ले भागनेका अवसर ढूँढ़ने लगा। एक दिन जब उसने देखा, कि घटोत्कच आदि राक्षस आश्रममें नहीं हैं और भीमसेन भी शिकार खेलने चले गये हैं, तब उसने पाण्डवोंके सभी हथियार चुपकेसे चुरा लिये और युधिष्ठिरादिको द्रौपदी सहित ले भागा। सहदेव बड़े फुर्त्से उसके हाथसे छूटे और उससे लड़नेवालेही थे, कि इतनेमें वहाँ भीमसेन आ पहुँचे। भीमने जब देखा, कि यह राक्षस द्रौपदी और हमारे भाइयोंको लिये जाता है, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे एक भयङ्कर गर्जनाकर राक्षसके ऊपर टूट पड़े। दोनोंमें घोर युद्ध होने लगा। लड़ते-लड़ते जब राक्षसका दम फूल उठा, तब भीमने, उसका सिर पकड़कर मरोड़ दिया। राक्षस फ़ौरन मर गया।

कुबेर-विजय ।

राक्षससे छुटकारा पाकर सब लोग, उत्तर दिशाकी ओर चल दिये। सात दिन लगातार चलनेके बाद वे, हिमालयके पिछले भागमें रहनेवाले, वृषपर्वा नामक ऋषिके यहाँ पहुँचे। कुछ दिनों-तक वहाँ रहकर, वे फिर गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे।

भीमसेन बड़े अक्खड़ मिजाज़के थे। उन्हें झगड़ा मोल लेना खूब आता था। एक दिन, वे गन्धमादन-पर्वतकी चोटीपर चढ़कर, सिंहनाद करने लगे। उनकी बादल जैसी गर्जना सुनकर, आस-

पासके राक्षस तथा वन-चारी यक्ष, उन्हें चारों ओरसे घेरकर मारनेका उपक्रम करने लगे। यह देख, भीमने सबको घूँसे मार-मारकर गिरा दिया। उन लोगोंमें कुबेरका परम मित्र, 'मणिमान' नामका एक यक्ष भी था। जब कुबेरने सुना, कि भीमने उनके मित्र मणिमानको मार डाला है, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे तत्काल अनेक यक्षोंके साथ आकर भीमसे लड़ने लगे; पर भीम जैसे पराक्रमीके सामने भला कौन ठहर सकता था? अतः कुबेरको उनसे हार माननी पड़ी। भीमके पराक्रमसे प्रसन्न होकर, उन्होंने उनसे मित्रता कर ली।

एक दिन सायंकालके समय पाण्डव, गन्धमादन-पर्वतपर बैठे हुए, वनकी प्राकृतिक शोभा देख रहे थे; इसी समय सहसा उन्होंने देखा, कि आकाश-मार्गसे एक विमान उतर रहा है। थोड़ी देरके बाद, जब वह विमान उनके बहुत निकट आगया, तब सबने आश्चर्यसे देखा, कि महावीर अर्जुन, देव-तुल्य वेशसे, उसमें बैठे हुए हैं। यह देख, पाण्डवोंके आनन्दकी सीमा न रही। सभी आनन्दाश्रु बहाते हुए, उनसे बड़े प्रेमके साथ मिले। अनन्तर दूसरे दिन, अर्जुनने, विस्तार पूर्वक, स्वर्गका सब हाल और विद्या तथा अस्त्रादि प्राप्त करनेका पूरा समाचार कह सुनाया। इसके बाद सब लोग द्वैतवनकी ओर चल दिये। वहाँ कुछ दिनतक निवासकर फिर उन्होंने काम्यक वनमें चलनेकी ठहरायी।

भीमपर विपत्ति।

काम्यक वनको आते समय, रास्तेमें, 'यामुन' नामका एक पहाड़ पड़ा। इस पहाड़से लगा हुआही एक भीषण वन था। इस वनमें अनेक जीव-जन्तु रहते थे। शिकारका यहाँ काफ़ी सुभीता

था। पाण्डवोंने, आज यहीं विश्राम करनेकी ठहरायी। भीम, भोजनार्थ, फल-मूल लानेके लिये उक्त वनमें गये। वनमें कुछ दूर जातेही, भीम एक महाकाय अजगरके चक्करमें पड़ गये। अजगरने भीमको इस तरह पकड़ लिया, कि वे, लाख कोशिशें करनेपर भी, उससे न छूट सके।

इस अजगरमें एक अद्भुत बात यह थी, कि वह मनुष्योंकीसी बोलीमें बात-चीत करता था। पाण्डवोंकेही वंशमें, बहुत वर्षों पहले, 'नहुष' नामके एक राजा होगये थे। उन्होंने, किसी समय, महामुनि अगस्त्यका कोई अपराध किया था। फलत: अगस्त्यने क्रुद्ध हो, उन्हें शाप देकर साँप बना दिया था। तबसे वे इसी योनिमें पड़े हुए, जीवन बिता रहे थे। साँपोंका आहार वनके जीव-जन्तु होते हैं। अजगर तो मनुष्यतकको निगल जाते हैं। अत: नहुष-रूपी अजगर भी, अब भीमको निगलनेकी तैयारी कर रहा था, कि भाग्यवश वहाँ महाराजा युधिष्ठिर, भीमको खोजते-खोजते आ निकले। भीमको एक भीषण अजगरके चक्करमें फँसा देख, युधिष्टिर बड़े घबराये। उन्होंने बड़े विनीत भावसे अजगरसे प्रार्थना की,—"हे सर्पराज! हम आपके भोजनके लिये दूसरी व्यवस्था किये देते हैं; आप इन्हें छोड़ दीजिये।"

अजगरने कहा,—"एक शर्त्तपर छोड़ सकता हूँ। यदि तुम मेरे कुछ प्रश्नोंका समुचित उत्तर दे दो और सब तरहसे मेरा समाधान कर दो, तो तुम भीमसेनकी प्राण-रक्षा करनेका सुअवसर पा सकते हो; क्योंकि उन प्रश्नोंका उत्तर पातेही मेरी मुक्ति हो जायेगी।"

युधिष्ठिर,—"मैं आपकी इस शर्त्तको माननेके लिये तैयार हूँ। आप जो कुछ पूछना चाहते हों, उसे अच्छी तरहसे पूछ लीजिये।"

अजगरने कहा,—"धर्मराज ! मेरे प्रश्नकी भूमिका यह है, कि ब्राह्मण कौन होते हैं ?"

युधिष्ठिर,—"जिस मनुष्यमें सत्य, दान और क्षमा-शीलता हो तथा जो क्रोध-रहित, तपस्वी और दयालु हो, वही ब्राह्मण है। सृष्टिके आरम्भमें, समाजके, जिन बुद्धिमान् व्यक्तियोंमें यह भाव पाया गया था, वे शोक, दुःख और सुखकी कुछ परवाह न कर, केवल 'ब्रह्म'को जाननेके लिये तत्पर हुए थे और उन्होंने अपने परिश्रमसेही ब्रह्मके स्वरूपको जान लिया था, इसीसे उनका नाम 'ब्राह्मण' पड़ा।"

अजगर,—"असली प्रश्न यह है, कि आर्य-जातिमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। ये चारोंही वेद-वाक्य-को प्रमाण मानते हैं। तदनुसार यदि किसी शूद्रमें ब्राह्मणोंकेसे समस्त लक्षण हों, तो क्या वह ब्राह्मण माना जा सकेगा ?"

युधिष्ठिर,—"यदि किसी शूद्रमें ब्राह्मणके लक्षण पाये जायें, तो निःसन्देह वह शूद्र, ब्राह्मण-लक्षणोंसे हीन, एक ब्राह्मण-सन्तानसे श्रेष्ठ माना जा सकता है।"

अजगर,—"यदि तुम चरित्रतासेही ब्राह्मणता मानते हो, तो जबतक चरित्रका कार्य न हो, तबतक जातिही वृथा है ?"

युधिष्ठिर,—"निःसन्देह। वेदका 'यजामहे' वाक्य इसी बातकी पुष्टि करता है। इस विषयमें वेदकी व्यवस्था है, कि जबतक ब्राह्मण-सन्तानके, ब्राह्मण जैसे, संस्कार न हो जायें, तबतक वह शूद्रके समान है। ब्राह्मण-सन्तान प्रकृत ब्राह्मण तभी बन सकता है, जब उसके ब्राह्मणके जैसे सभी संस्कार हो चुके हों।"

अजगरने पूछा,—"मेरा दूसरा प्रश्न यह है, कि संसारमें जानने योग्य 'ज्ञान' क्या वस्तु है ? वह कौनसा स्थान है, जहाँ हानि-लाभ,—जीवन-मरण और सुख-दुःख न हों ?"

युधिष्ठिर,—"ज्ञान ब्रह्मका स्वरूप है। मोक्ष-पदही ऐसा है, जहाँ मनुष्यको हानि-लाभ, जीवन-मरण और सुख-दुःख नहीं व्यापते।"

अजगर युधिष्ठिरके इन उत्तरोंको सुनकर सन्तुष्ट हो गया और उसने भीमसेनको छोड़ दिया। धर्मराज युधिष्ठिर, भीमको साथ लेकर, अपने भाइयोंमें आ मिले और उसी दिन वे काम्यक वनमें चले गये।

काम्यक वनमें, दोबारा, पाण्डवोंका आगमन सुनकर, श्रीकृष्ण उनसे मिलने आये। पाण्डवोंने उनसे, अपने वनवास-कालका, सब हाल कह सुनाया। अर्जुनके अमोघास्त्र प्राप्त करनेका समाचार सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण बड़े भारी राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने इस बीचमें, पाण्डवोंके हितके लिये, बहुतसी बातोंका विचार कर लिया था। श्रीकृष्णने इस बातकी परीक्षाके लिये, कि देखें, युधिष्ठिरका सत्य-व्रत पहलेकीही भाँति स्थिर और अविचल है या नहीं, उनसे कहा,—"यदि आप कहें, तो हम तीस कोटि यादव, कौरवोंसे लड़कर, आपका राज्य दिला दें?"

युधिष्ठिर,—"प्रभो! हम, हमारे समस्त बन्धु और बान्धवगण, एकमात्र आपकेही सहारेपर अवलम्बित हैं। इतनाही नहीं, वरन् यह कहना चाहिये, कि हम सभी आपके दास हैं; पर प्रतिज्ञा-सूत्रमें बँधे रहनेके कारण, अभी हम कुछ नहीं कर सकते। वन-वास और अज्ञात-वासका समय समाप्त होनेपर, हम स्वयंही आपकी सहायता माँगने आयेंगे।"

उसी समय मार्कण्डेय, नारदादि बहुतेरे ऋषि-मुनि उनके पास आये। युधिष्ठिरने सबकी यथोचित अभ्यर्थना की। अनन्तर मार्कण्डेय ऋषिने युधिष्ठिरादिको अनेक, सुन्दर-सुन्दर, उपदेश दिये

तथा नल, ययाति* आदि प्राचीन, धर्मनिष्ठ, राजाओंकी जन्म-कथाएँ सुनायीं। श्रीकृष्णके साथ उनकी पटरानी सत्यभामा भी आयी हुई थीं। बहुत दिनोंके बाद द्रौपदीसे साक्षात् होनेपर, दोनोंने, आनन्दित होकर अनेक प्रकारके कथोपकथन किये। सत्यभामाने, कथा-प्रसङ्ग-वश, द्रौपदीको पातिव्रत-धर्मकी बहुतसी गूढ़ बातें बतायीं। साथही सती-शिरोमणि सावित्रीका † पातिव्रत-धर्मसे भरा हुआ उपाख्यान भी सुनाया। अनन्तर, सत्यभामा सहित, श्रीकृष्ण और महर्षि मार्कण्डेय आदि अपने-अपने आश्रमोंको चले गये।

दुर्योधन-बन्ध-मोक्ष।

उधर पाण्डवोंके वन-गमनके पश्चात्, महर्षि मैत्रेय और श्रीमद् वेदव्यास हस्तिनापुर गये। उन्होंने दुर्योधनको बहुत तरहसे समझाया; किन्तु उस पापीकी समझमें एक बात भी न आयी! महर्षि-गण चले गये। अनन्तर उसकी धूर्त्त-मण्डलीने विचार किया, कि चलो, एक बार पाण्डवोंकी दशा तो देख आयें, कि वे किस तरह रहते हैं? किसी-न-किसी बहानेसे वहाँ एक बार अवश्य चलना चाहिये। यदि हो सका, तो हम अपना वैभव दिखाकर उन्हें लज्जित भी करेंगे।

---

* यदि आपको राजा नल और महाराजा ययातिकी पूरी-पूरी कथा जाननी हो, तो हमारे यहाँसे १२ रंग-बिरंगे चित्रोंसे युक्त "नल-दमयन्ती" और १४ रंग-बिरंगे चित्रोंसे युक्त 'शर्मिष्ठा और देवयानी' नामक पुस्तक अवश्य मँगा देखिये। मूल्य पहलीका १॥) और दूसरीका २॥) रुपया है।

† यदि आपको 'सावित्री' की अत्यन्त आश्चर्य-जनक और शिक्षाप्रद कथा पढ़नी हो, तो हमारे यहाँसे १२ रंग-बिरंगे चित्रोंसे युक्त "सावित्री-सत्यवान्" नामक पुस्तक अवश्य मँगा देखिये। दाम १॥) रुपया, रंगीन जिल्द १॥।) रुपया और सुनहरी रेशमी जिल्द बँधीका २) रुपया है।

अब उन्होंने धृतराष्ट्रसे यह बहाना करके आज्ञा माँगली, कि 'हम द्वैत-वनमें शिकार खेलने जायेंगे।' अनन्तर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनी मन्त्रियों सहित बहुतसी सेना लेकर, द्वैत-वनमें पहुँचे। द्वैत-वनमें, 'मानसरोवर' नामका एक अत्यन्त रमणीक तालाब था। उसमें गन्धर्व लोग जल-विहार किया करते थे। दुर्योधनने वहीं डेरा डालना चाहा; किन्तु गन्धर्वोंने उसके सैनिकोंको रोका और कहा,—"यह तालाब गन्धर्व-राज चित्रसेनका है, यहाँ कोई मनुष्य ठहर नहीं सकता।"

जब इसपर भी दुर्योधनके नौकर नहीं माने, तब बाध्य होकर गन्धर्वोंने उन्हें पीटना आरम्भ किया। पिटे हुए सैनिक, रोते-कलपते, दुर्योधनके पास पहुँचे। दुर्योधनने क्रोधमें आकर सब सेनाके साथ गन्धर्वोंपर चढ़ाई करदी।

दोनों पक्ष आपसमें भिड़ गये। शस्त्रोंकी झनकारसे सारा वन गूँज उठा। थोड़ीही देरतक युद्ध हुआ होगा, कि समस्त कौरव, दुर्योधनको अकेला छोड़, भाग गये। दुर्योधन शत्रुओंके हाथों बन्दी हो गया। यह देख, उसके मन्त्रियोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने विचारा,—"देखो, जो लोग सदा यह कहा करते थे, कि हम दुर्योधनके पसीना गिरनेके स्थानपर अपना रक्त बहानेके लिये तैयार हैं, वेही लोग, आज, उसे शत्रुओंके चंगुलमें फँसाकर भाग गये।"

इस प्रकार बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद, अन्तमें, उन्होंने पाण्डवोंके पास जाकर दुहाई दी। दुर्योधनकी दुर्दशाका हाल सुनकर भीम आदि तो कुछ प्रसन्न हुए; पर युधिष्ठिरको, उस समय, उनका प्रसन्न होना बड़ा बुरा मालूम हुआ। वे बोले,—"भाइयो! अपनी जाति वा कुलमें चाहे कितनीही कलह क्यों न हो; किन्तु जब तीसरा व्यक्ति उस कुटुम्बके आदमीको सताये, तो उसका

प्रतिकार प्रत्येक कुटुम्बीको करना उचित है। दुर्योधन हमारे कुटुम्बी हैं। उनके अपमानसे हमारा अपमान है। अतः हम आज्ञा देते हैं, कि तुम अभी जाकर उनकी रक्षा करो।"

युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, अपने-अपने शस्त्र लेकर, दुर्योधनको छुड़ाने चले।

कुछ दूर जातेही, उन्हें, गन्धर्वलोग दिखाई दिये। पाण्डवोंने वहींसे बाण बरसाना आरम्भ किया। पाण्डवोंके बाणोंकी मारसे परेशान होकर कुछही देरमें गन्धर्वलोग भागते दिखाई दिये। जब वे लोग वहाँ पहुँचे, जहाँ गन्धर्वोंका राजा चित्रसेन दुर्योधनको पकड़े हुए, रथमें बैठा था, तब दुर्योधन पाण्डवोंकी सूरत देखकर रोने लगा! चित्रसेन और अर्जुनकी मित्रता थी। वह पाण्डवोंको देखतेही रथसे उतर पड़ा और बड़े प्रेमके साथ चारों भाइयोंसे गले-गले मिला। अनन्तर अर्जुनने चित्रसेनसे कहा,—"मित्र! यह तुमने क्या किया, जो जान-बूझकर भी हमारे भाईको पकड़ लिया?"

चित्रसेन,—"मित्रवर! आपको असली हाल नहीं मालूम है। कौरव लोग बड़े दुष्ट हैं। ये पापी आपको अपना वैभव दिखाकर चिढ़ाने आये थे। अब मैं दुर्योधनको कभी न छोड़ूँगा। यही पापी सब कुकर्म्मोंकी जड़ है।"

अर्जुन,—"मित्र! जो हुआ सो हुआ; अब हम महाराजा युधिष्ठिरकी ओरसे, आपको यह आज्ञा सुनाते हैं, कि आप, इनका अपराध क्षमाकर, इन्हें, बन्धन-मुक्त कर दें।"

चित्रसेन,—"वाह! वाह! जान पड़ता है, धर्मराज लौकिक विषयोंसे एकदम अनभिज्ञ हैं। चलो, हमलोग उनके पास चलें और उनको समझायें, कि वे इस दुराचारीको कभी न छोड़नेकी आज्ञा दें। अब मैं इसे जेलखानेमें सड़ा-सड़ाकर मारूँगा।'

इसके बाद सब लोग युधिष्ठिरके पास गये। युधिष्ठिरने बड़े आदरसे चित्रसेनकी अभ्यर्थना की। अनन्तर, युधिष्ठिरके बहुत अनुरोध करनेपर, दुर्योधन छोड़ दिया गया। दुर्योधनने लज्जा-से सिर नीचाकर हस्तिनापुरकी ओर प्रस्थान किया।

द्रौपदी-हरण।

एक बार पाँचों पाण्डव, द्रौपदी और पुरोहित धौम्यको आश्रममें छोड़कर, किसी दूसरे वनमें शिकार खेलने चले गये थे। उसी समय सहसा सिन्धु-सौवीर देशका राजा, 'जयद्रथ', किसी कारणवश उधर आ निकला। एक पर्णकुटीरके द्वारपर, स्वर्गीय सौन्दर्यको पराभव करनेवाले, एक अनुपम रमणी-रत्नको खड़े देख, उसे पानेके लिये, उसके मुँहमें पानी भर आया। वह झट उसके पास जा-कर बोला,—"सुन्दरि! तुम ऐसी अनुपम रमणी होकर भी, अना-थोंकी भाँति, क्यों वनमें निवास करती हो? चलो, मेरे यहाँ चलो। मैं तुम्हारी, अपने राज्यकी अधिष्ठात्री देवीकी भाँति, पूजा करूँगा।"

किन्तु द्रौपदीने, इस प्रस्तावसे सहमत होना तो एक ओर रहा, उलटे, उसे सैकड़ों गालियाँ सुना डालीं। इसपर जयद्रथ बहुत क्रुद्ध हुआ और बलपूर्वक उसे, रथपर चढ़ाकर, ले भागा। द्रौपदी बहुत रोयी-चिल्लायी; पर उस दुष्टने उसकी एक न सुनी। यह देख पुरोहित धौम्य भी, उसको गालियाँ देते हुए, रथके पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

कुछ देर बाद, पाण्डवगण अपनी कुटीमें आये। वहाँ द्रौपदी-को न देख, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ! परन्तु थोड़ीही दूरपर धूलमें पड़ी हुई, शोक-विह्वला, द्रौपदीकी एक दासीके मुँहसे सब हाल सुन-कर वे, शीघ्रतासे, जिधर दुष्ट जयद्रथ गया था, उधरही दौड़ चले।

तबतक जयद्रथ थोड़ी दूरतक ही जा सका था; अतएव उसे देखतेही भीमने ललकारकर कहा,—"अरे पामर ! तू सिंहकी स्त्रीको गीदड़ होकर भी, कहाँ लिये जाता है ? यदि कुछ सामर्थ्य है, तो ठहरकर हमसे युद्ध कर।"

जयद्रथ, सेना-सहित, रुक गया। अब जयद्रथ और पाण्डवोंमें घोर युद्ध होने लगा। पाण्डवोंकी, थोड़ीही देरकी, मारने जयद्रथके पक्षवालोंका नाकोंदम कर दिया। भीमकी गदा, अर्जुनकी बाण-वर्षा और नकुल-सहदेवके खड्ग-प्रहारसे जयद्रथके सैनिकोंकी लोथ-पर लोथें गिरने लगीं। सारी सेना तितर-बितर हो गयी। यह देख, जयद्रथ डरा और द्रौपदीको रथसे उतारकर भाग चला; पर भीमकी वायु-वेगके समान दौड़ने, उसे अधिक दूर न जाने दिया। भीमने जयद्रथको पकड़ लिया और लात, घूँसे तथा थप्पड़ोंसे उसकी खूब खबर ली।

यह देखकर युधिष्ठिरने, दूरसेही, चिल्लाकर कहा,—"भाई ! अब कृपा करो। जयद्रथ हमारा आत्मीय है, इसे न मारो।"

बड़े भाईकी आज्ञा पा, भीमने उसे छोड़ दिया; पर दुर्गति बनाने-में कुछ भी कसर बाक़ी न रखी। उन्होंने अर्द्धचन्द्र बाणसे, उसकी एक ओरकी मूँछ और एक ओरके सिरके बाल मूँड़ दिये। जयद्रथने दु:खित हो, युधिष्ठिरकी दोहाई देते हुए कहा,—"धर्मराज ! अब मेरा समस्त अपराध क्षमा करके, मेरी रक्षा करें; मैं आपका दास हूँ।"

युधिष्ठिरने कहा,—"नहीं, जयद्रथ ! तुम हमारे दास नहीं, भाई हो; जाओ, अब तुम आनन्दके साथ घर चले जाओ।"

जयद्रथ लज्जित और अपमानित होकर, घर न जा, हरिद्वार चला गया। वहाँ उसने घोर तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया। शिवजीने प्रकट होकर कहा,—"वत्स ! वर माँगो।"

जयद्रथ और भीम।

"भीमने जयद्रथको पकड़ लिया और लात, घूँसे तथा थप्पड़ोंसे उसकी खूब खबर ली।"

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ—१२०]

जयद्रथने कहा,—"प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वर दीजिये, कि मैं एक बार समस्त पाण्डवोंको हरा दूँ ।"

शिवजीने कहा,—"वत्स ! अर्जुनको तो तुम कभी हरा नहीं सकोगे । हाँ, युधिष्ठिरादि अन्य चारों पाण्डवोंको तुम एक दिन, युद्धमें, अवश्य हरा सकोगे ।"

यह कह, शिवजी अन्तर्द्धान हो गये । जयद्रथने इसीपर सन्तोष किया और अपने घर लौट आया ।

उधर पाण्डव आनन्दसहित आश्रममें जा पहुँचे और वहाँसे द्वैत वनमें आकर, वन-वासकी अवधि पूरी होनेकी प्रतीक्षा करने लगे ।

धर्मराजका महत्व ।

द्वैतवनमें, जहाँ पाण्डवगण कुटी-निर्माणकर रहा करते थे, वहीं, एक तपस्वी ब्राह्मणकी भी कुटी थी । इसी कुटीके सामने, उस तपस्वी ब्राह्मणकी, यज्ञके समय अग्नि पैदा करनेवाली "अरणी" नामकी एक लकड़ी बँधी रहती थी । एक दिन, एक हिरन, उस अरणीसे अपना शरीर रगड़कर खुजलाने लगा । खुजलाते-खुजलाते उस हिरनके सींगमें अरणी फँस गयी । हिरनने बहुतेरा चाहा, कि अरणी निकल जाये ; पर वह न निकली । हारकर वह, उस अरणीको लिये हुए ही भाग गया । तपस्वी ब्राह्मणको इससे बड़ा दुःख हुआ । वह युधिष्ठिरके पास आकर बोला,—"महाराज ! मेरी अरणी एक हिरन, अपने सींगोंमें फँसाकर, ले भागा है । आप किसी तरह मेरी उस अरणीको ला दीजिये ।"

महाराजा युधिष्ठिरने उस ब्राह्मणके दुःखमें समवेदना प्रकट की और उसी समय उन्होंने अपने चारों भाइयोंको, हिरन ढूँढ़नेके लिये, भेज दिया । फिर आप भी धनुष उठाकर, उसकी खोजमें, एक

ओरको चल दिये। थोड़ी देर बाद, उन्हें, एक स्थानपर वह हिरन मिल गया और चारों भाई भी उसके पीछे तीर छोड़ते हुए दिखाई दे गये। पाण्डव तक-तककर उसे तीर मारते थे; पर कुछही दूर-पर जाते हुए, उस हिरनके शरीरमें एक भी तीर नहीं लगता था। इसी समय हिरन, सबकी आँखोंसे बचकर, कहीं ग़ायब होगया। उसकी खोजमें, भूखे-प्यासे, चारों भाई बहुत देरतक भटका किये। यहाँ तक, कि वे थक गये और थोड़ी देर विश्राम करनेके लिये, एक वट-वृक्षके नीचे, बैठ गये। उस समय युधिष्ठिरको बड़ी प्यास मालूम हुई। उन्होंने नकुलको जल लानेकी आज्ञा दी। नकुल स्वयं भी प्यासे थे, अतएव वे जल लेने चले गये।

जलाशय दूर नहीं था। जहाँ ये लोग बैठे हुए थे, उससे कुछ ही दूरपर स्वच्छ जलका एक तालाब था। नकुल उसी तालाबसे जल लेने गये। लेकिन यह कैसे आश्चर्यकी बात है, कि जैसेही वे जल लेनेके लिये तालाबमें उतरे, वैसेही कहींसे, आवाज़ आयी,—"बच्चा नकुल! यह तालाब मेरा है। इसलिये बिना मेरी आज्ञाके इसमेंसे एक बूँद भी पानी न लेना।"

नकुल इस आवाज़को सुनकर कुछ चकराये। उन्होंने चारों ओर नज़र दौड़ाकर देखा; पर उन्हें कोई भी दिखाई न दिया। आख़िर वे उस तालाबमें घुस गये और चुल्लूमें पानी भरकर पीने लगे। अभी उन्होंने भरपेट पानी भी न पिया था, कि वे वहीं बेहोश होकर गिर पड़े!

उधर नकुलको लौटनेमें देर होती देख, युधिष्ठिरने, सहदेवको, नकुलको बुलाने और जल लाने भेजा। सहदेव भी वहीं पहुँचे। अपने भाई नकुलको वहाँ मरा पड़ा देख, उन्हें बड़ा दुःख हुआ; किन्तु प्यासके मारे उनकी जान जा रही थी; अतएव उन्होंने

सोचा, 'पहले जल पीकर, फिर धर्मराजको नकुलके परलोक-वासकी खबर दूँगा।' तदनुसार वे भी जैसेही जल पीनेको तालावमें उतरे, वैसेही, पहलेकी भाँति, एक आवाज़ आयी। सहदेवने भी उस आवाज़की कुछ परवाह न की और वे पानी पीने लगे। फलतः उनका भी वही हाल हुआ, जो नकुलका हुआ था। इसी प्रकार अर्जुन और भीम भी आये और वे भी, अपने अन्यान्य भाइयोंकी तरह, उस तालावका पानी पीकर मर गये!

इस अकाण्ड-काण्डको देख, युधिष्ठिर, बड़े हैरान हुए। यह कैसा रहस्य है, कि जो पानी लेने जाता है, वही गायब हो जाता है! आखिरकार वे स्वयं पानी पीने और अपने भाइयोंकी खोज लेने चले।

तालावके किनारेपर पहुँचतेही उन्होंने आश्चर्यके साथ देखा, कि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, चारोंही मरे पड़े हैं! अब तो उनके शोक और दुःखका कुछ ठिकाना न रहा। वे अपने दुर्भाग्य-को दोष देते हुए, वनको कँपा देनेवाला, विलाप करने लगे। विलापके अन्तमें, प्याससे व्याकुल होनेके कारण, वे भी जल पीनेके लिये तालावमें उतरे। पानीमें पैर देतेही आवाज़ आयी,—"युधिष्ठिर! तुम्हारे भाइयोंको मारनेवाला मैंही हूँ। मैं इस तालावका स्वामी हूँ। यदि तुम्हें पानी पीना है, तो पहले मेरी आज्ञा ले लेना।"

युधिष्ठिर,—"तुम कौन हो? सामने आकर अपना परिचय दो।"

महाराजा युधिष्ठिरके इतना कहतेही एक बगुला उनके सामने आकर खड़ा हो गया। उस बगुलेको देख, युधिष्ठिर कहने लगे,—"मेरे इन महाबली भाइयोंको मारना, एक सामान्य पक्षीका काम नहीं है। इसलिये पहले आप अपना असली रूप प्रकट करें।"

यह सुनतेही उस बगुलेने अपना असली रूप धारण किया। उस रूपको देखनेसे मालूम हुआ, कि वह कोई यक्ष है।

यक्ष बोला,—"युधिष्ठिर ! तुम्हारे भाइयोंने मेरा कहा नहीं माना। मेरे मना करनेपर भी जल पी लिया, इसीसे उन्हें प्राण-वियोग सहना पड़ा। यदि तुम भी मेरा कहा न मानोगे, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी। हाँ, यदि तुम मेरे कुछ प्रश्नोंका जवाब दे दोगे, तो मैं खुशीसे तुम्हें पानी पीनेकी आ[illegible]।"

युधिष्ठिर,—"आप क्या पूछना चाहते ह, पूछिय। मैं यथा-साध्य उनका उचित उत्तर दूँगा।"

यक्षने पूछा,—"महाराज ! पहले यह बताइये, कि सूर्य किसकी आज्ञासे नित्य उदय और अस्त होते हैं ? उनके पास कौनसे सेवक रहते हैं और वे किसमें स्थित हैं ?"

युधिष्ठिर,—"यक्ष-राज ! सूर्यका अस्तोदय-कर्त्ता धर्म है। सूर्यके सेवक ब्रह्म हैं। उनकी स्थिति सत्यमें है।"

यक्ष,—"महाराज ! मनुष्यको क्या काम करनेसे महत्व मिलता है ? समयंपर किससे सच्ची सहायता मिलती है ? बुद्धिका विकास किस प्रकार होता है ?"

युधिष्ठिर,—"तप या उद्योग करनेसे मनुष्यको महत्व मिलता है। धारणा या स्मरण-शक्तिसेही मनुष्यको, समयपर, सच्ची सहायता मिलती है। वृद्धोंकी सङ्गतिसे मनुष्यकी बुद्धिका विकास होता है।"

यक्ष,—"महाराज ! मनुष्योंमें मनुजतापनकी क्या बात है ? दुष्टोंकी क्या पहचान है ?"

युधिष्ठिर,—"मनुष्योंका मनुजतापन उनकी मृत्यु है। दुष्टोंकी पहचान, उनका सदा निन्दाकरनेवाला स्वभाव है।"

यक्ष,—"महाराज ! जीता हुआ भी कौन मृतक है ?"

युधिष्ठिर,—"वह मनुष्य, जो माता-पिता, पितर, अतिथि और अपनी आत्मातकका भाग भी जोड़कर रखता है; पर भोगता नहीं।"

यत्त,—"पृथ्वीसे भारी कौन है? आकाशसे ऊँचा कौन है? वायुसे भी शीघ्र चलनेवाला कौन है और फूँससे भी अधिक जलने-वाला कौन है?"

युधिष्ठिर,—"माता पृथ्वीसे भारी है। पिता आकाशसे भी ऊँचा है। मन वायुसे भी शीघ्र दौड़ता है और चिन्ता फूँससे भी अधिक जलती है।"

यत्त,—"सोनेके समय भी किसकी आँखें वन्द नहीं होतीं? पैदा होकर भी कौन, एक ही जगह, बिना कुछ खाये-पिये अचल रूपमें पड़ा रहता है? हृदय-हीन कौन है? किसकी अति शीघ्र वृद्धि होती है?"

युधिष्ठिर,—"मछली सोते हुए भी आँख वन्द नहीं करती। अण्डा पैदा होकर भी अचल रूपमें एक जगह पड़ा रहता है। पत्थरके हृदय नहीं होता। नदीकी अति शीघ्र वृद्धि होती है।"

इस प्रकार यत्तने युधिष्ठिरसे अनेक प्रश्न किये, जिनका उत्तर धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ी तत्परताके साथ दिया। इन उत्तरोंसे सन्तुष्ट होकर, यत्तने कहा,—"धर्मराज! मैं आपके ज्ञानकी परीक्षा लेकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। इसके बदलेमें मैं आपके इन चारों भाइयोंमेंसे जिसे आप सर्वाधिक चाहते हैं, उसेही जिला दूँगा। बोलिये, आप किसे जिलानेकी आज्ञा करते हैं?"

युधिष्ठिर,—"कृपाकर नकुलको जिला दीजियेगा।"

यत्त,—"भीम और अर्जुनको छोड़कर आप नकुलको क्यों जिलाना चाहते हैं?"

युधिष्ठिर,—"इसलिये, कि माता कुन्तीका एक पुत्र मैं जीवितही हूँ। नकुलके जीवित होनेपर, माता माद्रीका भी एक पुत्र जीवित हो जायेगा। इसीलिये मैंने आपसे नकुलको जिलानेकी प्रार्थना की है।"

यह सुनकर यक्ष युधिष्ठिरपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और तत्काल उनके चारों भाइयोंको जीवित कर दिया। सबके जीवित हो जानेपर, उस यक्षने, फिर युधिष्ठिरसे कहा—"वत्स युधिष्ठिर! मैं वास्तवमें धर्म हूँ। आज तुम्हारे महत्वको देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। तुम मुझसे कोई वर माँगो।"

युधिष्ठिर,—"प्रार्थना इतनीही है, कि उस ब्राह्मणकी अरणी मिल जाये और कुछ नहीं चाहिये।"

धर्म,—"तुम लोगोंकी परीक्षा लेनेके लियेही मैं हिरन और बगुला बना था और तुम्हें अपने पास बुलानेके लियेही मैं उस ब्राह्मण-की अरणी ले भागा था। अब ब्राह्मणको वह अरणी मिल जायेगी। तुम उस ओरसे निश्चिन्त होकर, कोई वर माँगो।"

युधिष्ठिर,—"भगवन्! अब हमारे बारह वर्ष पूरे होनेवाले हैं। एक वर्ष हमें अज्ञातवास करना पड़ेगा। आप ऐसा वर दीजिये, कि एक वर्षतक हमें कोई न पहचान सके।"

धर्म,—"ऐसाही होगा" कहकर वहाँसे तत्काल अन्तर्द्धान हो गये। ब्राह्मणकी अरणी भी, उसे मिल गयी। अस्तु।

उक्त घटनासे कुछ दिनों बाद, वन-वासकी, बारह-वर्षकी अवधि पूरी हो गयी। अब पाण्डवोंको, एक सालके लिये अज्ञात-वासकी चिन्ता हुई।

बहुत तर्क-वितर्क और सोच-विचारके बाद पाण्डवोंने निश्चय किया, कि यह वर्ष, मत्स्य-देशके विराट्-नगरमें बिताना चाहिये। कारण, कि वहाँका राजा विराट्, बड़ा विद्वान्, गुणी और धार्मिक है तथा पाण्डव-कुलका, सदासे, हित-चिन्तन करता आया है।

अज्ञात-वास ।

अनन्तर, द्रौपदी सहित, पाण्डवोंने अपने-अपने कामका विषय ठहराकर, विराट्-नगरकी ओर प्रस्थान किया। दशार्ण-देशकी उत्तर दिशा और पाञ्चाल देशकी दक्षिण दिशाका मार्ग व्यतीत करते हुए, वे, अनेक नद-नदियाँ, पर्वत-उपत्यका और वन-उपवनोंको लाँघकर विराट्-नगरके पास जा पहुँचे। अब उन्होंने सोचा, कि "यदि हमलोग अपने अस्त्र और शस्त्र नगरमें ले जायँगे, तो सम्भव है, कोई हमें पहचान ले; अतः इन्हें नगरके बाहरही छोड़ जाना अच्छा होगा।"

यह विचारकर, एक मरघटके पासवाले सेमलके वृक्षकी ऊँची शाखामें, अर्जुनने, सबके अस्त्र-शस्त्रोंको बाँधकर छिपा दिया। सबसे पहले युधिष्ठिर विराट्-नरेशकी सभामें गये। उन्हें दूरसेही आते देख, राजा-विराट्ने अपने सभासदोंसे कहा,—"यह कौन चला आता है? इसका पहनावा तो दरिद्रों जैसा है; परन्तु मुखकी कान्ति देखनेसे जान पड़ता है, मानों यह कहींका राजा है।"

इतनेमें युधिष्ठिरने पास आकर कहा,—"महाराजका कल्याण हो। एकाएक आपत्तिके आ पड़नेसे, मैं श्रीमान्‌की सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। यदि श्रीमान् कृपाकर मुझे अपने यहाँ आश्रय दें, तो बड़ा

उपकार हो। गरीबोंका दुःख दूर करनाही समर्थ राजाओंका प्रधान कर्त्तव्य है।"

राजा-विराट्,—"तुम कौन हो? कहांसे आये हो और कौनसा काम कर सकते हो?"

युधिष्ठिर,—"महाराज! मैं ब्राह्मण हूं। मेरा नाम कङ्क है। मैं महाराजा युधिष्ठिरका प्यारा मित्र हूं। [illegible] पाण्डवोंके दुर्यो-धन द्वारा जुएमें हारकर, वन चले जानेसे मैं, आजकल, आश्रय-हीन होगया हूं। मैं चौपड़ खेलनेमें बड़ा प्रवीण हूं।"

राजाको चौपड़ खेलनेका बड़ा शौक था। उन्होंने युधिष्ठिरको अपने यहाँ आश्रय दिया और सबसे कहा,—"ये कङ्क नामके महाराज, आजसे हमारे प्रिय मित्र हुए। तुम लोग जिस प्रकार मुझे मानते हो, उसी प्रकार इन देवताको भी मानना।"

इसके बाद रसोइयेका रूप धरकर भीम गये। उनके शरीरका सुन्दर गठन देख, विराट्-राजको बड़ा आश्चर्य हुआ। भीमने आकर कहा,—"महाराज! मेरा नाम बल्लभ है। मैं रसोइया हूं। सब तरहके भोजन बनानेका काम मैं बड़ी उत्तमतासे कर सकता हूं। यदि मेरे योग्य कोई स्थान खाली हो, तो उसपर मुझे नियुक्त कीजिये।"

विराट्-राज,—"तुम्हारी सूरत-शकल देखनेसे तो यह नहीं मालूम होता, कि तुम रसोइये हो?"

भीम,—"महाराज! मैं वास्तवमें रसोइयाही हूं। मुझे योग्य स्थान मिलना चाहिये। पहले मैं महाराजा युधिष्ठिरके यहां यही काम करता था। मुझे कुछ-कुछ कुश्ती लड़ना भी आता है।"

यह सुन विराट्ने उन्हें अपना प्रधान रसोइया बना लिया। इस प्रकार भीम, राजा विराट्के महलमें, रसोई बनानेके कामपर नौकर रखे गये और बड़े आनन्दसे दिन बिताने लगे।

उधर द्रौपदी, फटे-पुराने वस्त्र पहने हुई, विराट्-राजके महलोंके नीचे पहुँची। वहाँके प्रहरियोंने ऐसी सुन्दरी स्त्री कभी नहीं देखी थी। इसीलिये, आश्चर्यमें आकर, वे लोग उसका नाम, धाम और पता पूछने लगे। द्रौपदीने कहा,—"भाई! मुझ दुःखिनीसे क्या पूछते हो? मैं रानियोंका शृङ्गार करनेवाली सैरिन्ध्री हूँ और नौकरीकी खोजमें फिर रही हूँ।"

राजा विराट्की रानी सुदेष्णाने, छतपर खड़े होकर, ये सब कुछ देखा-सुना और उसी समय अपनी एक सेविकाके द्वारा, द्रौपदीको बुलवा भेजा। द्रौपदीने आकर रानीसे कहा,—"महारानी! मेरे स्वामी पाँच गन्धर्व हैं। वे दुर्भाग्यवश एक आपत्तिमें फँस गये हैं। इस समय मैं नौकरीकी खोजमें हूँ। शृङ्गार करनेका काम मुझे अच्छी तरहसे आता है।"

रानी सुदेष्णाने प्रसन्न होकर, द्रौपदीको अपने यहाँ रख लिया। अनन्तर द्रौपदीने फिर कहा,—"महारानीजी! एक प्रार्थना है, मैं कभी किसीका जूठा न उठा सकूँगी।"

रानीने द्रौपदीकी यह बात भी मान ली। इसी प्रकार एक-एक करके अर्जुन, नकुल और सहदेव भी राजा विराट्के यहाँ गये और नौकर हो गये। अर्जुन, 'बृहन्नलाके' नामसे, राजकुमारी उत्तराके गायन-वाद्य सिखानेवाले शिक्षक बने। नकुलने ग्वाला बनकर गौओंकी रक्षाका भार लिया और सहदेव अश्व-पालक बनकर विराट्-राजके यहाँ रहने लगे।

इसी प्रकार एक-एक काम अपने अधिकारमें कर लेनेसे, पाण्डवोंके अज्ञात-वासके दिन, सानन्द व्यतीत होने लगे। पाण्डवों-की कार्य-कुशलता देखकर, राजा विराट्, धीरे-धीरे, उनका विशेष आदर-सम्मान करने लगे।

कुछ दिनों बाद, ज्येष्ठ मासमें, एक पर्व उपस्थित हुआ। उस पर्वमें अनेक देशोंके नट और बाज़ीगर आदि, विराट्-नगरमें तरह-तरहके खेल-तमाशे दिखा, राजाकी ओरसे, यथेष्ट पुरस्कार और सम्मान प्राप्त किया करते थे। इस बार भी बहुतसे नट और पहलवानोंने अपने-अपने कर्तब दिखाकर, राजासे पुरस्कार प्राप्त किया। उनमेंसे 'जीमूत' नामका एक पहलवान सबसे बढ़ा-चढ़ा निकला।

जब वह सब पहलवानोंको हरा चुका, तब उसे बड़ा घमण्ड हो गया। उसने अभिमानमें आकर कहा,—"है कोई ऐसा पहलवान, जो मुझसे लड़े?" इसपर राजा विराट्को भीमकी याद आ गयी; उन्होंने भीमको बुलाया और जीमूतके साथ कुश्ती लड़नेको कहा। भीम, युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर, अखाड़ेमें आ कूदे। जीमूत और भीममें कुश्ती छिड़ गयी। ज़रा देर भी न बीती होगी, कि भीमने जीमूत-को इस ज़ोरसे ज़मीनपर दे पटका, कि बेचारेकी हड्डी-पसलीतक टूट गयी। साथही जीमूत मर गया। राजा-विराट्को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भीमको बहुतसा पुरस्कार दिया।

कीचकका अत्याचार।

इधर द्रौपदीका समय बड़े कष्टसे बीतता था। रानी तो उसके ऊपर बड़ी कृपा रखती थीं; किन्तु रानीका भाई कीचक, द्रौपदीको बहुत सताया करता था। द्रौपदीसे उसका अत्याचार अधिक न सहा गया। उसने अनुनय-विनय, गाली-गलौज, आदि अनेक प्रकारसे उसे समझाया; पर उस पापीने एक न सुनी, उल्टा वह उसे और भी दुःखित करने लगा।

एक दिन रानीने द्रौपदीको कोई भोजनकी वस्तु लानेके लिये, कीचकके घर भेजा। उस दिन कीचकने, द्रौपदीके साथ ऐसा अनु-

कीचक और द्रौपदी।

"रानीका भाई कीचक द्रौपदीको बहुत सताया करता था"

JAIPUR

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ—१३०]

चित व्यवहार किया, कि जिससे विवश हो, द्रौपदीने क्रोधमें भर, उसे धक्का देकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इसके बाद वह, अपनी रक्षाके लिये, दौड़ती हुई राज-सभामें पहुँची।

परन्तु पापी कीचकने वहाँ भी उसका पिण्ड न छोड़ा। वह उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ गया। राज-सभामें पहुँचतेही उसने, सबके सामने, द्रौपदीके बाल पकड़, उसे ज़मीनपर गिरा दिया और लात मारकर भाग गया।

द्रौपदी रोने लगी। उस समय भीम और युधिष्ठिर भी सभामें उपस्थित थे। यह घृणित घटना देख, सभाके सभी लोग कीचककी निन्दा करने लगे। भीमको भी बड़ा क्रोध आया; पर युधिष्ठिरने संकेत-द्वारा उन्हें शान्त रहनेका आदेश किया। राजा-विराट् कीचकसे बहुत डरते थे। अतः उन्होंने भी कीचकसे कुछ नहीं कहा। अनन्तर युधिष्ठिर, द्रौपदीसे बोले,—"सैरिन्ध्री! तुम घरमें जाओ। यथासमय तुम्हारा विचार किया जायेगा।"

यह सुन द्रौपदी, आँसू पोंछती हुई, सुदेष्णाके पास चली गयी। उसके मुखसे सारा हाल सुनकर रानीने कहा,—"सैरिन्ध्री! इस समय तो तुम शान्त हो जाओ, जब महाराज महलमें आयेंगे, तब मैं अवश्य उनसे तुम्हारी दुर्दशापर विचार करनेका अनुरोध करूँगी और कीचकको उचित दण्ड दिलाकर तुम्हें सन्तुष्ट करूँगी।"

कीचक-वध।

जब आधी रात हुई, तब द्रौपदी, चुपचाप, अपनी शय्यासे उठकर, भीमके शयन-गृहमें गयी। उस समय भीम, आनन्दसे पड़े, खर्राटे ले रहे थे। द्रौपदीने उन्हें जगाया। जागकर भीमने उससे आनेका कारण पूछा। द्रौपदीने क्रोधमें भरकर कहा :—

"हे आर्य ! तुम क्या इतने अनजान हो, जो मुझसे आनेका कारण पूछते हो ? इस जन्ममें, तुम जैसे वीर पतियोंके साथ रहकर, मैंने जैसे-जैसे कष्ट पाये हैं, वैसे पहले कभी नहीं पाये थे। आजका यह अपमान तो, रह-रहकर, मुझे विच्छूके डङ्क मारने जैसा, कष्ट दे रहा है।"

भीमसेनने दुःखित चित्तसे कहा,—"प्रिये ! निःसन्देह मैं तुम्हारे सब कष्टोंको, भली भाँति, जानता हूँ ; पर करूँ क्या ? भय्या हम सबमें ज्येष्ठ और पिताके समान हैं। उनकी आज्ञासे, मैं, क्रोध आ-जानेपर भी, खूनका घूँट पीकर रह जाता हूँ। अभीतक जो मैंने कीचकको नहीं मारा, उसका कारण यही है, कि कहीं लोग हमें पहचान न लें और बना-बनाया खेल खड़मण्डल न हो जाये। अकेला पाकर, मैं उस दुरात्माको पातालतकमें भी न छोड़ूँगा। अच्छा, अब एक काम करो; तुम कल सवेरे कीचकसे कहला भेजो, कि वह रातको तुमसे नृत्यशाला में, जहाँ अर्जुन राजकुमारीको गाना सिखाते हैं, मिले। मैं कल रातको वहीं छिपा बैठा रहूँगा। यदि भगवान्‌ने चाहा, तो परसों सवेरे तुम उसे जीवित न देखोगी।"

यह सुन द्रौपदी, प्रसन्न होकर, चली गयी। सवेरा होतेही उसने कीचकसे कह दिया, कि वह आज रातको उससे नृत्यशालामें अवश्य मिले। यह सुन, कीचक बड़ा प्रसन्न हुआ और रात होतेही अच्छे-अच्छे बहुमूल्य वस्त्र पहन, खूब बनाव-शृङ्गारकर, नृत्यशालामें जा पहुँचा। भीम, पहलेसेही वहाँ पहुँचकर, सफ़ेद चादर लपेटे पड़े थे। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था। सिवा सफ़ेदके, काली वस्तु वहाँ दिखाईही न देती थी। अँधेरेमें भीमको लेटे देख, कीचकने उन्हें द्रौपदी समझा और झट भीमका हाथ पकड़कर बड़े प्रेमसे कहा,—

"सुन्दरि ! लो मैं आगया। लोग मुझे बड़ा सुन्दर कहते हैं। आज तुम भी उठकर मेरे उस सौन्दर्य-रसका पान करो।"

यह सुन भीमने कहा,—"मेरे इस हाथसे अधिक सुन्दर हाथ किसीका भी न होगा; आज तुम भी उसकी परीक्षा करलो।" इतना कह, उन्होंने, तत्काल अपना हाथ छुड़ाकर, उस दुष्टके बाल पकड़ लिये। फिर क्या था; दोनोंमें लात-घूँसा, उठा-पटक चलने लगी। कीचक भी कम बली नहीं था। थोड़ी देरतक तो उसने भीमको खूब छकाया; किन्तु कहाँ शेर और कहाँ गीदड़ ? अन्तमें भीमने कीचकको ज़मीनपर दे मारा और उसके हाथ-पैर तोड़कर उसीके पेटमें घुसेड़ दिये ! कीचक मर गया। इसके बाद भीम, फिर अपने घरमें आकर सो रहे।

प्रातःकाल हुआ। साथही लोगोंने आश्चर्यके साथ सुना, कि सैरिन्ध्रीके गन्धर्व पतियोंने, रातके समय कीचकको मार डाला है। जब इस घटनाका संवाद कीचकके सम्बन्धियोंको मिला, तब वे लोग बड़े दुःखी हुए। अनन्तर वे कीचकके शवको, दाह-संस्कार करनेके लिये, श्मशानकी ओर ले चले। ज्योंही वे अर्थीको लेकर कुछ आगे बढ़े, त्योंही उन्होंने देखा, कि सामने द्रौपदी खड़ी है। उन्होंने आपसमें सलाह की,—"हमारा भाई कीचक, सैरिन्ध्रीके कारणही, मारा गया है। अतः हम इसे भी भाईकी देहके साथ जला दें। यदि यहाँ इसका और भाईका सम्बन्ध नहीं हुआ, तो नहीं सही; पर स्वर्गमें तो अवश्य हो जायेगा ?" यह विचारकर, उन लोगोंने द्रौपदीको भी पकड़ लिया और श्मशानकी ओर ले चले। यह देख, द्रौपदी रो-रो कर कहने लगी,—"हे मेरे गन्धर्व-पतियो ! आप लोग कहाँ हो ? आओ, देखो, मैं किस विपत्तिमें फँसी हुई हूँ। शीघ्र आकर मुझे इन दुष्टोंके हाथसे बचाओ।"

जिधरसे कीचककी अर्थी जा रही थी, भीमके रहनेका कमरा भी उधरही था। वे रातको देरतक जागे थे और कीचकने लड़कर कुछ थक भी गये थे; अतएव वे अपने घरमेंही असावधान पड़े सो रहे थे। इसी समय उनके कानोंमें द्रौपदीके रोने-चिल्लानेकी आवाज़ पड़ी। वे भड़-भड़ाकर जाग पड़े। असली बातको मालूम करते भी उन्हें देर न लगी।

कीचकके सम्बन्धियोंकी दुष्टता देख, भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वे झट अपने शरीरमें राख मल, असली वेशको बिगाड़कर, मकानकी दीवार फाँदते हुए, सबसे पहलेही श्मशानमें जा पहुँचे। जातेही उन्होंने एक बड़े भारी पेड़को जड़से उखाड़ लिया और कीचकके सम्बन्धियोंको मारने झपटे। उनका महा भयङ्कर रूप देख, डरके मारे, सबके होश उड़ गये। वे सब-के-सब लोग,—"लो, वह आगया गन्धर्व!" इतना कह और द्रौपदीको छोड़कर भाग चले; पर भीमके हाथोंसे बचकर निकल भागना उनकी शक्तिसे बाहर था। वे लोग गिनतीमें लगभग सौ थे। भीमने उन सबको बात-की-बातमें, मार गिराया! इसके बाद वे, द्रौपदीको घर लौट जानेका आदेश दे, चुपचाप, अपने स्थानमें पहुँच गये।

अब द्रौपदीसे नगरके सारे लोग डरने लगे। वह जिस ओरसे होकर निकल जाती, उसी ओरके आदमी, मुँह छिपाकर, भाग जाते! स्वयं राजा विराट्ने, अपनी रानीके पास जाकर कहा,—"इस बलाको यहाँसे जल्द टालो। इस चुड़ैलके यहाँ रहनेसे नित्य नये-नये उपद्रव खड़े होते हैं।"

जब द्रौपदी लौटकर घर आयी, तब रानी सुदेष्णा उससे कहने लगी,—"सैरिन्ध्री! राजा, तुमसे और तुम्हारे गन्धर्व-पतियोंसे, बहुत डर गये हैं। अतः तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ।"

द्रौपदी,—"यदि ऐसाही है, तो आप तेरह दिनोंतक मुझपर और कृपा करें। इसके बाद मेरे पति मुझे स्वयं आकर ले जायेंगे।"

द्रौपदीके इस प्रस्तावपर रानी राज़ी हो गयीं। अब पाण्डवोंके अज्ञात-वासका समय पूरा होनाही चाहता था।

त्रिगर्त्त-पराजय।

इतने दिनोंके भीतर दुर्योधनके दलवालोंने देश-विदेश छान डाले; पर उन्हें पाण्डवोंका कहीं पता न मिला। दुर्योधनके सब गुप्तचरोंने लौटकर यही कहा,—"महाराज! हमने पाण्डवोंको बहुतेरा खोजा; पर उनका कहीं भी पता न चला।"

कीचककी मृत्युका समाचार, शीघ्रही, सब देशोंमें फैल गया। कीचक बड़ा बलवान् था। प्राय: सभी देशोंके राजा-महाराजा उसके नामसे काँपा करते थे। जिस समय कौरवोंको कीचकके मरनेका संवाद मिला, उस समय त्रिगर्त्त-देशका राजा, दुर्योधनका परम मित्र, सुशर्मा, वहीं बैठा हुआ था। उसका और विराट्का वैमनस्य बहुत दिनोंसे चला आता था; क्योंकि सुशर्माको कीचक कई बार हरा चुका था। अत: कीचकका मृत्यु-संवाद सुशर्माके लिये बहुतही आनन्ददायक हुआ। उसने सोचा,—"चलो, राजा विराट्से बदला चुकानेके लिये, यह समय बहुत अच्छा है।"

यह सोच, उसने राजा-विराट्पर चढ़ाई करनेका निश्चय किया। दुर्योधनने भी उसकी सहायता करनेका वचन दिया। तदनन्तर, दूसरेही दिन, चतुरंगिणी सेना सजाकर, राजा सुशर्मा, कौरवोंके साथ वहाँसे चल पड़ा।

एक दिन राजा-विराट्, अपनी राज-सभामें बैठे, किसी विषयपर विचार कर रहे थे। इसी समय सहदेवने, हाँफते-हाँफते, आकर

कहा,—"महाराज ! त्रिगर्त्त-देशके सैनिक, हमें मार-पीटकर, आपकी हज़ारों गौएँ छीने लिये जाते हैं।"

यह सुनतेही सारी सभामें हुल्लड़ मच गया। वीरोंकी भुजाएँ फड़कने लगीं। राजा विराट्की आज्ञासे वीरगण, रण-सज्जासे सुसज्जित हो, युद्धके लिये तैयार हो गये। स्वयं विराट्-राज, सेनापति बन, रण-क्षेत्रकी ओर चले। अर्जुनको छोड़, युधिष्ठिरादि, चारों पाण्डव भी उनके साथ चले। सुशर्मा और विराट्-की सेनामें घोर संग्राम शुरू हो गया; अन्तमें राजा विराट् हार गये। उनकी सेना, थोड़ीही देरमें, खेत छोड़कर भाग गयी। राजा विराट्, सुशर्माके हाथमें फँसकर बन्दी बन गये। युधिष्ठिरसे यह सब न देखा गया। उन्होंने भीम, नकुल और सहदेवको आज्ञा दी, कि वे तत्काल विराट्को शत्रुके हाथसे छुड़ा लायें।

बड़े भाईकी आज्ञा पाकर भीमसेन, एक बड़ासा पेड़ उखाड़, कालकी भाँति, सुशर्माकी ओर दौड़े। देखते-देखते भीमने, उस पेड़की भयानक मारसे, सुशर्माके बहुतसे सैनिक, घोड़े, हाथी, और सवार मार गिराये। अन्य उपाय न देख, राजा सुशर्मा भीमसे लड़नेके लिये तैयार हुआ; पर पास आतेही भीमने, बाल पकड़कर, उसे रथसे घसीट लिया और ज़मीनपर दे मारा। उधर नकुलने विराट्को छुड़ा लिया था। इधर भीमने लात, घूँसे और थप्पड़ोंसे सुशर्माकी खूब ख़बर ले डाली थी। यहाँतक, कि जब वह अधमरा होगया, तब वे उसे विराट्के पास ले गये। युधिष्ठिर-ने कह-सुनकर उसे छुड़वा दिया। पराजित हो जानेपर सुशर्माने राजा-विराट्से क्षमा माँगी। विराट्ने उसे क्षमाकर, चले जानेकी आज्ञा दे दी। इस घटनासे राजा-विराट् पाण्डवोंपर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले,—"वीरो! आज आप-

ही लोगोंने मेरे प्राण बचाये हैं। कहिये, अब मैं किस प्रिय कार्य-से आप लोगोंको प्रसन्न करूँ ?"

युधिष्ठिरने कहा,—"महाराज ! हमने जो कुछ किया है, वह केवल अपने कर्त्तव्यका पालन मात्र किया है। इसमें प्रत्युपकार करनेकी क्या बात है ? स्वामीकी, सब प्रकारसे सेवा करना, सेवकका परम धर्म है। बस, हम यही चाहते हैं, कि हमपर सदैव आपकी कृपादृष्टि इसी प्रकार बनी रहे।"

अर्जुनका पराक्रम।

इधर युद्ध-स्थलमें तो ये बातें हो रही थीं और उधर कौरवोंने दूसरी ओरसे जाकर, फिर विराट्-नगरमें उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और द्रोण आदि वीरोंने, राजा-विराट्की, सब गौएँ छीनकर अपने अधिकारमें करलीं। उस समय विराट्-नगरमें, विराट्का पुत्र कुमार 'उत्तर' ही, सारा राज-काज चला रहा था। इसी समय, बहुतसे पशु-रक्षकोंने, रोते-पीटते सभामें आकर, कुमारसे कहा,—"महाराज ! अभी एक उपद्रव शान्त भी नहीं हुआ था, कि दूसरा और खड़ा हो गया। कौरवोंने हमलोगोंको मारकर आपकी सारी गौएँ छीन लीं।"

यह सुनतेही उत्तर, भयभीत होकर, प्राण बचानेके लिये, सीधा रनिवासमें भाग गया। जब अन्तःपुरकी स्त्रियोंने उससे कारण पूछा, तब वह अपनी बहादुरी बघारनेके लिये कहने लगा,—"क्या करूँ, मेरे पास कोई सारथि नहीं है; नहीं तो मैं, दुर्योधन और कर्ण तो क्या, भीष्मतकको भी ज़मीन दिखा देता।"

अर्जुन कुछ दूरपर बैठे सरगम अलाप रहे थे। उन्होंने द्रौपदी-के कानमें धीरेसे कह दिया,—"तुम मेरी ओर संकेत कर दो।"

अर्जुनका अभिप्राय समझ, द्रौपदीने उत्तरके पास आकर कहा,—"कुँवरजी! ये जो आपकी बहिन उत्तराको गाना-बजाना सिखाया करते हैं, ये सारथिका काम भी बहुत अच्छा जानते हैं। मैंने इन्हें,—रानी द्रौपदीके पति, अर्जुनसे अश्व-चालन-विद्या सीखते देखा था।"

उत्तर,—"तो तुम उसे मेरे साथ चलनेके लिये राज़ी करो।"

द्रौपदी,—"राज़ी करनेका काम तो आपकी बहनही कर सकती हैं। मैं कौन हूँ, जो उनसे कहूँ?"

तब उत्तरने उत्तरासे कहा,—"बहन! तुम बृहन्नलासे, जो तुम्हें सङ्गीत-शिक्षा देता है, मेरा रथ हाँकनेके लिये कहो।"

यह सुन राजकुमारी उत्तराने अर्जुनको अपने भाईका सारथि बननेके लिये कहा। अर्जुन उत्तरापर अपनी पुत्री जैसाही प्रेम करते थे। उसके अनुरोधसे उन्होंने सारथि बनना स्वीकार कर लिया। उत्तरा उन्हें अपने भाईके पास ले गयी। तब कुमार उत्तरने अर्जुनसे पूछा,—"क्यों भाई! तुम हमारे सारथि बनोगे? क्या तुम संग्राममें रथ हाँकना जानते हो?"

अर्जुनने हँसकर कहा,—"मैं तो, कुँवर साहब! नाचना-गाना जानता हूँ। क्या संग्राममें नाचने-गानेकी भी ज़रूरत पड़ती है?"

उत्तर,—"नहीं, वहाँ नाचने-गानेकी ज़रूरत नहीं है। सैरिन्ध्रीने मुझसे कहा है, कि तुम रथ हाँकना भी जानते हो। अब तुम्हें अवश्य मेरा सारथि बनना पड़ेगा।"

अर्जुन मान गये। सैरिन्ध्रीने, कुमारकी आज्ञासे, उन्हें सारथिके वस्त्र ला दिये। अर्जुन वस्त्र लेकर, अनजानोंकी भाँति, पहनने लगे। पायजामेको तो उन्होंने हाथमें पहना और जामेको पैरोंमें! यह देख रनिवासकी सब स्त्रियाँ खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। अन्तमें सैरिन्ध्रीने स्वयं उन्हें कपड़े पहनाये। कुमार उत्तर भी, रण-वेशसे

सजकर बाहर आया। दोनों रथपर बैठ गये। चलते समय कुमारी उत्तराने अर्जुनसे कहा,—"गुरुजी! जब हमारे भाई कौरवों-को जीतलें, तब आप उनके रंग-बिरंगे वस्त्र लूट लायें। मैं उनको सुन्दर-सुन्दर गुड़ियाँ बनाऊँगी।" अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर रथ हाँक दिया। उत्तरको बड़ी जल्दी थी। वह बार-बार अर्जुनसे कहने लगा, कि "कौरव जिस ओर गये हैं, तुम भी उसी ओर, शीघ्रता पूर्वक, रथ हाँककर ले चलो।" किन्तु जब अर्जुन रथको कौरव-सेनाके सामने ले गये, तब, समुद्रकी भाँति फैली हुई, उस चतुरंगिणी सेनाको देखकर, उत्तरके छक्के छूट गये। वह बोला,—"बृहन्नला! मुझमें इतनी शक्ति कहाँ है, जो मैं इस अनन्त सेनाके साथ लड़कर जीत सकूँ? मैं तो अभी, अच्छी तरह, धनुष पकड़ना भी नहीं जानता। लौटाओ, रथको शीघ्र लौटाओ; मेरा मन अत्यन्त घबरा रहा है!"

अर्जुनने हँसकर कहा,—"वाह भाई! वाह! क्या औरतोंके सामने इसी वीरताकी बड़ाई बघारते थे? अब तो तुम्हें इन लोगों-से अवश्य लड़ना होगा। मैंने तो, सारथि बनकर, कभी रणमें पीठ नहीं दिखायी! मैं अब रथ न लौटाऊँगा।"

यह कहकर अर्जुन रथको और भी ज़ोरसे हाँकने लगे। अन्त-में उत्तर, रोता हुआ, रथसे कूदकर, पैदलही भागने लगा। अर्जुन भी कूदकर उसके पीछे दौड़े और कुछही देरमें उन्होंने उसे पकड़ लिया। यह देख उत्तर, भर्राई हुई आवाज़में, गिड़-गिड़ाकर बोला,—"बृहन्नला! मुझे क्षमा करो। अब मैं कभी लड़ाईका नाम न लूँगा। मेरा प्राण बचाओ, मैं तुम्हे बहुतसा पुरस्कार दूँगा और जीवनभर तुम्हारा उपकार न भूलूँगा।"

इसपर अर्जुनने उसे धैर्य देकर कहा,—"अच्छा, यदि तुम्हें

लड़ना स्वीकार नहीं है, तो तुम रथ हाँको, मैं शत्रुओंसे लड़ूँगा। उत्तर इस बातपर राज़ी हो गया। अब अर्जुन रथ हाँककर वहाँ ले गये, जहाँ श्मशान था। वहाँ उन्होंने उत्तरको, सेमलके पेड़पर चढ़ा, अपने अस्त्र-शस्त्र उतरवाये। उन अस्त्रोंको देखतेही उत्तर चकित हो गया। उसने आजतक ऐसे अस्त्र-शस्त्र कभी नहीं देखे थे। अनन्तर अर्जुनने युद्ध-क्षेत्रमें जाकर, अपना गाण्डीव-धनुष टङ्कारा। उसे सुनकर उत्तरके होश-हवाश हवा हो गये। वह आश्चर्य-भरी दृष्टिसे टकटकी लगाकर अर्जुनके मुँहकी ओर देखने लगा। यह देख अर्जुन हँसते हुए बोले,—"क्यों भाई! तुम इस तरह क्या देख रहे हो? कुछ सन्देह हुआ है क्या?"

उत्तरने विस्मित होकर कहा,—"हाँ, मुझे आपके इस हिंजड़े वेशपर सन्देह है। आप वास्तवमें हिंजड़े नहीं, हिंजड़ेके वेशमें कोई वीर पुरुष मालूम होते हैं। सच बताइये, आप कौन हैं?"

अर्जुनने कहा,—"मैं अर्जुन हूँ।"

उत्तरने आश्चर्यमें भरकर फिर कहा,—"अर्जुन! क्या सचमुच, आप अर्जुन हैं? तब आपके अन्यान्य भाई कहाँ हैं?"

अर्जुन,—"तुम्हारे पिताके यहाँ कङ्क नामके जो ब्राह्मण-वेशी सभासद् हैं, वे महाराजा युधिष्ठिर हैं। वल्लभ नामका रसोइया भीमसेन हैं। ग्रन्थिक नामक सारथी नकुल हैं और तन्त्रिपाल नामका ग्वाला सहदेव हैं।

यह सुन उत्तरने, अर्जुनको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अपने इस असद् व्यवहारके लिये, वह, उनसे बारम्बार क्षमा माँगने लगा।

उधर गाण्डीवकी टङ्कार सुन कौरवोंके कान खड़े हो गये। उन्होंने विस्मित होकर कहा,—"हैं! अर्जुन यहाँ कहाँसे आ गये? यह टङ्कार तो उन्हींके गाण्डीवकी मालूम होती है।"

दुर्योधनने व्याकुल भावसे आगे बढ़कर देखा, तो सचमुचही अर्जुनको रथपर बैठे पाया। यह देख वह बड़ा घबराया हुआ भीष्मके पास गया और कहने लगा,—"महोदय ! देखिये, अर्जुनको आज हमने खोज निकाला है। वे अपना अज्ञात-वास बिना पूरा कियेही आज प्रकट हो गये हैं। अतः उनसे कहा जाये, कि वे फिर बारह वर्षतक वन-वास करें ; क्योंकि यह बात जुआ खेलनेसे पहलेही ठहरा ली गयी थी।"

यह सुन भीष्मने अच्छी तरह गणना करके कहा,—"नहीं, दुर्योधन ! यह तुम्हारा भ्रम है। मेरी गणनाके अनुसार तेरह वर्ष पूरे हो गये। यही नहीं, वरन् पाँच महीने छः दिन और अधिक बीत गये हैं। अर्जुन ऐसा मूर्ख नहीं है, जो वह बिना अवधिके पूर्ण हुएही सहसा प्रकट हो जाता।"

जब सबने हिसाब लगाकर देखा, तो भीष्मका कथन सच पाया। अब सारे कौरवोंके मुख सूख गये। अनन्तर भीष्मने अपने सब योद्धाओंको सम्बोधन करके कहा,—

"वीरो ! सावधान ! आओ, आज हमें शिवके समान तेजस्वी, इन्द्रके समान पराक्रमी और पवनके समान वेगवान्, अजेय, वीर अर्जुनसे युद्ध करना होगा।"

इसपर कर्णने उनका उपहास करते हुए कहा,—"मित्र दुर्योधन ! यह देखो, क्षत्रिय होकर भी भीष्म, युद्धसे किस तरह डरते हैं। भला अर्जुनकी क्या सामर्थ है, जो हमारे साथ लड़ सके।"

यह सुन द्रोणने कर्णको फटकारा और भीष्मके वाक्योंका समर्थन किया। अब दोनोंको एकसा गीत गाते देख, कर्ण आग-बबूला होकर बोला,—"दुर्योधन ! देखो, भीष्म और द्रोण कैसे कृतघ्नी हैं। अर्जुनमें भला ऐसी कौनसी शक्ति है, जिससे ये लोग इतना डरते हैं ?"

अब आपसमेंही दोलत्ती चलने लगी। महात्मा भीष्म और शस्त्र विद्या-विशारद आचार्य द्रोणकी निन्दा सुन, द्रोण-पुत्र, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा अन्यान्य वीरगण क्रोधसे लाल हो उठे। उन्होंने एक मुँहसे कर्णकी घोर निन्दा की। यह देख दुर्योधनने, बड़ी नम्रताके साथ, भीष्म आदिसे क्षमा माँगी। अब युद्ध करनेका समय आया। भीष्मकी आज्ञासे कौरव-सेना, चार भागोंमें बाँट दी गयी। एक भाग दुर्योधन और विराट्की छीनी हुई गौओंकी रक्षामें रहा, बाक़ी तीन भागके सैनिक, अर्जुनसे युद्ध करने लगे।

युद्धके प्रारम्भमें अर्जुनने दो बाण गुरुद्रोणके चरणोंमें फेंके। इससे द्रोण, यह समझकर, बड़े प्रसन्न हुए, कि परम धार्मिक अर्जुनने मुझे प्रणाम किया है। अनन्तर अर्जुनने उत्तरको आज्ञा दी, कि वह रथको कौरव-सेनाके उस भागकी ओर ले चले, जहाँ दुर्योधन और विराट्की गौएँ हैं। आज्ञा पातेही उत्तर रथको वहीं ले गया। अब अर्जुनने बाण-वर्षा करनी प्रारम्भ की। अर्जुनके धनुषका शब्द सुनतेही शत्रु-पक्षीय सैनिकोंके होश उड़ने लगे। बात-की-बातमें अर्जुनने कौरवोंकी सेनाके पैर उखाड़ दिये।

यह देख, अभिमानसे मतवाला, कर्ण, अर्जुनके सामने आया। उसकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी, कि 'किसी प्रकार अर्जुनसे मेरा युद्ध हो।' अब दोनों वीरोंमें भयानक संग्राम होने लगा। कर्णने कई बार अर्जुनपर घोर आक्रमण किया; किन्तु अर्जुनके पराक्रमके आगे उसकी एक न चली। कुछही देर बाद लोगोंने देखा, कि आत्मश्लाघी कर्ण, पैरसे लेकर सिरतक, बाणोंसे विँधा हुआ, हाँफता-हाँफता, प्राण-भयसे भागा चला जा रहा है! इसी प्रकार एक-एक करके, अर्जुनने, सभी वीरोंकी ख़बर ली। कर्णके भागनेपर कृप आये। कृपके हारनेपर द्रोण खड़े हुए। अर्जुनकी अपूर्व वीरता देख,

गुरु द्रोण, पहलेसे ही, चकित होरहे थे ; अब स्वयं शिष्यके साथ उनका मोर्चा डटा। गुरु द्रोणको सामने देख, अर्जुनने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा,—"महात्मन्! आपका प्रिय शिष्य अर्जुन, आज बहुत दिनोंके बाद, आपकी सेवामें उपस्थित हुआ है। आप गुरु हैं और मैं शिष्य। ऐसी अवस्थामें मैं आपके ऊपर किस प्रकार क्रोध करूँ ? इसलिये पहले आपही प्रहार कीजिये; फिर मैं भी इच्छानुसार उसका प्रतिकार करूँगा।"

यह सुन द्रोणने क्षणभरमें बहुतसे बाण अर्जुनके ऊपर छोड़े ; किन्तु वीर अर्जुनने, बात-की-बातमें, सब बाणोंको काट गिराया। अब दोनोंमें घमासान युद्ध होने लगा। दोनोंही एक दूसरेको परास्त करनेका प्रयत्न करने लगे। सब लोग चुपचाप खड़े, गुरु-चेलेका वह अपूर्व युद्ध-कौशल देखने लगे।

अभी क्षणभर भी न बीता होगा, कि द्रोणका रथ बाणोंसे ढक गया। गुरुको अदृश्य देख, सारी कौरव-सेना घबरा उठी।

अब अर्जुन अश्वत्थामाकी ओर झुके। बात-की-बातमें गुरु-पुत्रकी देह, मारे घावोंके, भर गयी और वे भी वहाँसे भाग चले। कर्ण फिर सामने आया; परन्तु अबकी बार वह केवल एक बाणकी चोटसे मूर्च्छित होकर रथमें गिर पड़ा। उसके बाद भीष्म पितामह आये। उन्होंने बहुतेरा चाहा, कि वे अर्जुनको कुछ देरतक रोके रहें; किन्तु अर्जुनकी भीषण मारके आगे, उन्हें, ज़रा देरके लिये भी ठहरना कठिन होगया। इसी बीचमें दुःशासनसे अर्जुनकी मुठभेड़ होगयी। दुःशासनको देखतेही, अर्जुनकी आँखोंमें खून उतर आया। उन्होंने, सबके देखते-देखते, उसके सारथि और घोड़ोंको मार गिराया। अब दुःशासनका बचना कठिन होगया। वह रथसे कूद, अपना प्राण लेकर भाग गया। अवसर देख, अर्जुनने समस्त

कौरव-सेनापर धावा किया। इस धावेमें दुर्योधनने दो बार अर्जुनसे युद्ध किया; किन्तु दोनों ही बार उसे भाग जाना पड़ा। अब अर्जुनने शत्रु-सैन्यपर सम्मोहनास्त्रका प्रयोग किया। उसकी कान्ति और तेजसे समस्त सेना हतबुद्धि हो, पृथ्वीपर गिर पड़ी। यह देख अर्जुनने उत्तरसे कहा,—"वत्स! जाओ, अब तुम अपनी बहनके लिये, इन समस्त वीरोंके वस्त्र उतार लाओ। केवल भीष्म और द्रोणके वस्त्रोंको हाथ न लगाना; क्योंकि उन्हें इस अस्त्रका प्रतिकार करना मालूम है। यद्यपि वे गिर गये हैं, तोभी सबकी तरह चेतना-शून्य नहीं हो गये हैं; यह निश्चय जानना!"

अर्जुनकी आज्ञासे, उत्तरने, सब वीरोंके कपड़े उतार लिये। गौओंको, अर्जुनने, अपने रथके पीछे बाँध लिया और रथको विराट् नगरकी ओर ले चले।

कुछही देर बाद, कौरवोंकी मूर्च्छा भङ्ग हुई। सबसे पहले भीष्मनेही युद्ध आरम्भ किया; परन्तु अर्जुनकी बाण-वर्षाने उन्हें शीघ्रही शान्त कर दिया।

उधर दुर्योधनको ज्योंही चैतन्य हुआ, त्योंही उसने ललकारते हुए कहा,—"कर्ण और दुःशासनादि वीरो! देखो, अर्जुन भागा जा रहा है, उसे अभी पकड़ लो।"

यह सुन भीष्मने कुछ क्रुद्ध होकर कहा,—"दुर्योधन! तुम निरे मूर्ख हो। यदि अपना भला चाहते हो, तो सीधे हस्तिनापुर लौट चलो; क्योंकि अभीतक तो केवल एकही पाण्डवसे पाला पड़ा है, जब पाँचों पाण्डव आ जायेंगे, तब तुममेंसे एक भी जीता न बचेगा। जिस समय तुमलोग अज्ञानावस्थामें पड़े हुए थे, यदि अर्जुन चाहता, तो उसी समय तुम लोगोंको यमराजके घर पहुँचा देता; परन्तु वह धार्म्मिक है। तुम्हारी तरह उसे अन्याय करना नहीं आता।"

भीष्मकी ये बातें सुन दुर्योधन चुप हो रहा। इसी अवसरमें अर्जुनने बाणोंके द्वारा भीष्म, द्रोण आदि गुरुओंको प्रणाम किया और एक बाणसे दुर्योधनके मुकुटके दो टुकड़े कर डाले। तदनन्तर वे, आनन्दके साथ, शङ्ख और घण्टा बजाते हुए, विराट्-नगरकी ओर चल पड़े। इधर कौरवगण भी, अपनासा मुँह लेकर, हस्तिनापुर लौट आये।

रास्तेमें अर्जुनने उत्तरसे कहा,—"तुम घर पहुँचकर किसीको मेरा असली हाल न बतलाना।"

उत्तरने उनकी बात मानली। अनन्तर अर्जुनने उसी सेमलके वृक्षके पास पहुँच, अपना वीर-वेश उतारकर, फिर बृहन्नलाका वेश धारण कर लिया और राजकुमारको लिये हुए राजधानीमें जा पहुँचे।

पाण्डव-प्रकाश।

इधर पाण्डवोंकी कृपासे राजा विराट्, सुशर्म्माको जीतकर, महलोंमें आये। वहाँ पहुँचतेही उन्हें समाचार मिला, कि हमारे पीछे कौरवोंने यहाँ आकर बड़ा उपद्रव मचा दिया था; परन्तु उत्तरने उन्हें परास्त किया है और वह बृहन्नलाके साथ विजयश्रीको लिये हुए, घर आ रहा है। यह सुनकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने शतमुखसे पुत्रकी प्रशंसा की और इस समाचारके लानेवालेको बहुतसा इनाम दिया।

तदनन्तर राजा विराट्ने, प्रसन्नमुखसे, सैरिन्ध्रीको चौपड़ लानेकी आज्ञा दी और चौपड़ आजानेपर, वे, कङ्कके साथ खेलने बैठे। खेलते खेलते, उन्होंने, सौ-सौ तरहसे, अपने बेटेकी बड़ाई की। उनके मुँहसे उत्तरकी इतनी अधिक और अनुपयुक्त प्रशंसा सुनते-सुनते, जब युधिष्ठिरसे न रहा गया, तब वे बोले,—"महाराज! ये सब

उस, नृत्य-शिक्षक, बृहन्नलाके गुण हैं। वह जिसका सारथी हो, उसे मनुष्य तो क्या, देव, दानव, यक्ष और गन्धर्व—कोई भी परास्त नहीं कर सकता।"

युधिष्ठिरकी इस बातसे राजा विराट् बहुतही क्रुद्ध हुए और बिगड़ कर बोले,—"तुम बार-बार उस हिंजड़ेका नाम क्यों लेते हो? हमारा पुत्र, उत्तर बड़ा वीर है। वह योग्य पिताकी योग्य सन्तान है। तुम हमारे सामने पुत्रका अपमान करते हो, यह अच्छा नहीं है। जाओ, इस बार हमने तुम्हें क्षमा किया, फिर कभी ऐसी अनुचित बात मुँहसे न निकालना।"

युधिष्ठिरसे चुप न रहा गया। वे सत्यकी हत्या, अपने प्राणोंके बदलेमें भी, क्योंकर होने दे सकते थे? उन्होंने राजाकी इस अन्धी पुत्र-वत्सलताकी उपेक्षा की और हँसते-हँसते कहा,—"महाराज! मैंने जो कुछ कहा है, उसका एक अक्षर भी झूठ नहीं है। भीष्म, द्रोण, आदि वीरोंका सामना करना सुकुमार उत्तरका काम नहीं था। बृहन्नलानेही उन्हें पराजित किया है।"

अब तो राजा अपने आपेमें न रहे और उन्होंने पाँसा उठाकर युधिष्ठिरके मुँहपर जोरसे फेंक मारा। पाँसेकी चोट लगतेही युधिष्ठिरकी नाकसे ख़ून निकल आया; पर उन्होंने उसे ज़मीनपर न गिरने देकर अपनी अञ्जुलिमेंही रोक लिया। यह देख, पासही बैठी हुई द्रौपदी, सोनेकी झारीमें जल भर लायी और उनका घाव धोने लगी। इसी समय पहरेदारने आकर कहा,—"राजकुमार उत्तर, बृहन्नलाके साथ, द्वारपर उपस्थित हैं।"

राजाने कहा,—"उन्हें सम्मानके साथ जल्दी यहाँ बुला लाओ।"

युधिष्ठिरने सोचा, कि "यदि अर्जुन यहाँ आयेगा, तो मामला बेढब हो जायेगा, क्योंकि वह मेरी नाकसे ख़ून निकलता देख, कभी

अपनेको न रोक सकेगा और कोई-न-कोई अनर्थ करही बैठेगा।" सोचते-सोचते उन्हें एक युक्ति सूझ गयी। उन्होंने चुपकेसे द्वार-पालके कानमें कह दिया, कि "केवल राजकुमारकोही लाना, वृहन्नलाको अभी न आने देना।"

ऐसाही हुआ। केवल राजकुमार उत्तरही अन्दर आया। आतेही युधिष्ठिरकी दशा देख, उसने उद्विग्न होकर पूछा,—"पिता-जी! इनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार किसने किया है?"

विराट्,—"मैंने किया है। यह भिखमँगा ब्राह्मण तुम्हारी जीतको वृहन्नलाकी जीत बतलाता था; इसीलिये मैंने इसे मारा है।"

उत्तर,—"महाराज! आपने यह बड़ा अन्याय किया। ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंके पूज्य देव-स्वरूप हैं। उनके क्रोधसे हम तो एक ओर, संसारतकका सर्वनाश हो जा सकता है। इसलिये इनको शीघ्रही प्रसन्न कोजिये।"

इतना सुनकर राजा विराट्ने युधिष्ठिरसे क्षमा माँगली। क्षमा-शील युधिष्ठिरने उन्हें तत्काल क्षमा कर दिया। अनन्तर कुमार उत्तर, अपने हाथोंसे उनकी मरहम-पट्टी करने लगा। जब लहू गिरना बिल्कुल बन्द हो गया, तब उन्हें दूसरे कमरेमें लेजाकर, उसने वृहन्नलाको भीतर बुलवाया। राजाने उनको आदर-सत्कारसे बैठा-कर, उनके सामनेही फिर पुत्रकी प्रशंसा करनी शुरू की। वे बोले,— "पुत्र! तुम जैसे वीर पुत्रको पाकरही हमने आज अपनेको सच्चा पुत्रवान् समझा। भला तुमने महाबली कर्ण, परम पराक्रमी भीष्म, और अजेय आचार्य, द्रोणको किस प्रकार हराया? तुमने हरी हुई गायोंको लौटाकर सचमुच बड़ा भारी काम किया है।"

उत्तरने कहा,—"पिता! मेरी क्या मजाल, कि ये सब भयंकर काम कर सकता? मैं तो कौरवोंकी विराट् सेनाको देख, डरकर

लौट आरहा था, कि इसी समय एक देवपुत्र मेरे पास आये। उन्होंने मेरे डरको दूर करके, कुछही देरमें सारे कौरवोंको हरा दिया। हरी हुई गायें उन्हींकी कृपासे मिली हैं।"

विराट्,—"जिन देवपुत्रने हमारा इतना उपकार किया है, वे इस समय कहाँ है ? मैं भी तो उनके दर्शनकर, अपने नेत्रोंको सफल करूँ ?"

उत्तर,—"वे युद्धके समाप्त होतेही अन्तर्द्धान हो गये थे; पर कल या परसों फिर प्रकट होनेका वचन दे गये हैं।"

इन सब बातोंके समाप्त हो जानेपर, अर्जुन, महाराजसे आज्ञा ले, अन्तःपुरमें गये और राजकुमारी उत्तराको, युद्धमें लूटे हुए वस्त्र दिये।

रात होनेपर पाँचों पाण्डवोंने उत्तरके साथ, एकान्तमें बैठकर अपने प्रकट होनेका ढङ्ग निश्चित किया। तीसरे दिन, प्रातःकालही पाँचों भाइयोंने द्रौपदी सहित एक साथ स्नान किया; फिर सुन्दर-सुन्दर राजोचित वस्त्र तथा विविध अलङ्कार धारणकर, वे राज-सभामें जा पहुँचे। राज-सभामें उस समय कोई न था। यह देख, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने, विराट्के सिंहासनपर धर्मराज तथा द्रौपदीको बैठाया। फिर चारों भाई उनके पीछे जा खड़े हुए।

इसी समय वहाँ राजा विराट् आ पहुँचे। अपने सिंहासनपर, कंकको बैठा देख, वे बड़े विस्मित हुए। कुछ क्रोध भी हुआ। किन्तु थोड़ी देरके लिये क्रोध और विस्मयके भावको मनमेंही छिपाकर, उन्होंने, युधिष्ठिरसे पूछा,—"कङ्क! हमने तो तुम्हें चौपड़ खेलनेके लिये अपना सभासद् बनाया था। आज तुम राजोचित वस्त्र पहनकर, हमारे सिंहासनपर क्यों बैठे हो ?"

उस समय अर्जुनने हँसकर कहा,—"महाराज! आप तो एक

ओर, ये, इन्द्रतकके सिंहासनपर बैठ सकते हैं ? क्योंकि ये कुरु वंशमें श्रेष्ठ, महाराजा युधिष्ठिर हैं।"

विराट्ने, आश्चर्यकी सबसे अन्तिम सीमाका उल्लंघन करते हुए, कहा,—"यदि यही राजा युधिष्ठिर हैं, तो इनके चारों भाई तथा महारानी द्रौपदी कहाँ हैं ?"

अर्जुन,—"वे सब आपकेही यहाँ ठहरे हुए हैं। महाराज ! आपका वल्लभ नामका रसोइया, भीमसेनके सिवा और कोई नहीं है। वृहन्नलाका रूप धारण किये हुए मैं अर्जुन, आपके सामनेही खड़ा हूँ। आपका ग्रन्थिक नामका अश्व-निरीक्षक और तन्त्रि-पाल नामका गोपाल—नकुल और सहदेव हैं। जिसके हाथका घिसा हुआ चन्दन आपको खूब पसन्द है, स्त्रियोंकी कंघी-चोटीका काम करके, जिसने सारी अन्तःपुरकी रमणियोंका मन मुग्ध कर लिया है, वह सैरिन्ध्री महारानी द्रौपदी हैं।"

पाण्डवोंका इस प्रकार परिचय पा, राजा, भयके मारे काँपने लगे। वे केवल इतना ही कह सके, कि "सचमुच यह हमारा बड़ा भारी सौभाग्य है।" परन्तु मन-ही-मन भयभीत होनेके कारण, उनके मुँहसे और कोई बात नहीं निकली।

उन्होंने युधिष्ठिरके पास जा, अत्यन्त विनय-पूर्वक अपने अज्ञा-नसे किये हुए दुर्व्यवहारोंके लिये क्षमा माँगी। उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा,—"राजन् ! आप तनिक भी चिन्ता न करें। हमलोगोंके साथ आपने जो कुछ किया है, उसके लिये हम आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे। आपका आश्रय न पाकर, हम अपने अज्ञात-वासके दिन, शायदही इस प्रकार निर्विघ्न व्यतीत कर सकते। विना जाने, हमारा असली परिचय मालूम न होनेके कारण, आपने जो, कभी-कभी, हमारे साथ अयोग्य व्यवहार किया, उसका हमें तनिक भी

दु:ख नहीं है ; क्योंकि, वह पाण्डवोंके प्रति अनुचित हो सकता है; परन्तु स्वामी-सेवकके नाते कभी अनुचित नहीं कहा जा सकता। उस समय हम आपके आश्रित, सेवक, आज्ञा-पालक और सर्वथा अधीन थे। इतनेपर भी आप हमसे क्षमाकी प्रार्थना करते हैं, यह आपका बड़प्पन है। आपके क्षमा माँगनेके पहलेही, हम आपको क्षमा कर चुके हैं; क्योंकि हमारे अज्ञात-वासके साथ-ही-साथ, उस अवसरमें किये हुए समस्त कार्योंकी स्मृतिका भी लोप हो गया है। आज हमने मानो नया जन्म धारण किया है।

उत्तरा-परिणय।

युधिष्ठिरकी ये उदारता-भरी बातें सुन, नेत्रोंमें कृतज्ञताके आँसू भरकर, राजा विराट्ने कहा,—"महाराज! जो हो गया, सो हो गया। अब बीती बातोंको हम लोग भूल जायें। हमारा आपका सम्बन्ध पहले भी था, आज भी है और आगे भी रहेगा; परन्तु इस सम्बन्धके बन्धनको और भी मधुर और दृढ़ करनेके लिये हमारी प्रबल इच्छा है, कि महावीर अर्जुन हमारी कन्या उत्तराका पाणि-ग्रहण करें। आपकी पद-रजके स्पर्शसे हमारा यह राज्य और ये महल-मकान सभी पवित्र हो गये हैं। अब हमारा यह कुल भी आपके साथ वैवाहिक सम्बन्धकर धन्य हो जाये, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है। आशा है, आप हमारे इस तुच्छ अनुरोधको किसी प्रकार न टालेंगे।"

अर्जुनने राजाका यह प्रस्ताव सुनकर कहा,—"महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? नीति कहती है, 'पितृतुल्यो सुशिक्षक:।' अर्थात् शिक्षा देनेवाला बापके बराबर होता है। मैंने उत्तराको सङ्गीत-विद्याकी शिक्षा दी है; अतएव वह मेरी कन्याके समान है। वह भी

मेरे प्रति पिताकी भाँतिही पूज्यभाव रखती है। ऐसी दशामें आपका यह प्रस्ताव धर्म, नीति और समाजके सर्वथा विरुद्ध है। मैं उसके पाणि-ग्रहणका अधिकारी नहीं। यदि आप वैवाहिक-सूत्रमें, उभय वंशोंको, सदाके लिये बाँधना ही चाहते हैं, तो मेरे पुत्र अभिमन्युके साथ कुमारी उत्तराका विवाह कर दीजिये।"

यह बात सबको पसन्द आयी। शुभ लग्न-नक्षत्रमें व्याह होनेकी बात पक्की हुई। विराट्-राज बड़ी धूम-धामके साथ कन्याके विवाहकी तैयारियाँ करने लगे। पाण्डवोंको विवाहकी तैयारी करनेके लिये, उन्होंने, अपना 'उपप्लव्य' नामका नगर दिया। वहाँ जाकर पाण्डवोंने श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजा, जिसने पाण्डवोंके आत्म-प्रकाश और अभिमन्युके भावी विवाहकी उन्हें सूचना दी। श्रीकृष्ण, यह संवाद सुन, हर्षसे पुलकित हो गये और महलोंमें जा, अपनी रानियों और अभिमन्युकी माता, अपनी बहन सुभद्रासे, इस परम आनन्दकी चर्चा करने लगे।

निश्चित समयपर, श्रीकृष्ण, अभिमन्यु, बलराम और सात्यकि आदि, कुटुम्बियोंको साथ लिये हुए, उपप्लव्यनगरमें आ पहुँचे। इधर युधिष्ठिरने द्रुपद, काशिराज, वत्स-नरेश आदि अपने मित्र और सम्बन्धी राजाओंको भी निमन्त्रण देकर बुलवा लिया।

शुभ-घड़ी, शुभ-मुहूर्त्तमें उत्तराका विवाह अर्जुनके पुत्र, सुभद्रा-तनय, अभिमन्युके साथ बड़ी धूम-धामसे हो गया। विराट्ने बहुतेरे गाँव और विपुल धन-रत्न पाण्डवोंको दहेजमें दिये। विवाहके कई दिनों बादतक भी उत्सव-आमोद और उल्लासका स्रोत जारी रहा।

विचार-सभा ।

अभिमन्युका विवाह-कार्य, सकुशल समाप्त हो चुका था; परन्तु अभीतक नेही-नातेदार और निमन्त्रित राज-पुरुषोंने, विराट्-नगरसे प्रस्थान नहीं किया था। विवाह के उपलक्ष्यमें हुए आमोद-प्रमोदमें, उनके दिन बड़े आनन्दके साथ कट रहे थे। इसी बीच एक दिन सभी राजपुरुष राजा विराट्के मन्त्रणा-भवनमें आ इकट्ठे हुए। समस्या यह थी, कि पाण्डवोंको फिरसे राज्य क्योंकर मिले, इसका उपाय सोचना चाहिये।

राजा विराट् और द्रुपदके आसन ग्रहण करनेपर, सब लोग यथा-स्थान जा विराजे। पहले तो कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें होती रहीं; इसके बाद सब लोग श्रीकृष्णकी ओर, इस भावसे, देखने लगे, कि वे कुछ कामकी बातें करना शुरू कर दें, तो अच्छा हो। तदनुसार सबके मनकी बात ताड़कर, श्रीकृष्णने कामकी बातें शुरू कीं। उन्होंने बड़े शान्त भावसे अपना वक्तव्य यों आरम्भ किया,—

"महोदयगण! आपलोगोंको यह अच्छी तरह मालूम है, कि पाण्डवगण बड़ेही धर्मात्मा और सीधे-स्वभावके हैं। इनमें भी महाराजा युधिष्ठिर तो सबसे अधिक धर्म-भीरु और सरलताकी मूर्त्ति हैं। इन्हें दुष्टोंके आचार्य, धूर्त्त-राज शकुनिने, जुएमें हराकर,

इनका सर्वस्व हरणकर, वन-वासी बनाया। जिस समय पाण्डवोंने वन-वासकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय यदि वे चाहते, तो बलपूर्वक कौरवोंको हरा सकते थे; परन्तु धर्म और सत्यके अनुरोधसे इन लोगोंने वन-वनकी धूल-छानना स्वीकार किया और बारह वर्ष वन-वास तथा एक वर्ष अज्ञात-वासका कठिन व्रत पालन किया; पर सचाईकी राह न छोड़ी। क्या आपको मालूम है, इन्होंने वनमें कैसे-कैसे सङ्कट सहे हैं? एक दिन भी ऐसा सङ्कट, ऐसा कष्ट, सहन करना इन, राज-लक्ष्मीकी गोदमें पले हुए, अस्त्र-धारणकी क्षमता रखनेवाले, वीरोंके लिये कितना असम्भव था? इनके इस आचरण-से, इनके, कितने बड़े आत्मसंयम, इन्द्रिय-दमन और महाप्राणताका परिचय मिलता है? इतनी कठोर तपस्याके बाद, न्याय और धर्म हमसे अनुरोध करता है, कि हमें, इनका वह राज्य, इन्हें दिलानेकी चेष्टा करनी चाहिये, जो इन्होंने बलपूर्वक प्राप्त किया था और जिसे कौरवोंने बलसे नहीं, किन्तु छलसे छीन लिया है। ये लोग भाईका अधिकार या उसका उचित स्वत्व हड़पना नहीं चाहते हैं; बल्कि ये चाहते हैं, कि हमारा जो कुछ है, उसे हमें दे दो, तुम्हारा तुम भोग करो। कहिये, इसमें क्या अन्याय है? इससे पाण्डवोंकी नेक-नीयती साफ़ झलकती है; परन्तु दुर्योधनका हृदय कपटसे भरा हुआ है। जुएके खेल और वन-वास आदिके बहुत पहलेसेही वह पाण्डवोंसे जलता, इनके प्राण-नाशका उपाय करता और इनके साथ तरह-तरहके दुष्ट तथा कपट-व्यवहार करता आया है। पाण्डवोंने कभी उसका बुरा नहीं चाहा और उसने इनकी बुराई करनेका कोई अवसर, कभी, हाथसे न जाने दिया! ऐसी दशामें, पाण्डवोंके लिये, हमें क्या करना चाहिये? इनको फिरसे राज-सिंहासन दिलानेके लिये कौनसा मार्ग अधिक सुरक्षित है, जिससे न तो कौरवोंकीही

बुराई हो और न पाण्डवोंकी; वल्कि दोनोंही पक्षोंका भला हो,—इसका आपलोग विचार करें।"

श्रीकृष्णकी ये ओज-भरी, पक्षपातहीन, बातें सुनकर वलदेवजीने कहा,—"भाइयो! आपलोगोंने श्रीकृष्णकी बातें सुन लीं। उन्होंने जो कुछ कहा है, उसमें पक्षपातकी गन्धतक नहीं है। वास्तवमें वे दोनों पक्षोंका हित चाहते हैं। भाई-भाईमें फूटका होना, उन्हें कभी पसन्द नहीं। दूसरे, पाण्डवोंको वैसा कुछ लोभ भी नहीं है। वे केवल आधा राज्य पाकरही सन्तुष्ट हो जायेंगे। इसलिये किसी चतुर दूतको भेजकर, दुर्योधनसे, नम्रता-पूर्वक, यह प्रस्ताव करना चाहिये। मैंने इस लिये नम्रता धारण करनेको कहा है, कि एक तो इस समय वेही सारे राज्यके स्वामी हैं; दूसरे, युधिष्ठिरने अपनी सारी सम्पत्ति आप खोयी है। वे जुएमें न हारते, तो उनका यह हाल क्यों होता? जब उन्हें खेलना नहीं आता था, तब वे क्यों उस छँटे बदमाशके साथ खेलने गये थे? इसलिये, इस विषयमें, जितना अपराध स्वयं युधिष्ठिरका है, उतना दुर्योधनका नहीं है। अतएव मेरी रायसे तो कोई चतुर और बातें बनानेमें कुशल दूत, दुर्योधनके पास, सन्धिका प्रस्ताव देकर, भेजना चाहिये।"

वलदेवजीकी बातें सुन, सात्यकिने क्रुद्ध होकर कहा,—"मुझे आपका स्वभाव मालूम है, इसीसे आपकी इन ऊटपटाँग बातोंके लिये, आपको दोष नहीं देता; परन्तु मुझे आश्चर्य इस बातका है, कि इतने वीरगण यहाँ बैठे हैं; पर आपकी बातोंसे किसीको, तनिक भी, क्रोध नहीं आया! आप महाराजा युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा, सत्यवादी, साधु और मनुष्य-रूपी देवताके ऊपर आक्षेप करके, अब तक बोलते चले जाते हैं, इसीसे मुझे इन लोगोंपर क्रोध होता है। यदि युधिष्ठिर शकुनिको अपने घर बुलाते और हार जाते, तब तो

उनकी हार ठीक थी ; पर वहाँ तो मामलाही और था। चार लोग अपने घरमें थे, चार-पाँच दुष्ट मनुष्योंकी गुट्ट थी—जो दाँव युधिष्ठिर जीतते भी थे, उसे भी वे लोग, मिल-जुलकर, हारा हुआ बतला देते थे। अपने सीधे स्वभावके कारण, युधिष्ठिर उनका छल न समझे और दाँव-पर-दाँव लगाते चले गये। अन्तमें तेरह वर्ष कठोर वन-वासकी प्रतिज्ञाकर, वे अपने शरीरके आप स्वामी बन सके, नहीं तो वे देह भी हार चुके थे। इस समय छलद्वारा छीने हुए अपने राज्यको पानेके लिये वे क्या उन्हीं दुष्टोंके पास सिर झुकाने जायँगे ? वे आधा राज्य माँगते हैं, सारा नहीं। उनके इस धर्मानुमोदित प्रस्तावको कौन नहीं मानेगा ? यदि दुर्योधन, सीधी तरह, नहीं मानेगा, तो हमलोग उससे बलपूर्वक मनवायेंगे। हम-आपसमें मिले रहें, पाण्डवोंकी पीठपर हरदम हमारा हाथ रहे, तो हमारे सामने कौन माईका लाल ठहर सकता है ?"

सात्यकिके वीर-वचन सुन महाराजा द्रुपदने कहा,—"आपने जो कुछ कहा, वह अक्षर-अक्षर ठीक है। जिसकी रगोंमें एक बूँद भी क्षत्रिय-रक्त होगा, वह अवश्यही आपकी बातका अनुमोदन करेगा। आधे राज्यपर पाण्डवोंका अधिकार है, इसमें तो कुछ कहनाही नहीं है ; पर हाथमें आयी हुई चीज़को सीधी तरहसे, कौन लौटाता है ? दुर्योधन पाण्डवोंका हिस्सा कभी न देगा। अन्धे और बूढ़े राजाके मनमें अपने पुत्रकी इतनी ममता है, कि वे इसके कारण अपनी, हियेकी आँख भी फोड़ चुके हैं। धर्म-अधर्मका विचार भी उनके मनसे उठ गया है। भीष्म, द्रोण आदि भी उसके दिये हुए टुकड़ोंके कारण उसका कभी विरोध न करेंगे—यह मानी हुई बात है। रह गये कर्ण और शकुनि—सो वे तो उसके पूरे मुसाहिब हैं। केवल हाँ-में-हाँ मिलानाही उनका काम है। इसलिये कोरी विनय

और नम्रतासे यहाँ काम न चलेगा। इससे तो वह दुष्ट और भी अकड़ जायेगा और हमें निरा नामर्द समझ बैठेगा। इसलिये मेरी राय तो यह है, कि पहले अन्यान्य राजाओंके पास दूत भेजकर, अपने सम्बन्धमें, उनकी राय मालूम करना, उनसे समय पड़नेपर सहायता देनेका वचन लेना और अपनी शक्ति बढ़ानाही सबसे अच्छा उपाय है! दुर्योधनके गुप्तचर उसे इन सब बातोंका पता देंगेंही; अतएव, वह भी जहाँ-तहाँ अपने दूत भेजेगा; पर जिसका आदमी पहले पहुँचेगा, उसीका काम बनेगा।"

श्रीकृष्णने कहा,—"द्रुपद-राजकी राय मुझे दिलसे पसन्द है। अतएव इसका सारा भार इन्हींको दे देना चाहिये। इधर सन्धिकी बातें चलती रहें; उधर अपना बल-संग्रह होता रहे। पाण्डवोंको चाहिये, कि वे दुर्योधनको अपना प्रस्ताव सुनायें; यदि वह न माने, तो और-और मित्रोंसे सहायता लेकर फिर हमलोगोंको भी संवाद दें, जिसमें हम, ठीक समयपर आकर, उनकी सहायता कर सकें। अब विवाह होही चुका है, आनन्द-उत्सव भी बहुत होचुके; इसलिये अब हमलोगोंको अपने-अपने घर जाना चाहिये। राजा द्रुपद सब कामोंकी, पूरी-पूरी, सम्हाल रखेंगे। इनसे बढ़कर इस कामके लिये कोई भी योग्य आदमी मुझे दिखाई नहीं देता।"

रण-निमन्त्रण।

श्रीकृष्णकी बातका सबने अनुमोदन किया। राजा विराट्ने, यथायोग्य, सब आये हुए लोगोंका आदर-सत्कारकर, उन्हें विदा किया। इसके बाद राजा द्रुपदकी सम्मतिके अनुसार वे युधिष्ठिरकी सहायताके लिये युद्धकी तैयारी करने लगे। इधर द्रुपदने सब बातें समझा-बुझाकर, अपने चतुर पुरोहितको दूत बनाकर

दुर्योधनके पास भेजा। पुरोहितके हस्तिनापुर चले जानेपर चारों ओर, मित्र-राज्योंमें, दूत भेजे गये। दुर्योधनने भी जहाँ-तहाँ अपने दूत भेजे और अपने हित-मित्रों तथा नेही-नातेदारोंकी सहायता प्राप्त करनेके लिये चेष्टा करनी आरम्भ की। अब यह तै होगया, कि समझौता न होनेसे युद्ध अनिवार्य है।

सब जगह तो दूत भेजे गये ; पर श्रीकृष्णके पास दूत भेजना अर्जुनको अच्छा न लगा। उनके पास वे स्वयं रण-निमन्त्रण देनेके लिये चले। यह संवाद पा, दुर्योधन भी द्वारका चला।

संयोगवश दोनों एकही साथ द्वारका पहुँचे और दोनोंने एकही समय कृष्णके महलोंमें प्रवेश किया। उस समय श्रीकृष्ण सवेरेकी मीठी नींदका आनन्द ले रहे थे। दुर्योधन उनकी शय्याके पास पहुँच, सिरहानेकी ओर रखे हुए एक सिंहासनपर बैठ रहा। पीछे-पीछे अर्जुन भी पहुँचे। बिना कुछ कहे-सुने वे, कृष्णके पैताने-की ओर जा बैठे और उनके जागनेकी राह देखने लगे।

जब मनुष्य सोकर उठता है, तब स्वभावतः पैतानेकीही ओर झुकता है। श्रीकृष्णने नींदसे उठनेपर सिरहानेकी ओर बैठे हुए दुर्योधनको न देखा। वे उठतेही अर्जुनको देख, उनसे कुशल-प्रश्न करने लगे। फिर दुर्योधनको देख, बोले,—"अहा ! आप भी आये हुए हैं ? कहिये, आपलोगोंने यहाँतक आनेका कष्ट किसलिये उठाया है ?"

दुर्योधनने हँसकर कहा,—"मेरा आना आपकी सहायता प्राप्त करनेके लिये हुआ है। क्योंकि, आपको मालूम है, कि पाण्डवों और कौरवोंकी लड़ाईके लिये तैयारियाँ होरही हैं। मैं पहले आया हूँ ; अतएव, न्यायतः, आपको मेरी सहायता करनी पड़ेगी।"

दुर्योधनकी बात सुन, श्रीकृष्णजी बोले,—"महाराज ! आप जब यह कहते हैं, कि मैं पहले आया हूँ, तब आपकी बात मैं कैसे
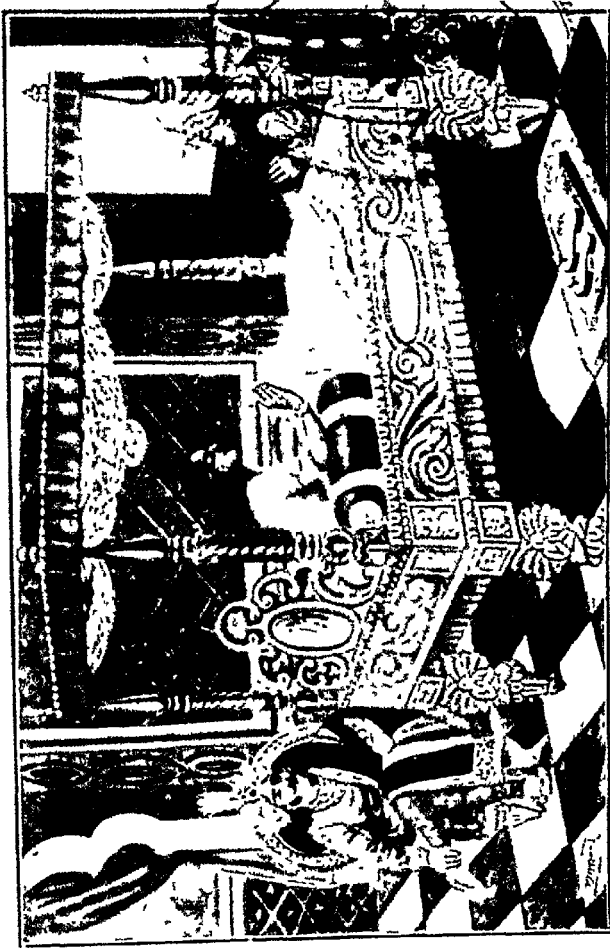
रण-निमन्त्रण ।

"कहिये, आपलोगोंने यहाँतक आनेका कष्ट किसलिये उठाया है ?" . [पृष्ठ—१५८]

काट सकता हूँ ? परन्तु मैंने तो पहले अर्जुनकोही देखा है। अतएव आप यदि पहले-पीछेका झगड़ा लगायेंगे, तो ठीक न होगा। जैसे आप मेरे मित्र और सम्बन्धी हैं, वैसेही पाण्डव भी हैं। इसलिये मैं तो दोनोंही पक्षोंकी सहायता करूँगा। मैं अपनी सहायताको दो भागोंमें बाँट देता हूँ—पहलेमें मेरी एक अर्बुद नारायणी सेना और दूसरेमें अकेला मैं हूँ: पर मैं न तो शस्त्र ग्रहण करूँगा और न लड़ूँगाही। अर्जुन छोटे हैं; इसलिये मैं पहले अर्जुनसेही पूछता हूँ, कि ये क्या चाहते हैं ?"

यह सुन अर्जुनने कहा,—"महाराज! मुझे सेनाकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं केवल आपको चाहता हूँ।"

अब क्या था,दुर्योधनको तो मानों मुँह-माँगी मुराद मिल गयी। सोचा,—"चलो, अच्छाही हुआ, जो अर्जुनने सेना नहीं माँग ली। अकेले श्रीकृष्णको लेकर मैं क्या करता ? सो भी ऐसी अवस्थामें, जब, कि वे हथियारही न उठायेंगे ?" उसने कहा,—"अर्जुनने तो अपनी इच्छाके अनुसार आपको माँगही लिया है, अब आप मुझे नारायणी सेना देनेका वचन दीजिये।" कृष्णने उसे सेना देनेका वचन दे दिया। दोनोंने अपने-अपने मनमें सोचा, कि 'मैंही लाभमें रहा'।

इसके बाद दुर्योधन बलरामके पास पहुँचा; पर उन्होंने किसी ओरसे युद्धमें भाग लेना एकदम अस्वीकार कर दिया।

कृष्णने स्वीकार किया, कि युद्धके समय वेही अर्जुनके सारथि बनेंगे। यह तै हो जानेपर दूसरेही दिन भोज,वृष्णि,अन्धक और दाशार्ह आदिके वीर पुरुषोंको साथ लेकर कृष्णार्जुन युधिष्ठिरके पास चले।

मद्र-देशके राजा, पाण्डवोंके मामा तथा माद्रीके सहोदर भाई, शल्यने, जब दूतके मुँहसे सुना, कि कौरवों और पाण्डवोंमें युद्ध होनेकी तैयारी हो रही है, तब उन्होंने बड़ी भारी सेना एकत्र की

और वे दल-बलके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये चल पड़े। दुर्योधनने, चतुराईसे, उनके लिये, रास्तेमें, सब प्रकारकी सुविधाके सामान कर दिये। उनके विश्राम करनेके लिये स्थान-स्थानपर बहुतसे प्रमोद-भवन बनवाये गये; जिनमें खाने, पीने और मन बहलानेकी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत कर दी गयी। शल्यराज आनन्दसे, इन सुविधाओंका लाभ उठाते हुए, अग्रसर होने लगे। उन्होंने समझा, कि यह सारा प्रबन्ध महाराजा युधिष्ठिरकीही ओरसे किया गया है। एक बार एक बहुतही अच्छे सजे-सजाये भवनकी बनावट और सजावटपर प्रसन्न होकर, उन्होंने नौकरोंसे कहा,—"राजा युधिष्ठिरके जिस कारीगरने यह भवन बनाया है, उसे मेरे पास ले आओ। मैं उसकी कारीगरीको देखकर, बहुतही प्रसन्न हुआ हूँ। यदि महाराजा युधिष्ठिरको कुछ आपत्ति न होगी, तो मैं उसे बहुत कुछ पुरस्कार दूँगा।"

नौकर, यह बात सुनकर, बड़े आश्चर्यमें पड़े। उन्होंने जाकर यह हाल दुर्योधनसे कह सुनाया। दुर्योधन उस समय वहीं मौजूद था। अतः उसने शल्यके पास पहुँचकर कहा,—"मामा! मेरे लिये क्या आज्ञा है? आपने किस लिये मुझे याद किया है?"

अब तो शल्य समझ गये, कि यह प्रबन्ध दुर्योधननेही किया है। अतएव, वे प्रसन्न होकर बोले,—"वत्स! मैं तुम्हारे इस आदर-सत्कारसे बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। बोलो, क्या माँगते हो?"

दुर्योधनने कहा,—"मामा! यदि आप सचमुच प्रसन्न हुए हैं, तो यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि आप युद्धके समय मेरी सेनाका सेनापतित्व स्वीकार करें।"

अब शल्य क्या करते? प्रतिज्ञा कर चुके थे; अतएव, उन्हें दुर्योधनकी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद वे युधिष्ठिरके

पास पहुँचे। पाण्डवोंने उनकी बड़ी आव-भगत की। जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब शल्यने अपनी यात्रा, रास्तेके विश्राम-विनोद, दुर्योधनके कौशल और अपने वरदानकी बातें कह सुनायीं। युधिष्ठिरने बड़े ध्यानसे उनकी बातें सुनीं; अनन्तर कहा,—"मामा! दुर्योधनने आपकी जो आदर-अभ्यर्थना की है, उसके बदलेमें आपको उसका पक्ष लेना अनुचित नहीं; परन्तु दुर्योधनने छल करके हमें आपकी सहायतासे वञ्चित किया है, इसलिये अनुचित होनेपर भी आपको मेरी एक बात माननी पड़ेगी। यदि युद्धमें, किसी समय, कर्ण सेनापति बनाये जायें, तो आप उनके सारथि बनकर, उनका उत्साह भङ्ग करनेकी चेष्टा करें। जिससे अर्जुन उन्हें पराजित कर सकें।"

शल्यने युधिष्ठिरकी यह बात मान ली और सैन्य-सामन्तोंके साथ दुर्योधनके पास चले आये।

इधर पाण्डवोंके पक्षमें, बड़ी-बड़ी सेनाएँ लिये हुए, सात्यकि, चेदिराज, शिशुपाल-पुत्र धृष्टकेतु, जरासन्ध-पुत्र सहदेव, महावीर पांड्य, द्रुपद, महाराजा विराट् और अन्यान्य कितनेही राजा-महाराजा आ उपस्थित हुए। इनके सैनिकोंकी संख्या सात अक्षौहिणी थी। विराट्-राज्यके उपप्लव्य नगरमें सैनिकोंके लिये बड़े-बड़े डेरे डाल दिये गये। अब पाण्डव, इन सारे सहायक राजाओं और सेनाओं-को लिये हुए, आनन्दके साथ उस अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे, जब कि इनके कार्यक्षेत्रमें पदार्पण करनेकी आवश्यकता होगी।

उधर, दुर्योधनकी ओर, ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ तैयार हुईं। भगदत्त, भूरिश्रवा, भोजराज, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ और अन्यान्य राजालोग, कौरवोंकी ओरसे लड़नेके लिये, अपने समस्त सैन्य-बलके साथ-साथ आ पहुँचे थे।

सन्धिका प्रस्ताव।

उद्योग-पर्वके इसी अवसरपर, द्रुपदके भेजे हुए उनके पुरोहित, राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचे। सबने उनका उचित आदर किया। अनन्तर आसन ग्रहण कर, उन्होंने, पाण्डवोंका पक्ष पुष्ट करते हुए, उनका सन्धि-प्रस्ताव, सभामें बैठे हुए बड़े-बड़े कौरवों और राज-पुरुषोंके सम्मुख उपस्थित किया।

भीष्मपितामहने उनके प्रस्तावकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि, सचमुच तेरह वर्ष वन-वास कर चुकनेपर पाण्डवोंको अपना पहला राज्य वापस मिल जाना चाहिये। प्रसङ्गवश पुरोहितजीने अर्जुनकी वीरताको भी अच्छे शब्दोंमें सराहा। यह सुन कर्ण जल-भुन गये। उन्होंने क्रोधके साथ कहा,—"विप्रजी! आपका ख़याल किधर है? क्या पाण्डवोंने, मत्स्य और पाञ्चालोंके पीठ ठोंकनेपर, गर्वसे मत्त हो, हमें डरानेके लिये आपको भेजा है? हम पाण्डवों-को एक अङ्गुल भी भूमि न देंगे! यदि युधिष्ठिर 'धर्म-धर्म' चिल्लाते हैं, तो अभी बारह वर्ष और वनकी धूल फाँकें; क्योंकि वे अज्ञात-वासकी निश्चित अवधिके पहलेही पहचान लिये गये हैं। इस बार वन-वास करके जब वे लौटेंगे, तब महाराजा दुर्योधन उन्हें अवश्य शरण देंगे। और यदि वे हमसे युद्ध करनेकी ठानेंगे, तो उन्हें सिवा पछतानेके और कुछ भी लाभ न होगा।"

कर्णकी ये बातें भीष्मको बहुत बुरी लगीं। उन्होंने बिगड़-कर कहा,—"कर्ण! क्यों झूठ-मूठ अपनी किरकिरी कराते हो? इन बातोंमें क्या धरा है? अर्जुनने हालमेंही हमें कैसा पराजित किया है, क्या तुम उसे भूल गये? अभी समय है, मेल-मिलाप करलो, नहीं तो लड़ाईके मैदानमें निश्चयही तुम्हारी दुर्गति होगी।"

धृतराष्ट्रने भीष्मको विगड़ते देख, उन्हें शान्त करनेके लिये, कर्ण-को डाँटना शुरू किया। अन्तमें बोले,—"पितामहकी आज्ञा और सम्मतिके अनुसार चलनेमेंही हमारी और पाण्डवोंकी भलाई है। मैं उनके कहे अनुसार अवश्य सञ्जयको, पाण्डवोंके पास, सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिये भेजूँगा।"

सञ्जय-सन्देश।

कर्ण कुछ बोल न सके—मन मारकर रह गये। धृतराष्ट्रने यथायोग्य आदरकर पुरोहितको विदा किया और सञ्जयसे कहा,—"तुम इसी समय उपप्लव्य नगरमें, पाण्डवोंके पास, चले जाओ और उनसे मिलकर ऐसी सन्धिका प्रस्ताव करो, जिसमें क्षत्रिय-जातिके ऊपर, शीघ्रही, जो भयानक विपद् आनेवाली है, वह टल जाये।"

राजाका अभिप्राय समझ, उनकी आज्ञा ले, सञ्जय, पाण्डवोंके पास पहुँचे और युधिष्ठिरके निकट जा, उन्हें सविनय प्रणामकर कहने लगे,—"हे धर्मराज! बहुत दिनोंके बाद, आज फिर हम आपको अच्छी अवस्थामें पाते हैं। इस समय आपके वे-कष्ट दूर हो गये हैं, जो तेरह वर्षतक, वन-वासमें, आपको उठाने पड़े थे। इस समय बड़े-बड़े राजा-महाराजा, आपके मित्र, सहायक और सम्बन्धी बन-कर, आपका पक्षावलम्बन करनेके लिये, आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वृद्ध महाराजा धृतराष्ट्रने आपलोगोंका कुशल-समाचार पूछा है। आशा है, कि आप सब लोग सानन्द होंगे।"

युधिष्ठिरने कहा,—"हे सञ्जय! बूढ़े महाराजा धृतराष्ट्रने हमें याद किया है; इससे हम बड़े सुखी हुए हैं। वे लोग आनन्दसे तो हैं? वृद्ध पितामह भी कुशल-पूर्वक हैं न? उनकी हमलोगोंपर बड़ी कृपा रहती थी; कहिये, वह अब भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई

नहीं ? गुरुवर द्रोणाचार्य और कृपाचार्यकी दया हमपर वैसीही है या कुछ कम हो गयी ? ये गुरुजन दुर्योधनको लड़नेके लिये तो नहीं उभारते न ? वे उन्हें सन्धि करनेकीही सलाह देते हैं न ? कहिये, आपका यहाँ आना किस निमित्त हुआ ? हमें आपके आगमनका कारण जाननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है।"

युधिष्ठिर एकही साँसमें इतनी बातें कह गये। सञ्जय चुपचाप सब सुनते रहे। जब उनका बोलना बन्द हो गया, तब सञ्जय कहने लगे,—"हे धर्म्मराज ! आप जिन-जिनका कुशल-संवाद जानना चाहते हैं, परमात्माकी कृपासे, वे सभी अच्छी तरह हैं। महाराजा धृतराष्ट्रने जो प्रस्ताव आपकी सेवामें उपस्थित करनेके लिये मुझे भेजा है, उसे मैं आपकी सेवामें उपस्थित करता हूँ—ज़रा सावधान होकर सुनिये। उन्होंने कहा है 'युद्ध करना कभी अच्छा न होगा, उसमें हज़ारों-लाखों निर्दोष प्राणियोंके प्राण व्यर्थ जायेंगे। प्रजाको कष्ट होगा। आजतक तुमलोग धर्मानुसार चलते आये हो। अब, इस समय, निष्ठुर बननेका काम नहीं है। मैं तुमलोगोंका बड़ा हूँ। मेरी बात तुम्हें अवश्य माननी चाहिये। तुच्छ सांसारिक वैभवके लिये तुमलोग युद्ध जैसा क्रूर कर्म कभी न करोगे, इसकी मुझे पूरी-पूरी आशा है।"

अन्धराजके इस उड़ते हुए सन्देशको सुनकर, भीमसेन अपने क्रोधको न रोक सके। उन्होंने कड़ककर कहा,—"सञ्जय ! यह क्या ? यह कैसा सन्देश है ? हमीं मानों राज्यके लिये, पाप-साधक, क्रूर-कृत्य करने जा रहे हैं और कौरव मानों पूरे उदासीन हैं ! भला, यह हमने कब कहा, कि हम शान्ति नहीं, युद्ध चाहते हैं ?"

भीमको क्रोधसे अधीर होते देख, युधिष्ठिरने उन्हें शान्त किया और वे स्वयं इस प्रकार कहने लगे,—

"वृद्ध संञ्जय! महाराजा धृतराष्ट्रका यह कोरा भ्रम है, कि हम व्यर्थही जीव-नाश करनेके लिये, युद्ध करनेको उत्सुक हैं; परन्तु हाँ, एक प्रकारसे उत्सुक भी हैं। वह भी तब, जब कि हमारा राज्य, न्यायतः हमें न मिलेगा। यदि बूढ़े महाराजकी यही इच्छा हो, कि हम न तो युद्ध करें और न अपना राज्य माँगे, तो यह भी हमें स्वीकार है। यदि हमें केवल इन्द्र-प्रस्थही देदिया जाये, तो हम उसीसे अपना निर्वाह करलेंगे। हमारा इतने परिश्रमसे बसाया और बनाया हुआ खाण्डवप्रस्थ भी हम दुर्योधनकोही दिये देते हैं।"

सञ्जयने कहा,—"राजन्! कुरु-कुलकी रक्षा, आपकेही हाथ है। यदि एक पापी मनुष्य सारे कुटुम्बको क्लेश पहुँचाता हो, तो उस कुटुम्ब-को चाहिये, कि वह अपना निर्वाह अन्यत्र करले। राज्यके लिये युद्ध करके, कुटुम्बका नाश करनेकी अपेक्षा भीख माँगकर उदर-पोषण करना कहीं अच्छा है। इसी नीतिके अनुसार आपको कौरवोंसे सन्धि कर लेनी चाहिये।"

युधिष्ठिर बोले,—"सञ्जय! आपकी यह बात, नीति और धर्मके विरुद्ध है। क्या आप भूल गये, कि हम कौन हैं? भीख माँगना असमर्थ और अपाहिजोंका काम है—क्षत्रियोंका नहीं। क्षत्रियोंका धर्म, पराक्रमसे राज्य प्राप्त करना, न्यायानुसार प्रजा-पालन करना और युद्धमें भुज-बल प्रदर्शित करते हुए, वीर-गति प्राप्त करनाही है। हम तो और कुछ नहीं, केवल अपनीही सम्पत्ति वापस माँग रहे हैं। जितने दुःख-कष्ट हमारे भाग्यमें थे, हम भोग चुके। अब हम, पूर्वजोंके राज्यकी रक्षाकर, धर्म-पालन करनेके लिये प्रस्तुत हैं। इतने-पर भी आप हमेंही, कौरव-कुलका नाश न करनेका, उपदेश दे रहे हैं! यह नाशको रोकनेकी चेष्टा है या निकट बुलानेकी? अस्तु; मैं श्री-कृष्णको पञ्च मानता हूँ। वे जो कुछ कहेंगे, हमलोग वही करेंगे।"

यह सुन श्रीकृष्ण बोले,—"सञ्जय! निश्चय जानना, कि मेरे लिये कौरव और पाण्डव एकसे हैं। मैं सच कहता हूँ, मेरी यह हार्दिक इच्छा रहती है, कि इन दोनों पक्षोंमें मेल रहे। परन्तु दुर्योधनकी जो चाल है, वह क्या कभी मेल होने दे सकती है? तुम तो वृद्ध हो, सब कुछ देखते आये हो और देखही रहे हो। तुम पाण्डवोंको धर्मका उपदेश देने आये हो, पर क्या कोई भी ऐसा है, जो पाण्डवोंको अधर्मी बतला सके? अधर्म इन्हें छूतक नहीं गया। पाण्डवोंने अबतक जो कुछ किया है, वह सब धर्मके अनुकूल किया है। तिसपर भी तुम इन्हेंही समझाने चले हो; यह तुम्हें शोभा नहीं देता। दुर्योधनने जिस प्रकार अधर्मसे इनका राज्य छीना है, वह कौन नहीं जानता? अब यदि पाण्डवलोग, एक अधर्मीसे, अपना सनातन पुण्य-राज्य वापस लेना चाहते हैं, तो इसमें कौनसा पाप है? दुर्योधनको अभी घरके बाहरकी हवा नहीं लगी है। जिस समय वह युद्धस्थलका स्वरूप देखेगा; उस समय उसे मालूम होगा, कि अन्याय-पूर्वक दूसरोंका राज्य हरणकर, अत्याचार-पर-अत्याचार-करते जानेका क्या फल होता है? पाण्डवोंने जितनी विपत्तियाँ झेली हैं, वे क्या कम हैं? फिर, गुरुजनोंसे भरी हुई सभामें, द्रौपदीका जो अपमान किया गया था, उसे क्या वे सहजही भूल जायेंगे? मुझे तो कौरवोंको मारे बिना पाण्डवोंका कल्याण होता नहीं दीखता। यदि उनका संहार किये बिनाही पाण्डवोंका काम बन जाये, तो इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती; परन्तु वह बात धृतराष्ट्र और उनके पुत्रोंके ऊपर निर्भर है। वे जैसा चाहेंगे, वैसाही होगा। मेल-मिलाप करनेके लिये, पाण्डवलोग हरदम तैयार हैं। तुम जाकर दुर्योधनकी मति-गति ठीक करो। मैं भी शान्ति-स्थापनकी अन्तिम चेष्टा करनेके लिये हस्तिनापुर आता हूँ।"

यह सुन सञ्जयने, सबको यथायोग्य अभिवादनकर, विदा माँगी। उस समय धर्मराजने कहा,—"सञ्जय! तुम समस्त कौरवोंको हमारा प्रणाम निवेदनकर, कहना, कि युधिष्ठिरकी यह इच्छा कदापि नहीं है, कि युद्ध हो। यदि आपलोग हमें एकबारगीही कुछ न देना चाहें, तो भी पाँच भाइयोंके उदर-पोषण और संसार-यात्रा चलानेके लिये पाँचही गाँव दे दें। हमलोग इसीसे सन्तुष्ट हो जायेंगे। हमारी माँग कुछ अन्याय-पूर्ण नहीं है। हाँ, तुम दुर्योधनसे इतना अवश्य कह देना, कि उसके मनमें जो लोभ समाया हुआ है, वह उसकाही नहीं, वरन् सारे कुरु-कुलका नाश कर देगा। या तो वह इन्द्रप्रस्थ हमें दे दे, नहीं तो युद्धके लिये तैयार रहे। हमारे बूढ़े ताऊसे कहना, कि जिस राज्यको आपने बड़ी प्रसन्नतासे भतीजोंके हवाले किया था, उसीसे अब उन्हें वञ्चित क्यों कर रहे हैं? राज्यका दावा हमलोग प्रसन्नतासे छोड़ सकते हैं, हमें दुनियाके वैभवकी आवश्यकता नहीं। तेरह वर्ष कठिन वन-वास करके, हमने, सरल और आडम्बर-शून्य जीवनके आनन्द और महत्वको भली भाँति हृदयङ्गम कर लिया है। अतएव, हमें पाँच गाँव देकर, मामला तै कर लो। हमारी यही अन्तिम बात है, इससे अधिक नरमी शायद हो नहीं सकती। इसपर भी यदि दुर्योधन राज़ी न हो, तो समझना होगा, कि कुरु-कुलपर दैवी कोप है।"

इस प्रकार युधिष्ठिरके कहनेके पश्चात्, उनकी आज्ञा ले और और उन्हें प्रणाम कर, सञ्जय, हस्तिनापुर लौट गये।

भीष्मका-भविष्य वाद।

साँझ होते-होते, सञ्जय राजद्वारपर आ उपस्थित हुए। सञ्जयके आनेका समाचार पा, धृतराष्ट्रने उन्हें शीघ्र अपने पास बुला लिया।

सञ्जयने अन्धराजके पास जाकर, युधिष्ठिरके उत्तरको संक्षेपमें सुनाते हुए, कहा,—"महाराज ! मैं बेतरह रथ दौड़ाता हुआ आया हूँ, इससे बहुत थक गया हूँ। आज्ञा हो, तो इस समय मैं अपने घर जाऊँ। कल प्रात:काल सभामें, पाण्डवोंने जो कुछ कहा है, उसे मैं विस्तार-पूर्वक सुनाऊँगा।"

धृतराष्ट्रने, इच्छा न होते हुए भी, सञ्जयको विदा दे दी; किन्तु उनका मन उस समय अत्यन्त अशान्त हो रहा था। यहाँतक, कि चेष्टा करनेपर भी, उन्हें नींद न आयी। आखिर उन्होंने द्वारपाल-द्वारा महात्मा विदुरको बुलवाया और अपने चित्तकी अशान्तिकी बात कह, उन्हें धर्म-कथाएँ सुनानेकी आज्ञा दी।

विदुरजी बड़े धार्मिक थे। उन्होंने, आज्ञा पातेही, अन्धराजको रातभर धर्म-कथाएँ सुनायीं और अन्तमें कहा,—"महाराज ! धर्मात्मा व्यक्तिको कुचिन्ताएँ कभी नहीं सता सकतीं। आपने और आपके पुत्रोंने पाण्डवोंके साथ बड़ा अन्याय किया है। यदि आप अब भी कुरु-कुलका भला चाहते हैं, तो धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लीजिये।"

दूसरे दिन, प्रात:काल होनेपर, सञ्जयकी बातें सुननेके लिये, सभा एकत्रित हुई। सञ्जयने आतेही कहा,—"महाराज तथा उपस्थित सज्जनो ! मैं पाण्डवोंसे मिल आया। उनकी धर्म-प्राणता, सत्यवादिता, कष्ट-सहिष्णुता और विचार-बुद्धिको देखकर, मैं बहुतही मुग्ध हुआ हूँ। युधिष्ठिरने कहा है, कि मैं स्वयं नहीं चाहता, कि भाई-भाइयोंमें युद्ध हो। यदि हमें हमारा समस्त राज्य नहीं मिले, तो केवल निर्वाहके लिये पाँच गाँवही दे दिये जायें, इतनेपरही हम कौरवोंसे बड़ी प्रसन्नताके साथ, सन्धि कर लेंगे। यदि इसपर भी कौरव-पक्ष राज़ी न हो, तो युद्ध अनिवार्य है। पाण्डवोंको अर्जुन

और भीमके भुज-बलका बड़ा भरोसा है। वास्तवमें वे इतने बली और रण-पण्डित हैं, कि मुझे तो कौरव-पक्षमें उनके जोड़का एक भी वीर दिखाई नहीं देता।"

सञ्जयकी बातें सुन, महामति भीष्मने, अर्जुनकी असाधारण वीरता और रण-निपुणताका वर्णन किया। सञ्जयके वाक्योंका समर्थन कर, कौरवोंको, युद्धका विचार त्याग, प्रसन्नता-पूर्वक पाण्डवोंका राज्य लौटा देनेके लिये, तरह-तरहके युक्तिपूर्ण उपदेश दिये।

भीष्मकी बातें सुन कर्ण मानों जल उठे। उन्होंने कहा,—"प्रिय सभासद्‌गण! मैं प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूँ, कि मैं अकेलाही युद्धक्षेत्रमें पाँचों पाण्डवोंको मार गिराऊँगा। भीष्मजी उन्हें कितना भी साधु-स्वभाव क्यों न कहें; पर वे हमारे पुराने बैरी हैं, उनके साथ कौरवोंकी सन्धि कदापि नहीं हो सकती।"

भीष्म,—"सूत-पुत्र! तुम जो बड़े घमण्डमें आकर अपनी शेखी बघार रहे हो, वह एकदम थोथी है। सिर्फ शेखी मारनेसेही मैं तुम्हें वीर नहीं समझ सकता। शूरलोग अपनी वीरताका बखान अपने आप कभी नहीं करते, वरन् समरमेंही अपने मनोभावोंको प्रत्यक्ष करके दिखाते हैं। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है, कि पाण्डवोंकी शक्तिका सोलहवाँ हिस्सा भी तुममें नहीं है। तुम्हें व्यर्थकी अकड़ दिखाते लज्जा नहीं आती? सज्जनो! यह दुरात्मा, दुर्योधनको बहकानेके लियेही, पाण्डवोंकी सदा निन्दा किया करता है। पाण्डवोंने कैसे-कैसे कठिन काम सहजमेंही कर डाले हैं; क्या उनमेंसे एक भी कर्णका किया हो सकता था? तो भी यह बेहया कहता है, कि 'मैं अकेलाही पाण्डवोंको मार गिराऊँगा!' कर्ण! मैं यह पूछता हूँ, कि जब विराट्-नगरमें अकेले अर्जुनने, तुम जैसे बलीके रहते हुए भी, तुम्हारे प्यारे भाई विकर्णको मार डाला था, तब तुम्हारी

यह वीरता कहाँ चली गयी थी ? जब समस्त कौरव-वीरोंको अचेत कर, अर्जुनने, उनके कपड़े-लत्ते उतरवा लिये थे, तब तुम कहाँ थे ? इस समय तो तुम मतवाले साँड़की तरह रम्भा रहे हो; परन्तु जब पाण्डवोंको अपना वैभव दिखानेके लिये, काम्यक वनमें गये हुए कौरवोंकी, गन्धर्वोंने दुर्दशा की थी, तब तुम्हारे रहते हुए भी उनकी रक्षा पाण्डवोंकोही क्यों करनी पड़ी ? मुझे यह भली भाँति मालूम है, कि जितने उपद्रव कौरवोंकी ओरसे होते हैं, उन सबकी जड़ तुम्हीं हो; पर तुम्हारे भरोसेपर युद्ध ठान लेनेसे, कौरवोंकी अवश्य हार होगी।"

भीष्मदेवके चुप हो जानेपर कृप, द्रोण और विदुरने भी, सन्धि स्थापन करनेके लिये, अन्धराजसे अनुरोध किया। अनन्तर, सायङ्काल हो जानेके कारण, सभा विसर्जित हुई।

रातको सोनेके समय, महाराजा धृतराष्ट्रने, अपने शयन-मन्दिरमें, दुर्योधनको बुलाकर कहा,—"पुत्र ! मेरा कहना मानो, पाण्डवोंको आधा राज्य देकर आपसमें मेल कर लो।"

यह सुन दुर्योधनने कहा,—"पिताजी ! क्या आप पाण्डवोंसे डरते हैं ? बड़े आश्चर्यकी बात है, कि आप कर्ण, भीष्म, द्रोण, कृप और अश्वत्थामा जैसे वीर-पुङ्गवोंके, अपने पक्षमें, होते हुए भी, वनमें कन्द-मूल-फल खा-खाकर पेट पालनेवाले दुर्बल पाण्डवोंसे दबे जाते हैं ! क्या आपको अपनी शक्तिपर अविश्वास है ?"

धृतराष्ट्र,—"बेटा ! तुम्हें जिनका भरोसा है, वेही युद्ध न करनेकी सलाह दे रहे हैं। ऐसी अवस्थामें तुम क्योंकर उनका विश्वास कर सकते हो ?"

दुर्योधन,—"यदि वे सहायता न करें, तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है। कर्णकी सहायतासे मैं अकेलाही पाण्डवोंका सारा गर्व

खर्च कर डालूँगा। पिताजी! मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है, कि मैं पाण्डवोंको सुईकी नोकके बराबर भूमि भी नहीं दूँगा। चाहे दुनिया उलट जाये, मैं इस विषयमें ब्रह्माके समझानेसे भी न मानूँगा—अपनी प्रतिज्ञा पूरीही करके छोड़ूँगा।"

पुत्र-वत्सल अन्धराज, हताश होकर, चुप हो रहे। दुर्योधन, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और हिंसाके भावोंसे भरा हुआ, झटपट वहाँसे उठकर चल दिया।

कृष्णका दूत-कार्य।

उधर सञ्जयके चले जानेपर, धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे युद्धके दोषोंका वर्णन करते हुए कहा,—"मित्र! अब क्या करना चाहिये? पाँच भाइयोंके लिये हम पाँच गाँव लेकरही सन्तुष्ट हो जाना चाहते हैं; पर शायद अधिकार-लोलुप कौरव इसे भी स्वीकार न करेंगे। इससे अधिक दुःखकी बात और क्या हो सकती है? हमने प्रतिज्ञाके अनुसार तेरह वर्ष वन-वासकर, जहाँतक कष्टकी सीमा होती है, वहाँतक उसे सहन किया है। अब हमें युद्ध अनिवार्य मालूम होता है; परन्तु मेरे विचारसे, इस लड़ाईमें जीतना भी हारकेही बराबर है। कारण, कि इसमें हमारे अनेक आत्मीय-स्वजनोंका नाश होगा। अतएव, ऐसी कोई युक्ति सोचनी चाहिये, जिससे हमें राज्य भी मिले और स्वजनोंका संहार भी न हो।"

श्रीकृष्ण,—"धर्मराज! मेरे ध्यानमें तो इसके सिवा और कोई युक्ति नहीं आती, कि मैं एक बार स्वयं हस्तिनापुर जाऊँ और यथासाध्य सन्धिकी चेष्टा करूँ। यदि मेरी चेष्टा सफल हुई, तो यह विपुल क्षत्रिय-वंश, ध्वंस होनेसे, बच जायेगा। कौरव मेरी मान-प्रतिष्ठा, औरोंकी अपेक्षा अधिक करते हैं; कदाचित् वे मेरी बात मान जायें!"

इस बातको युधिष्ठिरने भी ठीक समझा। कृष्णके हस्तिनापुर जानेके लिये, उन्होंने समस्त प्रबन्ध कर दिये। जब कृष्ण चलनेको प्रस्तुत हुए, तब भीमसेनने कहा,—"भय्या कृष्ण! आप दुर्योधनको जितना जानते हैं, उतना कदाचित्‌ही कोई जानता हो। मुझे भरोसा नहीं, कि वह आपकी बात मानेगा। फिर भी यदि वह किसी प्रकार शान्त किया जा सके, तो इसीमें हमारी, कौरवोंकी, क्षत्रिय-वंशकी और प्रकारान्तरसे समस्त मनुष्य-जातिकी भलाई है। हमें दबना पड़े, सो स्वीकार है; पर हम समस्त वंशका विनाश होना पसन्द नहीं करते। भाई साहब तो सदासेही नम्रताका अवलम्बन करते आये हैं; परन्तु वंशकी रक्षाके लिये मैं भी नरम हो जानेको तैयार हूँ और शायद अर्जुनको भी यह बात पसन्द न होगी, कि कुलका कुल विनाश-सागरमें डूब जाये; अतः वे भी नम्रताके व्यवहारकोही श्रेयस्कर समझेंगे।"

भीमसेनको, पहले-ही-पहल, इस तरह नरम होते देख, कृष्णको बड़ा आश्चर्य हुआ। तेजस्वी भीमके मुखसे ऐसी शान्तिपूर्ण बातें सुननेकी, उन्हें, स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। उन्होंने तत्काल अनेक दुःख-पूर्ण कथाएँ, वन-वासके क्लेश, कौरवोंके असंख्य अत्याचार और उपद्रव, द्रौपदीकी दुर्दशा और अपमान तथा उस अपमानकारी समयमें की हुई पाण्डवोंकी प्रतिज्ञाएँ, ज्वलन्त भाषामें, कह सुनायीं। सुनते-सुनते भीमकी नसोंमें वीरता और उत्तेजना भर गयी। उन्होंने बड़े जोशके साथ कहा,—"जनार्दन! इतने दिनोंसे हमारा आपका साथ है, तो भी आपने मुझे अच्छी तरह न पहचाना। मैं न तो अपनी बातें भूला हूँ, न प्रतिज्ञा-विस्मृत हुआ हूँ; केवल इस संसार-प्रसिद्ध कौरव-वंशको, ध्वंसके अतल गर्भमें डूबनेसे बचानेके लियेही, मैंने वैसी बातें कही थीं। क्रोध, प्रतिहिंसा और द्वेषकी बातें

भूल, आत्मीय-स्वजनोंका निरर्थक संहार रोकनेकी प्रबल लालसासे प्रेरित होकर ही, मैंने शान्तिकी इच्छा प्रकट की है।"

तब भीमसेनको शान्ति-पूर्वक समझाते हुए श्रीकृष्णने कहा,—"प्रियवर! सम्भव है, कि मेरी लाख चेष्टा करनेपर भी युद्ध न रुके। उस समय मुझे तुम्हारेही पराक्रमका सबसे अधिक भरोसा रखना होगा। इसीलिये मैंने तुम्हें उत्तेजित करनेके लिये ये बातें कही हैं।"

अर्जुनने कहा,—"मित्र! आपकी चेष्टा कभी विफल नहीं हो सकती। आपकी बातको कौन नहीं मानेगा? आप दोनों पक्ष-वालोंके मित्र हैं। आप जैसा हमारा हित चाहते हैं, वैसाही कौरवोंका भी। अतएव, ऐसी चेष्टा कीजिये, जिसमें दोनोंका भला हो। सम्भव है, आपकी चेष्टा सफल हो जाये।"

श्रीकृष्णने कहा,—"धनञ्जय! मैं तुम्हारी बात मानता हूँ। सचमुच मेरे लिये दोनों पक्ष समान हैं। अतएव, मुझसे जहाँतक हो सकेगा, दोनों पक्षोंके हितका, पूरा-पूरा, ध्यान रखूँगा।"

नकुल बोले,—"महाराज! यदि सीधी-सादी बातोंसे मतलब न निकले, तो आप थोड़ा भय-प्रदर्शन करके भी शान्ति-स्थापनकी चेष्टा कीजियेगा। हमारी युद्धकी तैयारियोंको देख, कौन हमारे सामने खड़ा होनेका साहस करेगा? आपकी युक्तियोंको और कोई सुने या न सुने; परन्तु, भीष्म, द्रोण और विदुर तो अवश्यही, बड़े आदरके साथ, सुनेंगे। वे आपके पक्षमें हो जायेंगे—उनकी सहायतासे आपका यत्न सफल होगा, इसमें सन्देह नहीं।"

नकुलकी बातें पूरी होते-न-होतेही सहदेव बोल उठे,—"केशव! हमारे बड़े भाई लोग 'शान्ति-शान्ति' चिल्ला रहे हैं; पर मैं शान्तिका ज़रा भी पक्षपाती नहीं हूँ। देवी द्रौपदीका जो अपमान कौरव-सभामें किया गया है, वह मैं जीवन रहते कदापि न भूलूँगा। दुर्योधनके

रक्त-पातके सिवा, इस दुःखका—इस अपमानका—बदला और किसी तरह नहीं चुक सकता। जिस दिन दुर्योधनके रक्तसे रणभूमि रञ्जित होगी, उसी दिन मेरे जीकी जलन मिटेगी।"

सहदेवकी इन वीरता-व्यञ्जक बातोंकी प्रशंसा करते हुए, वीरवर सात्यकिने कहा,—"हे नरोत्तम! सहदेवका कहना अक्षर-अक्षर सत्य है। कौरवोंने धर्मात्मा पाण्डवोंका जितना अपमान किया है, उन्हें जितना उत्पीड़न दिया है तथा उन्होंने सती द्रौपदीको, भरी सभामें, नङ्गी करनेका जो नीच प्रयत्न किया था और बिना ईश्वरीय सहायताके जिससे उद्धार पानेका, उस समय, कोई भी उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता था, उन समस्त अवमाननाओंको स्मरण कर, हम सबके हृदय जल उठते हैं—क्रोधसे भुजाएँ फड़कने लगती हैं। वह क्रोध, वह मनस्ताप, वह प्रतिहिंसा, बिना दुर्योधनका नाश किये, क्या कभी शान्त हो सकती है?"

सात्यकिकी बातें सुन, वहाँ जितने लोग बैठे हुए थे, सबके हाथ अपने-अपने शस्त्रोंपर जा पहुँचे। सबने सात्यकिकी बड़ाई की।

बेचारी जन्म-दुःखिनी द्रौपदी, रोनीसी सूरत बनाये, वहीं बैठी-बैठी इन कथोपकथनोंको सुन रही थी। अपने पतियोंके नम्र-भाव, दीन-भाषण और क्षत्रियत्व-शून्य विचारोंको देख-सुनकर वह मन-ही-मन कुढ़ रही थी; पर सात्यकि और सहदेवको अपने मनके मुताबिक बातें करते देख, उससे स्थिर न रहा गया। वह रोती हुई कृष्णसे कहने लगी:—

"हे भगवन्! आप सन्धि, और शान्तिकी चेष्टा करनेके लिये जा रहे हैं, अच्छी बात है; जाइये! भगवान् करे, आपका यत्न सफल हो; परन्तु देखिये, बिना पाण्डवोंका पूरा राज्य लिये, आप सन्धि न कीजियेगा। यही मेरा आपसे अन्तिम अनुरोध है।

कौरवोंने, आरम्भसे लेकर आजतक, हम लोगोंको जो-जो कष्ट दिये हैं, हमपर जैसे-जैसे अत्याचार किये हैं, वे क्या आपको याद नहीं रहे ? मेरे पति अत्याचार सहते-सहते, उसके आदी हो गये हैं। जब कौरव-सभामें मेरा घोर अपमान हुआ था, आर्य-जातिकी सभ्यतामें कलङ्क लगानेवाला भीषण अत्याचार किया गया था, मेरी लज्जा लूटनेके लिये, राक्षस-कौरव जी-जानसे तुले हुए थे, उस समय भी ये चुपचाप देखते रहे ! प्रतिज्ञाकी कमज़ोर डोरीमें बँधकर इन्होंने चुपचाप सब कुछ सह लिया ! अब वह कच्चा धागा टूट गया है, इनकी प्रतिज्ञा भी, अक्षर-अक्षर, पूरी हो चुकी है। तब ये क्यों दब रहे हैं ? क्यों नरमीकी बातें कर रहे हैं ? यह मेरी समझमें नहीं आता। इन सबकी बातें सुन-सुनकर मेरी देह झुलसी जाती थी, प्राण व्यग्र हो रहे थे ; पर वीरवर सहदेवकी बातोंसे कुछ-कुछ धीरज हुआ है। कम-से-कम एक भाई तो उन सारे अपमानोंको नहीं भूला है, यही मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है ; परन्तु महाराज ! मेरी सारी आशा आपपरही है। यदि आप भी शान्तिकीही बात करेंगे, तो इस दुःखिनीकी अनुतापाग्नि कैसे बुझेगी ? क्या पापी कौरव इतने अन्याय, अधर्म और अत्याचार करके भी छाती अकड़ाये, निर्भय-निर्द्वन्द्व होकर, विचरण करते रहेंगे ? भगवन् ! आप मुझे न भूलें। यदि आप भी मेरे उन घोर अपमानोंकी बात भूल जायेंगे, तो मेरा और कौन सहायक होगा ? मेरे पति युद्धसे भागते हैं, तो भलेही भाग जायें ; पर मेरे बूढ़े पिता और बलवान् भाई मेरा अपमान कैसे भूल जायेंगे ? वे बदला लिये बिना कभी न मानेंगे। मेरे पाँचों पुत्र, अभिमन्युको अग्रसर कर, मैदानमें उतरेंगे। माँके अपमानको कौन बेटा भूल सकता है ? स्त्री पतिके चरणोंकी धूल है ; पर पुत्रके प्राणोंकी प्राण है। क्या इसमें कोई सन्देह है ? मेरे बेटे,

मेरे भाई और मेरे पिता जिस समय युद्ध-क्षेत्रमें उतरेंगे, धर्मका पक्ष लेकर लड़नेको तैयार होंगे, उस समय अधर्मी कौरव कबतक उनके सामने ठहर सकेंगे ? हे माधव ! आप शान्तिका प्रस्ताव लेकर जाते हैं, तो भलेही जाइये ; परन्तु कोई भी बात क्यों न उठे, आप, अपने मुँहसे, उनका उत्तर देते समय, मेरे इन बालोंकी बात न भूलियेगा, जिन्हें दुष्ट दुःशासनने अपने अपवित्र हाथोंसे खींचा है और जो आज-तक उसी अपमानकी यादमें खुले हुए हैं ; इनकी वेणी नहीं बँधी !" इतना कहते-कहते, द्रौपदीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

कृष्णाका यह विलाप सुनकर, कृष्णका कलेजा पानी-पानी हो गया। वे द्रौपदीको धैर्य देते हुए बोले,—"देवी ! शोक न करो। तुम्हारे दुःखोंकी बात मैं नहीं भूला हूँ और न कभी भूलूँगाही। सन्धिका प्रस्ताव करते समय, मैं, तुम्हारे इन वचनोंको अवश्य याद रखूँगा। कल्याणी ! तुम निश्चय जान लो, कि कौरवोंके पापका घड़ा अब पूरी तरहसे भर गया है। उनका विधाता वाम है। उनकी बुद्धि फिर गयी है। मैं शान्ति कराने जाता हूँ ; परन्तु मुझे आशा है, कि मैं उसमें विफल होऊँगा। युद्ध होगा और अवश्य होगा। तुम्हारे पति अपना खोया हुआ राज्य फिर पायेंगे। आज तुम जिस तरह रो-रोकर पृथ्वी भिंगो रही हो,कुछही दिनोंमें कौरव-कामिनियाँ भी उससे अधिक विकलताके साथ, रोती फिरेंगी। अतः रोओ मत, मैं तुम्हारी बातके बाहर नहीं हूँ।"

इस प्रकार बातों-ही-बातोंमें सारी रात बीत गयी। दूसरे दिन, श्रीकृष्ण, सात्यकिको साथ ले, हस्तिनापुरकी ओर चल पड़े।

तीसरे दिन दोपहरके समय वे हस्तिनापुर जा पहुँचे। बहुतेरे कौरव उनके स्वागतके लिये आये और बड़े आदरके साथ उन्हें राज-महलमें ले गये। वहाँ उनका खूब आदर-सत्कार हुआ।

तदनन्तर विदुर और अपनी बुआ, पाण्डव-जननी, कुन्तीसे मिलकर, श्रीकृष्ण दुर्योधनसे मिलने चले। दुर्योधनका दरबार लगा हुआ था। अपने राज-पुरुषों और सामन्त-सेना-पतियोंके बीचमें, बहुमूल्य सिंहासनके ऊपर, महाराजा दुर्योधन, राजसी पोशाक पहने, विराजमान थे। दु:शासन, शकुनि, कर्ण आदि दुर्योधनके मित्र और सहायक, यथायोग्य आसनोंपर, बैठे हुए थे। कृष्णके आतेही सबने उनकी बड़े आदरसे अभ्यर्थना की। यथोचित कुशल-प्रश्नके बाद श्रीकृष्ण, अपने लिये रखे हुए, एक सोनेके सिंहासनपर जा बैठे।

दुर्योधनने, शिष्टाचारके अनुरोधसे, कृष्णको अपने यहाँ भोजन करनेके लिये कहा ; पर कृष्णने कहा,—"मैं, इस समय आपका यह अनुरोध माननेमें असमर्थ हूँ ; कारण, कि मैं यहाँ दूत बनकर आया हूँ ; अतिथि बनकर नहीं। काम हो जानेपरही दूत लोग भेंट या भोजन ग्रहण करते हैं।" दुर्योधन श्रीकृष्णके इस उत्तरसे, मन-ही-मन, जल-भुन गया ; पर कुछ कह न सका। उस रातको श्रीकृष्णने महात्मा विदुरके घर निमन्त्रण स्वीकार किया और उनके धर्म-भाव तथा प्रेमको देख उन्हें खूब सराहा।

प्रातःकाल ज्योंही श्रीकृष्ण नित्य-कर्मादिसे निश्चिन्त हुए, त्योंही-दुर्योधन और शकुनिने उनके पास आकर कहा,—"महाराजा धृतराष्ट्र और पितामह भीष्म आदि कौरव तथा अन्यान्य राजा-महाराजा आपके आनेकी बाट देख रहे हैं। कृपाकर जल्दी पधारिये।"

अपने मित्रों और अनुचरोंको साथ ले श्रीकृष्ण, राज-सभामें आये। सबने उठकर उनका स्वागत किया। द्वारपर कुछ ऋषि-मुनि भी खड़े थे। कृष्णके कहनेसे वे भी भीतर बुला लिये गये। जब सब लोग अपने-अपने स्थानपर बैठ चुके, तब कुछ देरतक एक-दम सन्नाटा छाया रहा। तदनन्तर श्रीकृष्णने अपनी मृदु-मधुर,

गम्भीर वाणीसे सभा-भवनको गुंजाते हुए बड़े दृढ़, निर्भीक और अर्थ-भरे वाक्योंमें कौरवोंसे, सन्धि कर लेनेका, अनुरोध किया। इसके बाद उन्होंने, उपस्थित सभासदोंकी सम्मति जाननेकी अभिलाषा प्रकट की ; पर सब लोग चुप्पी साधे रहे। मन-ही-मन कृष्णकी बातोंका समर्थन करते हुए भी, किसीको साहस न हुआ, कि मुँहसे कुछ कहे। तब तरह-तरहके इतिहास और दृष्टान्त सुनाकर ऋषियोंने कौरवोंको, विशेषतया दुर्योधनको, कृष्णके प्रस्तावकी उपयोगिता बतलानी शुरू की। उन्होंने कहा,—"हे दुर्योधन! इसमें कोई सन्देह नहीं, कि तुम बड़े वीर हो और यह भी ठीक है, कि अकेले कर्णही समस्त पाण्डव-पक्षको पराजित कर सकते हैं ; परन्तु समय बड़ा प्रबल होता है—वह क्षण-भरमें बलीको निर्बल और निर्बलको बलवान् बना देता है। अतः अभिमान करना उचित नहीं। अभिमान करनेसेही सबका पतन होता है—अभिमानने लाखोंही घर बिगाड़ डाले हैं। देखो, रावण जैसा त्रिभुवन-विजयी वीर, अभिमानकेही कारण, सवंश नाशको प्राप्त हो गया। कौन जानता था, कि जिसके सामने देवता, यक्ष, गन्धर्वतक नहीं टिक सकते थे, उसे साधारण बन्दरोंके आगे नीचा देखना पड़ेगा? रामके पास कौनसी बड़ी भारी सेना थी? केवल बन्दर और भालूही तो थे? पर उन्होंने पूरी तरहसे उस अभिमानीका मान-मर्दन कर डाला—उसकी सोनेकी लङ्का मिट्टीमें मिला दी।"

परन्तु दुर्योधनके शिरपर तो शैतान सवार था—बुद्धिही फिरी हुई थी, वह भला किसकी सुनता? उसने ऋषियोंकी बातपर कानतक नहीं दिया ; वरन् उपेक्षासे मुँह फेर लिया! तदनन्तर भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, यहाँतक, कि उसकी माता गान्धारीने भी, उसको बहुतेरा समझाया; पर किसीका किया कुछ न हुआ।

कौरव-सभामें श्रीकृष्ण।

"श्रीकृष्णने झट सात्यकिका हाथ पकड़ लिया।"

[पृष्ठ—१७६]

Burman Press, Calcutta.

वह केवल कृष्णके कथनोंका, कठोरता पूर्वक, उत्तर देता हुआ बोला,—"वासुदेव ! आपको हमारे साथ समझ-बूझकर बात करनी चाहिये। किन्तु आप वैसा न कर, क्यों हमारी वृथा निन्दा कर रहे हैं ? मालूम होता है, कि आपने पाण्डवोंके पक्षपात करनेका ठेका ले रखा है। आपने हमारी घोर निन्दा की है; किन्तु अभीतक यह न मालूम हुआ, कि हमने पाण्डवोंका कौनसा अपराध किया है ? युधिष्ठिर हमारे साथ जुआ खेले और उसमें अपना सब कुछ खो बैठे। इसमें हमारा क्या दोष है ? हमारे लड़कपनमेंही पिताने, हमारी इच्छाके विरुद्ध, पाण्डवोंको सारे राज्यका आधा हिस्सा दे दिया था; परन्तु अब वे—हमारे जीते-जी—उसे नहीं पा सकते। अधिक तो क्या, मैं बिना युद्धके पाण्डवोंको एक सुईकी नोकके बराबर भी ज़मीन न दूँगा। आधा राज माँगना तो आकाशके चाँदको हाथ लगाना है।"

दुर्योधनकी इस अशिष्टता और सफ़ेद झूठकी श्रीकृष्णने तो कुछ परवा न की; किन्तु वीरवर सात्यकिसे यह सब न सहा गया। वे झट तलवार निकाल, आगे बढ़े और क्रोध-कम्पित कण्ठसे बोले,—"दुर्योधन ! ज़रा मुँह सम्हालकर बोलो। कहते हो, श्रीकृष्ण समझ बूझकर बात करें, लेकिन मैं देखता हूँ, कि तुम्हीं इस बारेमें अपराधी हो। तुम्हें भरी सभामें यह कहते हुए शर्म नहीं आती, कि 'मैंने पाण्डवोंके साथ क्या अन्याय किया है ?' तुम्हारे अन्याय-अत्याचार संसार-प्रसिद्ध हैं। उन अन्यायोंके कोपसे पृथ्वी डगमगा रही है। सूर्य्यदेव नीचे गिरे जाते हैं। बस, अब यदि अधिक——"

सात्यकिका वाक्य पूरा भी न होने पाया था, कि श्रीकृष्णने चट उनका हाथ पकड़कर बैठा दिया और समझाया, कि यह समय क्रोध करनेका नहीं, धैर्य धरनेका है।

इसके बाद श्रीकृष्णने, हताश होकर, सबसे विदा माँगी। सबने उन्हें बड़े सम्मानके साथ विदा किया। चलते समय श्रीकृष्ण कहते गये,—"दुर्योधन! यदि तुम युद्धके लियेही उतावले हो रहे हो, तो जाओ, उसके लिये पूरी-पूरी तैयारी करो।"

सभा-भवनसे विदा हो, श्रीकृष्ण पुनः कुन्तीसे मिलनेके लिये आये। सभामें जो-जो बातें हुई थीं, उन्हें उन्होंने व्योरेवार सुना दिया। इसके बाद वे बोले,—"बुआ! दुर्योधनके दिन पूरे होनेपर आ गये हैं। उसके सिरपर भयानक दुर्दैव मँडरा रहा है। उसे युद्ध-ही-युद्ध सूझ रहा है। कर्णके ऊपर उसे बड़ा भारी भरोसा है। वह समझता है, कि मैं कर्णकी सहायतासे पाण्डवोंको अवश्यही पराजित कर सकूँगा।"

यह सुन कुन्तीने कहा,—"बेटा! मेरी ओरसे मेरे पुत्रोंको आशीर्वाद देकर कहना, कि माँके दूधका बदला, क्षत्रिय-सन्तान, रणभूमिमें, अपना रक्त बहा कर देती है। वह दिन आ रहा है; उस समय तुमलोग क्षत्राणीकी कोखकी लाज रखना। पुत्री द्रौपदी-से कहना, कि तुमने मेरे पुत्रोंके कारण इतना दुःख-क्लेश उठाकर भी जो मुँहसे उफ् तक न निकाली, तुम्हारे इन्हीं गुणोंसे पाण्डवोंका मङ्गल होगा। इस पातिव्रत्यके प्रभावसेही वे समस्त सौभाग्योंके अधिकारी होंगे। तुम्हारा सौभाग्य अचल हो। जाओ, बेटा! तुम्हारी यात्रा सफल हो, यही मेरा आशीर्वाद है।"

कर्णका जन्म-वृत्तान्त।

अनन्तर कुन्तीको प्रणामकर, श्रीकृष्ण बाहर चले आये। बाहर आ, उन्होंने कर्णको बुला, उनसे एकान्तमें कहा,—"तुम पाण्डवोंके भाई हो, कुन्तीही तुम्हारी माता हैं। कुमारी-अवस्थाकी सन्तान होने-

के कारणही, उन्होंने, तुम्हें विसर्जित कर दिया था ; परन्तु उनकी ममता, तुमपर, पाण्डवोंसे, कम नहीं है। माता सब अवस्थाओंमें माताही रहती है। यदि तुम पाण्डवोंसे मिल जाओ, तो दुर्योधन कभी युद्ध करनेका साहस न करेगा, आपसमें सन्धि हो जायेगी और क्षत्रिय-वंश नाश होनेसे बच जायेगा।" परन्तु कर्णको श्रीकृष्णकी ये बातें नहीं रुचीं। उन्होंने कहा,—"जब कुन्तीने मुझे बचपनमें-ही, दूधकी मक्खीकी तरह, फेंक दिया, मेरे जीने-मरनेकी ज़रा भी परवाह न की, तब मैंही उन्हें माता क्यों मानूँ ? उन्हींकी करनीसे तो मैं क्षत्रिय होकर भी, सूत-पुत्र कहलाया। अब मैं सूत-वंशीय हो चुका, पाण्डु-वंशसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरे, मैं इतने दिनोंसे राजा दुर्योधनका दिया हुआ राज्य, सुखसे भोग रहा हूँ। अब, कामके समय, उनके विरुद्ध-पक्षमें त्रैलोक्यका राज्य पानेपर भी, मैं नहीं जा सकता। आप मेरे जन्मका यह वृत्तान्त पाण्डवोंपर प्रकट न कीजियेगा; क्योंकि सत्य-सिन्धु, धर्मात्मा युधिष्ठिर यदि यह जान जायेंगे, कि मैंही कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र हूँ, तो वे राज्यका सारा अधिकार छोड़ बैठेंगे। जब मैं उनका अधिकार पाऊँगा, तब, बिना सङ्कोचके, दुर्योधनको दे डालूँगा और कृतज्ञताके ऋणसे छुटकारा पा जाऊँगा। परन्तु दुर्योधनको योंही मुफ्तका माल मिल जाये, यह मेरी इच्छा नहीं है। मेरी एकान्त इच्छा यही है, कि युद्ध हो, युधिष्ठिर जीतें और चिरकालतक सिंहासनकी शोभा बढ़ाते रहें।"

श्रीकृष्णने कहा,—"जब तुम ऐसा कहते हो, तब युद्ध रुक नहीं सकता। दुःख है, कि इस प्रसिद्ध भरत-वंशका समूल नाश होनेमें अब देर नहीं। अच्छा, देखा जायेगा।"

कर्णने जाते-जाते श्रीकृष्णसे कहा,—"महाराज ! जाइये। अब या तो आपसे लड़ाईके मैदानमें ही भेंट होगी या स्वर्गमें।"

इधर कृष्ण और विदुरकी बातें सुन-सुनकर कुन्ती मारे चिन्ताके घबराने लगीं। उनकी आँखोंके सामने युद्ध और उसके भयानक परिणामोंका चित्रसा खिंच गया। उन्होंने सोचा,—"दुर्योधनको कर्णकाही बड़ा भारी भरोसा है, और वह मेरा वैसाही पुत्र है, जैसे पाण्डव ! तो क्या भाई-भाई—एकही माँके बेटे—एक दूसरेका रक्त-पान करेंगे ? नहीं, मैं यथाशक्ति ऐसा न होने दूँगी। एक बार चेष्टा करके देखूँगी, कि कर्ण अपनी माँकी बात रखता है या नहीं ? कर्णका अवलम्बन टूट जानेसे दुर्योधन अपाहिजसा हो जायेगा, फिर वह कभी युद्ध न करेगा। अच्छा, चलूँ, चेष्टा तो करूँ।"

यह सोच, कुन्ती कर्णके पास पहुँचीं। कर्णका यह नित्यका नियम था, कि वे प्रातःकाल, नित्य-कृत्यसे निश्चिन्त हो, सूर्यकी आराधना किया करते थे। कुन्ती जिस समय वहाँ पहुँचीं, उस समय कर्ण पूजा कर रहे थे। अतएव वे पूजाकी समाप्तितक प्रतीक्षा करती रहीं। जब उनकी पूजा समाप्त हो चुकी, तब उन्होंने कुन्तीको अपनी प्रतीक्षामें, बैठे हुए देखा। वे उन्हें देखतेही बोले,—"देवी ! मैं अधिरथका पुत्र कर्ण, आपको प्रणाम करता हूँ। कहिये, इस दासके लिये क्या आज्ञा है ?"

कुन्ती,—"बेटा ! तुम अधिरथके पुत्र नहीं, वरन् पाण्डुके वंश-प्रदीप हो। मैं तुम्हारी माता, कुन्ती हूँ। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई तुम्हारे लघुभ्राता हैं। युद्धकी तैयारी हो रही है; अतएव तुम्हें चाहिये, कि अपने भाइयोंकी सहायता करो।"

कर्ण,—"देवी ! मैं आपका पुत्र हूँ, इसका प्रमाणही क्या है ?"

कुन्ती,—"प्रमाण क्यों नहीं है ? सुनो, जब मैं अपने पिताके मित्र, भोजराजके यहाँ रहा करती थी, तब एक बार वहाँ महर्षि दुर्वासा आये। मैंने खूब मन लगाकर उनकी सेवा की। मेरी

कुन्ती और कर्ण।

"देवी! मैं अधिरथका पुत्र कर्ण, आपको प्रणाम करता हूँ। कहिये, इस दासके लिये क्या आज्ञा होती है?"

[पृष्ठ—१८२]

सेवासे वे बहुतही सन्तुष्ट हुए और बोले,—'पुत्री ! मैं तेरी सेवासे परम प्रसन्न हुआ हूँ। इसलिये मैं तुझे एक ऐसा मन्त्र बतलाता हूँ, जिसका उच्चारण करतेही, तू जिस देवताका ध्यान करेगी, वही तेरे पास आ जायेगा और तुझे एक पुत्र प्रदान करेगा।' यह कह दुर्वासाजी चले गये।

"मैं बालिका तो थी ही, चपलतावश मैंने उस मन्त्रकी परीक्षा लेनी चाही। ज्योंही मैंने मन्त्र पढ़कर सूर्यकी ओर देखा, त्योंही, चारों दिशाओंको अपनी ज्योतिसे जगमगाता हुआ, एक परम सुन्दर पुरुष, मेरे सम्मुख, आ खड़ा हुआ और बोला,—'सुन्दरी ! मैं सूर्य हूँ और तुम्हारे इच्छानुसार यहाँ आया हूँ। कहो, क्या चाहती हो ? मैं मन-ही-मन बहुत लज्जित होकर बोली,—'देवता ! आप मुझ अज्ञानको क्षमा करें। मैंने भूलसे आपको कष्ट दिया है।' सूर्यने उत्तर दिया,—'देवी ! डरनेकी कोई बात नहीं; ऋषिका मन्त्र बिल्कुल सच्चा है। जाओ, उसके प्रभावसे तुम्हें एक बड़ाही तेजस्वी पुत्र होगा।' यह सुनकर मैं बहुतही लज्जित हुई; मेरे चेहरेका रङ्ग फीका पड़ गया। यह देख भगवान् सूर्य बोले,— 'मेरे दिये हुए पुत्रको पाकर, तुम्हारा कुमारीपन नष्ट न होगा। डरो मत, डरनेका कोई काम नहीं है। तुम्हारा सतीत्व, तुम्हारी प्रतिष्ठा और तुम्हारी मान-मर्यादाका कभी ह्रास न होगा।' यह कह वे अन्तर्द्धान हो गये। कुछ दिनोंके बाद, मेरे गर्भसे, तुम्हारा जन्म हुआ। उस समय मैं बड़ी विपद्में पड़ी ! समझमें नहीं आता था, कि क्या करूँ ? बहुत कुछ सोचने-विचारनेके बाद, मैंने, तुम्हें पिटारीमें बन्दकर, नदीमें डाल दिया। संयोगवश तुम, कुरुराजके सारथि, अधिरथके हाथ लगे। उन्हीं लोगोंने तुम्हारा पालन-पोषण किया। इसीसे तुम उन्हें अपने माँ-बाप समझते हो ; पर वास्तवमें तुम्हारी माँ मैं हूँ।

अब तुम अपने भाइयोंसे मिलकर राज्य-सुख भोग करो। पाँचों भाई तुम्हारी आज्ञा मानकर चलेंगे। जैसे रामके छोटे भाई, उनकी आज्ञाके अनुचर थे, वैसेही तुम्हारे छोटे भाई भी तुम्हारे आज्ञा-पालक बनेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

कर्ण बड़े ध्यानसे इस कहानीको सुनते रहे। जब कुन्ती अपनी बातें पूरी कर चुकीं, तब उन्होंने बड़े धीर, गम्भीर स्वरसे कहा,—"देवी! मैंने माना, कि आपने जो कुछ कहा है, वह ठीक है। मैं आपकाही पुत्र हूँ; परन्तु आपही सोचिये, क्या आपने मेरे साथ, उस समय, माताकासा व्यवहार किया था? यदि मैं नदीमें डूबकर मर गया होता, तो आज आप मुझे कहाँसे पातीं? आपने तो, अपनी ओरसे, मुझे मौतकेही मुँहमें डाल दिया था! भाग्यमें जीना लिखा था, इसीसे मरा नहीं, जीता रहा। अब, जब आपका काम अटका है, तब आप मातृत्वकी दुहाई देने आयी हैं! इतने दिनोंतक आप कहाँ थीं? दुर्योधनके दिये हुए अन्नसे मेरा पेट पल रहा है, उनका दिया हुआ अङ्गका राज्य मैं निष्कण्टक भोग रहा हूँ; अब काम पड़नेपर मैं उनका पक्ष क्योंकर त्याग दूँ? जिनकी कृपासे सूत-पुत्र कहलानेका कलङ्क मिटा है, जिनकी दयासे सारथिका बेटा न कहलाकर, मैं अङ्ग-नरेश कहलाता हूँ, उनके किये हुए उपकारोंको, मैं आपकी किस दया, किस उपकार, किस स्नेहके बदले भूल जाऊँ? मैं त्रिकालमें भी दुर्योधनका पक्ष नहीं त्याग सकता। तो भी जब आप, माँ बनकर, मुझसे अपने पुत्रोंकी सहायता माँगने आयी हैं, तब मैं इतना अवश्य कर सकता हूँ, कि युद्धमें अर्जुनको छोड़, मैं और किसी भाईको न मारूँगा। यदि अर्जुन मर जायेगा, तो भी आपके पाँच बेटे संसारमें बच रहेंगे। और मैं मरूँगा, तब तो आपका काम बना-बनायाही है, इसमें कहनाही क्या है?"

यह कहकर कर्ण चल दिये। माता कुन्ती भी, लज्जित हो, उदास मुँह बनाये हुईं, घरको लौट आयीं।

युद्धार्थ प्रस्थान।

उधर श्रीकृष्ण, भी भग्न-मनोरथ हो, पाण्डवोंके पास पहुँचे। उन्होंने वहाँका सारा हाल उनसे ब्योरेवार कह सुनाया। अब सबने समझ लिया, कि युद्ध बिना काम नहीं चलेगा। अतः सेनाओंको तैयार होनेकी आज्ञा दे दी गयी। पाण्डव-पक्षकी सात अक्षौहिणी सेनाओंके सेनापति हुए—द्रुपद, विराट्, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन। ये सब लोग, अपनी-अपनी सेनाएँ लिये, कुरु-क्षेत्रके पास, हिरण्वती नदीके किनारे जा पहुँचे। वहीं, बड़े ठाट-बाटसे, उनके डेरे डाले गये।

जिस दिन दुर्योधनने पाण्डवोंके कुरु-क्षेत्र पहुँचनेका समाचार सुना, उसी दिन, रात्रिके समय, उसने भी कूचका डङ्का बजवा दिया। उसकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ कुरु-क्षेत्रके मैदानमें जा डटीं। दुर्योधनकी सेनाओंके सेनापति हुए—कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और वाल्हीक। जब सब तैयारियाँ हो चुकीं, तब दुर्योधनने समस्त सैन्यका अभिभावक बननेके लिये भीष्मदेवसे अनुरोध किया। इसपर भीष्मजी बोले,—"बेटा! मैं अवश्य तुम्हारी बात मानूँगा; पर मेरे लिये तुम और पाण्डव, दोनोंही बराबर हो। अतः मैं यह कहे देता हूँ, कि मैं उन पाँचों पाण्वोंमेंसे एकको भी नहीं मारूँगा। हाँ, तुम्हारी प्रसन्नताके लिये, मैं पाण्डव-पक्षके हज़ार योद्धाओंको प्रति दिन अवश्य मार डालूँगा। जाओ, मेरी ओरसे निश्चिन्त रहो।"

दुर्योधनने उनकी यह बात मानली। भीष्मको समस्त सैन्यका

संरक्षक बनते देख, कर्ण, मारे ईर्ष्याके, जलकर भस्म हो गये। उन्होंने दुर्योधनसे कहा,—"राजन्! जबतक भीष्मदेव आपकी सेनाके अधिपति रहेंगे, तबतक मैं कदापि अस्त्र-धारण न करूँगा। इसलिये जब वे मर जायें, तभी मुझसे हथियार उठानेको कहियेगा।"

उधर पाण्डवोंने, सबकी सम्मतिसे, अर्जुनको अपनी समस्त सेनाका अधिनायक बनाया। तदनन्तर दुर्योधनका दूत, शकुनि-पुत्र, उलूक, पाण्डवोंके पास आकर बहुत कुछ खरी-खोटी सुना और उन्हें युद्धके लिये ललकार कर चला गया।

जिस दिन युद्ध आरम्भ होनेवाला था, उसी दिन, प्रातःकालके समय, भगवान् वेदव्यासजी, चिन्ताकुल धृतराष्ट्रके पास आये और बोले,—"राजन्! समय बड़ा बली है। उसीके इशारेसे संसारके सारे कार्य होते हैं। तुम्हारे पुत्र और भतीजे, इस समय, उसी धर्मकी प्रेरणासे मरने-कटनेके लिये तैयार हुए हैं। हे पुत्र! यदि तुम्हारी इच्छा युद्ध देखनेकी हो, तो हम तुम्हें योग-बल द्वारा दिव्य-दृष्टि दे सकते हैं। तुम, उसके द्वारा, युद्धमें जो भी कुछ होगा, उसे यहीं बैठे-बैठे देख सकोगे।"

धृतराष्ट्र,—"नहीं महाराज! अपनी जातिका वध देखना मुझे पसन्द नहीं है। हाँ, यदि कोई ऐसा उपाय हो, जिससे मैं घर बैठे, युद्धका सारा हाल जान लिया करूँ, तो आप उसकी व्यवस्था कर दें।"

व्यासजीने, धृतराष्ट्रकी बात सुनकर, सञ्जयको एक वर दिया और धृतराष्ट्रसे कहा,—"सञ्जय तुमसे युद्धका सब हाल कहेगा। इससे युद्धकी गुप्त-से-गुप्त बात भी मालूम हो जायेगी। यह युद्ध-क्षेत्रमें जाकर भी, अक्षत देहसे सारा हाल जानकर, आपके पास आ सकेगा। युद्धकी बाधाएँ इसे पीड़ा न पहुँचा सकेंगी। यहाँतक, कि उतने समयके लिये, यह योद्धाओंके मनका हाल भी जान लिया करेगा।"

इतना कहकर महात्मा वेदव्यासजी वहाँसे चले गये। युद्ध आरम्भ होनेपर सञ्जय, व्यासजीके दिये हुए वरके प्रभावसे, प्रतिदिन युद्धके मैदानमें, स्वच्छन्दतापूर्वक घूमा करते और युद्ध समाप्त हो-जानेपर धृतराष्ट्रको सारा हाल सुना देते थे। अस्तु।

जिस दिन युद्ध आरम्भ होनेवाला था, उस दिन रातको, दुर्योधनने अपने पक्षके सारे चुने हुए वीरोंको बुलाया और बारी-बारीसे पूछा, कि कौन कितने समयमें पाण्डवोंको हरा सकता है?

इसके उत्तरमें पितामह भीष्मने कहा,—"यदि मैं चाहूँ, तो पाण्डव-पक्षको, अकेलाही, एक महीनेमें मार सकता हूँ।" द्रोणने भी एक-मासमें पाण्डवोंको हरानेका वादा किया। कृप छः मासमें पाण्डवोंको हरानेके लिये तत्पर हुए; पर कर्णने, अभिमानमें भरकर, पाँच दिन-मेंही पाण्डवोंको, सेना सहित, मार डालनेका दुस्साहस दिखाया। उसके इस वचनको सुन, भीष्म हँस पड़े। वे बोले,—"कर्ण! अभी तुमने अर्जुनको पहचाना नहीं है, इसीलिये ऐसी ऊटपटाँग बातें करते हो। जिस दिन अर्जुनसे मोर्चा डटेगा, उस दिन लोग जानेंगे, कि तुमने अपने इस वचनको कहाँ तक निभाया है।"

भीष्मकी इस व्यङ्गोक्तिसे कर्ण जल-भुन गये, पर कुछ बोले नहीं।

जब यह समाचार युधिष्ठिरको मालूम हुआ, तब उन्होंने भी अपने सब भाइयोंको बुलाया और सबसे पहले अर्जुनसे पूछा, कि तुम कितने दिनोंमें, सेना-सहित, कौरवोंको हरा सकोगे?"

अर्जुनने कहा,—"भगवान् श्रीकृष्णकी सहायता मिलनेपर, मैं सारे कौरवोंको एक पलमें नष्ट कर दे सकता हूँ; क्योंकि श्रीशिवजी-ने मुझे पाशुपत नामका जो अस्त्र दिया है, उससे पलभरमें सारी सृष्टि नष्ट हो सकती है। इस शस्त्रकी सहायतासे शिव, प्रलयके समय, सारे संसारका संहार किया करते हैं। इस अस्त्रका प्रतिकार

भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा और कर्ण, किसीको भी मालूम नहीं है। किन्तु ऐसे बड़े-बड़े अस्त्र साधारण लड़ाइयोंमें नहीं चलाये जाते। मैं तो कौरवोंसे साधारण ढङ्गसे लड़ूँगा।" युधिष्ठिरने इस बातको सुनकर फिर किसीसे कुछ नहीं पूछा।

दूसरेही दिन, प्रातःकाल, सब कार्योंसे निवृत्त हो, दोनों पक्षवालोंने अपनी-अपनी सेनाओंके व्यूह बनाकर आमने-सामने खड़े किये। पाण्डव-सेनाके आगे-आगे अर्जुनका रथ था, जिसपर भगवान् कृष्ण सारथि बनकर बैठे थे और कौरव-सेनाके आगे बालब्रह्मचारी, आदर्शवीर, पितामह भीष्म थे। दोनों ओर युद्धके बाजे, बड़े उत्साहके साथ, बज रहे थे, जिसे सुनकर वीरगण युद्धके लिये उतावले हो रहे थे।

कुरुक्षेत्रकी युद्ध-भूमि।
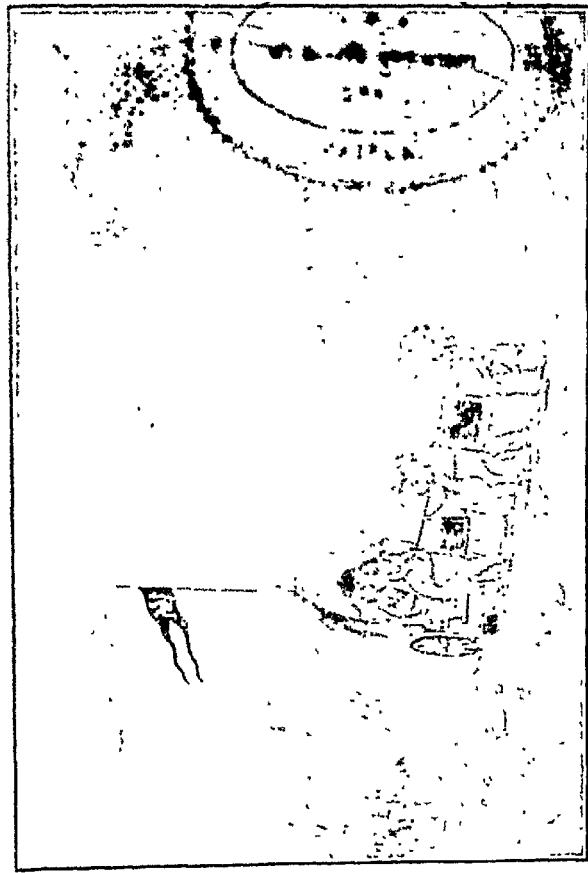
"पाण्डव-सेनाके आगे अर्जुनका रथ था, जिसपर भगवान् श्रीकृष्ण सारथि बनकर बैठे थे।" [पृष्ठ—१८८]

भीष्म-पर्व

अर्जुन-मोह ।

जिस समय युद्धोन्मत्त वीरोंकी भुजाएँ, अस्त्र-धारण करनेके लिये, जिस समय फड़क रही थीं, मारू बाजेकी भीषण ध्वनि, उनके प्राणोंमें वीर-दर्प भर रही थी और केवल यही धुन समायी हुई थी, कि कब युद्ध आरम्भ हो और कब हम अपने मनकी उमङ्ग निकालें; उस समय अर्जुनने अपने सखा श्रीकृष्णसे, जो उनका रथ हाँक रहे थे, कहा,—"भगवन्! अब आप मेरे रथको ऐसे स्थानपर ले चलिये, जहाँसे मैं दोनों पक्षोंके वीरोंको अच्छी तरह देख सकूँ ।"

श्रीकृष्णने, वीर अर्जुनकी अभिलाषाके अनुसार, रथको दोनों सेनाओंके बीचमें ले जाकर खड़ा कर दिया । योद्धाओंको उत्साहित करनेके लिये लड़ाईके बाजे बज रहे थे । प्रत्येक वीर मरने-मारनेके लिये सहर्ष प्रस्तुत था । चारों ओर वीरताके भाव विराजमान थे । सबके मुखड़ेपर तेज झलक रहा था—मानों सबके हृदयसे यही बात निकल रही थी, कि "युद्धं देहि ।"

अर्जुनने भलीभाँति इन भावोंका निरीक्षण किया । इसके बाद एकाएक उनके मनमें न जाने कैसा भावान्तर हुआ, कि वे शस्त्रास्त्र फेंककर, रथसे, पृथ्वीपर उतर पड़े और श्रीकृष्णसे बोले,—"हे

वासुदेव ! देखो तो सही, हम कैसे नीच हैं। जिनके लिये मनुष्य, संसारमें, सुख पानेकी कामना करता है, उन्हीं कुटुम्बियों और प्रेम-पात्र आत्मीय-स्वजनोंका संहारकर, हम राज्य पानेका उद्योग करने जा रहे हैं ! यदि इन भाई-बन्धुओंको मारकर हम राज्य पा जायें, तो भी क्या है ? किसलिये हम यह पाप करें ? किसके सुखके लिये, किसको दिखलानेके लिये हम यह दुष्कर्म करें ? हमारे इन प्रिय परिजनोंका नाश हो जानेपर कौन हमारे वैभव, ऐश्वर्य और सुखका साझीदार बनेगा ? मैं तो अब कदापि युद्ध न करूँगा। तीनों लोकोंका राज्य पानेके लिये भी मैं उन्हें मारनेको तैयार नहीं। भीख माँगकर पेट पालना अच्छा ; परन्तु धन और ऐश्वर्यके लोभसे इस तरह कुलका नाश करना अच्छा नहीं। मुझसे यह व्यर्थकी हत्या न की जायेगी। मुझे क्षमा कीजिये, मैं युद्धसे अलग हो जाऊँगा।"

अर्जुनको इस प्रकार एकाएक चिन्तित और दया-परवश होते देख, भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें एक बड़ी लम्बी-चौड़ी, त्रिगुणमयी, लोक-पावनी और कर्म-प्रधान वक्तृता सुनायी, जिसे सुनकर अर्जुन-का मोह दूर हो गया। वे कर्मके महत्वको, भली-भाँति, समझ गये और जिस क्षात्र-धर्मको जलाञ्जलि देनेके लिये वे तैयार थे, उसपर आरूढ़ हो गये। भगवान्‌की यही वक्तृता आजकल संसारमें "गीता"* के नामसे प्रसिद्ध है, जिसे पढ़-सुनकर अज्ञानियोंको ज्ञान, मोक्षा-र्थियोंको मोक्ष, योगियोंको योग, भक्तोंको भक्ति और कर्मशील पुरुषोंको कर्म-योगका मार्ग मिल जाता है। इस वक्तृताका प्रभाव अर्जुनपर ऐसा पड़ा, कि वे कृष्णके प्रगाढ़ पाण्डित्यको देखकर मुग्ध

* यदि आप भगवान् श्रीकृष्णकी यह गीता, नवीन रूप और नये ढँगमें देखना चाहते हों, तो हमारे यहाँसे 'गीता-दर्शन' नामक अपूर्व ग्रन्थ शीघ्र मँगा देखिये। उसमें रंग-बिरंगे कई चित्र भी दिये गये हैं।

हो गये। उन्होंने तत्काल श्रीकृष्णके पैर पकड़ लिये और कहा,—"भगवन्! आपने आज मेरा बड़ा भारी भ्रम दूर कर दिया है। मेरे ज्ञानके नेत्र खुल गये हैं। अब मैं अवश्यही युद्ध करूँगा। शत्रु-कुलका संहार करके क्षत्रिय-धर्मका निश्चयही पालन करूँगा।" यह कह वे फिर रथपर सवार हो गये।

युद्धका आरम्भ।

इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने कौरव-दलमें जा, क्रमशः पितामह भीष्म, गुरुवर द्रोण, आचार्य कृप और मामा शल्यकी चरण-वन्दना की। सभीने उन्हें विजयी होनेके लिये आशीर्वाद दिये। युधिष्ठिरकी यह उदारता दुर्योधनके भाई युयुत्सुको बड़ी प्रिय मालूम हुई। उसने उसी समय कहा,—"दुर्योधन अधर्मी है। जो इसकी सहायता करे, वह भी अधर्मी है। बस, मैं अभी कौरवोंका पक्ष छोड़कर, पाण्डव-दलमें जा मिलता हूँ।" यह कह, वह पाण्डवोंकी ओर चला आया। इसके बाद दोनों पक्षोंकी युद्धारम्भ-सूचक दुन्दुभि, भीषण शब्द करती हुई, मानो मृत्युका आवाहन करने लगी।

पहले दिन भीष्मकी अधीनतामें कौरव-सेनाको, भीमके द्वारा परिचालित, पाण्डवीय सेनाका सामना करना पड़ा। खूब भीषण युद्ध हुआ। वीर बालक अभिमन्युके अमोघ बाणोंकी निरन्तर वर्षासे, परशुराम-विजयी, महाबली भीष्मको भी व्याकुल हो जाना पड़ा। इधर शल्यके हाथसे विराट्का पुत्र उत्तर स्वर्ग सिधारा। क्रुद्ध भीष्मदेवके बाणोंकी मार और भीषण आक्रमणसे पाण्डवोंकी मोर्चाबन्दी टूट गयी। सन्ध्या हो जानेपर दोनों पक्षोंके वीर, युद्धसे विरत हो, आराम करनेके लिये अपने-अपने डेरेमें चले गये।

दूसरे दिन पाण्डवोंके प्रधान नायक धृष्टद्युम्न, क्रौञ्चायन नामक

व्यूह बना कर, अर्जुनको साथ लिये, समर-भूमिमें अवतीर्ण हुए। भीष्मदेव भी व्यूह बनाकर युद्ध करनेके लिये अग्रसर हुए। भीष्म और अर्जुनमें भयानक युद्ध छिड़ गया।'

इधर धृष्टद्युम्नने भी भीषण वेगसे द्रोणपर आक्रमण किया। दोनों ओर भयङ्कर संग्राम होने लगा। अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाद्वारा क्षत-विक्षत शरीरवाले वीरोंकी देहसे रक्तकी नदियाँ बह चलीं। अकेले महावीर भीमसेनने कलिङ्गके शक्रदेव, भानुमान्, श्रुतायु, सत्य, सत्यदेव और केतुमान् नामक वीरोंको, देखते-देखते, धराशायी कर दिया। उधर अभिमन्युके साथ युद्ध करते-करते दुर्योधनके पुत्र, लक्ष्मणकी बड़ी भारी हार हुई। यह बात दुःशासनको बहुत बुरी लगी। उसने बड़े वेगसे अभिमन्युपर आक्रमण किया। दोनों वीर प्राण-पणसे एक दूसरेके आक्रमणोंको रोकनेका प्रयत्न करने लगे।

एक ओर अर्जुन, साक्षात् वीरभद्रकी मूर्त्ति बने, प्रबल पराक्रमसे युद्ध कर रहे थे। उन्हें देखनेसे ऐसा मालूम होता था, मानो शत्रु-सैन्यका संहार करनेके लिये साक्षात् यमही रणक्षेत्रमें उतर आये हैं। उनके तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे समस्त कौरव-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। यह देख, भीष्मजीने द्रोणाचार्यसे कहा,—"आचार्य! आज तो अर्जुनने बड़ीही उग्र मूर्त्ति धारण कर रखी है! उनकी मारके आगे, हमारी सेनाके पैर उखड़े जा रहे हैं। इधर सायङ्काल भी समीप है; अतएव मेरी रायमें तो आज युद्ध बन्द कर देना चाहिये, अन्यथा अर्जुनके हाथसे, आजही, कौरव-पक्षके समस्त चुने हुए वीरोंका नाश हो जायेगा।"

द्रोण, भीष्मकी इस सम्मतिसे, सहमत हो गये। युद्ध बन्द करनेके लिये भेरी बजादी गयी। सबने अस्त्र-शस्त्र रख दिये और विश्राम करनेके लिये अपने-अपने शिविरोंकी ओर प्रस्थान किया।

महाभारत

कृष्णका प्रतिज्ञा-भङ्ग ।

"श्रीकृष्ण चक्रकी तरह, रथका पहिया घुमाते हुए भीष्मके ऊपर आक्रमण करने दौड़े।"

[पृष्ठ—१६३]

श्रीकृष्णका क्रोध।

तीसरे दिन प्रातःकालसेही युद्ध आरम्भ हुआ। भीष्म, गरुड़-व्यूह और अर्जुन, अर्द्धचन्द्र-व्यूह बनाकर युद्धमें प्रवृत्त हुए। कुछ-ही कालमें, अर्जुनके भयङ्कर बाणोंकी मारसे, कौरव-सेनामें खल-बली मच गयी और वह भाग निकली। एक बाण स्वयं दुर्योधनको ऐसा लगा, जिसका आघात वह सहन न कर सका और मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह अवस्था देख, भीष्मका चेहरा क्रोधसे तम-तमाने लगा और उन्होंने बड़ेही वेगसे अर्जुनपर आक्रमण किया। यह आक्रमण बड़ाही भयङ्कर था।

इस आक्रमणसे पाण्डव-पक्षके वीर बहुतही घबराये। भीष्मकी भीषण बाण-वर्षासे अर्जुन, घायल होकर, कातर हो उठे। अर्जुन-की इस शिथिलतासे भीष्मको अच्छा अवसर हाथ आया। उन्होंने बात-की-बातमें पाण्डव-पक्षके सैकड़ों वीरोंको मार गिराया। यह दशा देख, कृष्णको बड़ी चिन्ता हुई। वे क्रुद्ध हो, उसी क्षण रथसे उतर, रथका पहिया निकाल, उसीको चक्रकी तरह घुमाते हुए, भीष्मके ऊपर आक्रमण करनेके लिये दौड़े। क्रोध और पाण्डवोंकी हित-चिन्तनाके आवेशमें वे अपनी उस प्रतिज्ञाको एकदम भूल गये, जो उन्होंने दुर्योधनसे, युद्ध आरम्भ होनेके पहले की थी। उन्होंने दुर्योधनसे कहा था, कि "मैं लड़ाईके मैदानमें हथियार न उठाऊँगा।" कृष्णकी वह क्रोध-भरी मूर्त्ति देख, कौरव-दलके लोग, मारे भयके, घबरा उठे; परन्तु भीष्म तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर अपना सिर उनके आगे झुका दिया और कहा,—"महाराज! ली-जिये, यह सिर आपकी भेंट है। मैं तो केवल यही देखना चाहता था, कि आप क्योंकर इस युद्धमें, हथियार उठाये बिना रहते हैं। अब

आप मुझे प्रसन्नता-पूर्व्वक मार गिरायें। मैं आपके हाथों मरकर सीधा स्वर्ग चला जाऊँगा। भला इसमें मेरी हानिही क्या है ?"

भीष्मकी इन बातोंने कृष्णका क्रोध शान्त कर दिया। उन्होंने रथका पहिया नीचे डाल दिया और अर्जुनसे कहा,—"अर्जुन ! तुम इतने बड़े धीर, वीर और ज्ञानी होकर भी, न जाने क्यों, कभी-कभी बड़ी शिथिलता दिखलाने लग जाते हो। तुम इसी विचारमें लगे रहते हो, कि ये मेरे दादा हैं, ये मेरे गुरु हैं, ये मेरे इतने निकट-सम्बन्धी हैं ; इनपर भला मैं क्योंकर निर्दयतासे आक्रमण करूँ ? परन्तु युद्धकालमें ऐसे विचार बड़ेही निन्दनीय समझे जाते हैं। तुम तो इधर इस प्रकार दया और प्रेमके कारण आक्रमण करनेमें शिथिल हो रहे हो और उधर तुम्हारी सेना, भीष्म-पितामहके बाणोंसे घास-पात की तरह कटती चली जाती है ! क्या तुम्हें इससे दुःख नहीं होता ?"

यह सुन अर्जुन बड़े लज्जित हुए और श्रीकृष्णके पैरोंपर गिरकर बोले,—"महाराज ! शान्त हूजिये। अब मैं अवश्यही मन लगाकर युद्ध करूँगा। आप रथपर बैठिये।"

अर्जुनकी बात सुन, श्रीकृष्ण बहुतही प्रसन्न हुए और सन्तुष्टचित्तसे रथपर जा बैठे। अर्जुनने अपनेको इस बार खूब सम्हाला और इतने वेगसे आक्रमण करना आरम्भ किया, कि कौरव-सेनामें हलचलसी मच गयी। भीष्मजीने बहुतेरा चाहा, कि जमकर युद्ध हो; परन्तु अन्तमें उनके योद्धाओंके पैर उखड़ही गये। अर्जुनके मुखपर विजयका गर्व झलकने लगा और वे बड़ेही हृष्टचित्तसे अपने शिविरमें लौट आये। सन्ध्या हो चुकी थी। युद्ध-विश्रामकी भेरी बज चुकी थी। अतएव थोड़ीही देरमें, रात्रिके अन्धकारके आवरणमें, सारे वीर मीठी नींद लेने लगे।

चौथे दिन और भी घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन भीष्मके साथ और शल्यादि पाँच वीर अभिमन्युके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए। कौरवोंने जब एक साथ मिलकर अर्जुन और अभिमन्युपर आक्रमण किया, तब धृष्टद्युम्नने भी कौरव-सैन्यपर धावा बोल दिया। इस युद्धमें दुर्योधनका भाई दमनक और उसका पुत्र संयमनी, दोनों मारे गये। उधर अभिमन्यु और शल्यमें घोर युद्ध होने लगा। दुर्योधन मागधके साथ, भीमको मारनेकी इच्छासे, अग्रसर हुआ। दुर्योधनने भीमके पास पहुँचकर एक बाण ऐसा चलाया, जिसके लगतेही भीमसेन, मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह देख, अभिमन्युने बाणोंकी वर्षासे दुर्योधनको क्षत-विक्षत कर डाला। थोड़ीही देरमें भीमकी मूर्च्छा भङ्ग हुई और उन्होंने आठ बाण दुर्योधनके तथा पचीस बाण शल्यके मारे। शल्य उनके लगातार आक्रमणोंको न सह सके और मैदान छोड़कर भाग निकले; परन्तु तो भी युद्ध बन्द न हुआ दुर्योधनके चौदह भाइयोंने एकसाथ मिलकर भीमपर हमला किया। भीम इससे तनिक भी न घबराये, बल्कि दूने उत्साहसे लड़ने लगे। देखते-देखते उन्होंने उसके सात भाइयोंको यमलोकका रास्ता दिखा दिया। बाकी सात भाई प्राण लेकर भाग गये।

उनके भागतेही भगदत्तने आकर भीमपर आक्रमण किया। थोड़ीही देर लड़ाई हुई थी, कि उसके शस्त्राघातसे भीम फिर अचेत हो गये। भीमको गिरते देख, उनका पुत्र घटोत्कच, अपनी सेनाके साथ, आ पहुँचा और ऐसा भयानक युद्ध करने लगा, कि कौरवोंके छक्के छूट गये। उसने कौरव-पक्षके बड़े-बड़े बहादुरोंको नाकों चने चबवा दिये। सब लोग भागने लगे। सायङ्काल हो जानेसे भीमने लड़ाई बन्द कर दी, नहीं तो अकेला घटोत्कचही उस दिन सारे कौरव-दलका संहार कर डालता।

दुर्योधनकी चिन्ता।

पाण्डवोंकी बार-बार विजय होती देख, दुर्योधन बड़ी चिन्तामें पड़ा। जबसे लड़ाई छिड़ी, तबसे बराबर पाण्डवोंकाही पल्ला भारी रहा; प्रतिदिन कौरव-दलकोही नीचा देखना पड़ता था। दुर्योधन समझ न सका, कि वह कौनसी युक्ति है, जिसके द्वारा वे नित्य ही युद्धमें जय-लाभ करते हैं; वह कौनसी शक्ति है, जो भीष्म, द्रोण, आदि महारथियोंकी भी कोई कला नहीं लगने देती? इसी उधेड़-बुनमें पड़ा हुआ दुर्योधन भीष्मके पास गया और रो-रोकर कहने लगा,—"बाबा! आप लोगोंके रहते हुए भी हमारा दिन-रात क्षय होता चला जाता है; यह क्या बात है? क्या आपलोग जी लगाकर नहीं लड़ते? अकेले भीमनेही मेरे कितने भाइयोंको मार डाला। बाबा! यह सब आपसे कैसे देखा जाता है?"

भीष्मने कहा,—"बेटा! हमलोगोंमें जहाँतक शक्ति है, वहाँतक युद्ध करनेमें पीछे नहीं हटते; परन्तु हो क्या? पाण्डवोंके सहायक श्रीकृष्ण हैं, अतः उनको पराजित करना कोई हँसी-खेल नहीं है। भगवान् वासुदेव बड़ेही बुद्धिमान, नीतिज्ञ और दूरदर्शी हैं। उनकी बराबरी इस संसारमें कोई नहीं कर सकता। जब वेही पाण्डवोंकी पीठपर हैं, तब उनका कोई कहाँतक बिगाड़ कर सकता है? मैंने तो तुमसे पहलेही कहा था, कि सन्धि कर लो, नहीं तो कौरव-वंशका भविष्य अच्छा नहीं दिखाई देता; पर उस समय तुमने मेरी एक न मानी। तुमपर तो लोभ, मोह और ईर्ष्याका आधिपत्य था। इन वैरियोंके फेरमें पड़कर तुमने अपने पैरोंमें आपही कुल्हाड़ी मारी है। जो हो, जय-पराजय विधाताके हाथ है; हमलोग अपनी सामर्थ्य-भर कुछ न उठा रखेंगे, इसका तुम पूरा विश्वास रखो।"

यह सुन, दुर्योधन उदास होकर अपने डेरेमें चला आया। पाँचवें दिन, थोड़ी रात रहते ही, पाण्डवों और कौरवोंने अपने-अपने व्यूह तैयार कर लिये। पाण्डवोंने 'श्येन-व्यूह' और कौरवोंने 'मकर-व्यूह'की रचना की। सबसे पहले भीम और भीष्मका युद्ध होने लगा। पितामहके प्रचण्ड रण-कौशलसे, जब पाण्डव-पक्ष विचलित होने लगा, तब अर्जुन भी आ मिले और खूब घमासान युद्ध करने लगे। रक्तकी नदीसी बह चली। इधर सात्यकि और द्रोणकी लड़ाई छिड़ गयी। द्रोणने सात्यकिको हराकर बन्दी बना लिया। भीमसे यह न देखा गया। वे बेतरह क्रुद्ध होकर द्रोणपर टूट पड़े और मारे बाणोंके उन्हें सिरसे पैरतक ढक दिया। अन्तमें भीमने सात्यकिको छुड़ाही लिया! इसपर भीष्म, द्रोण और शल्यने, क्रोधमें आ, एक साथ भीमपर आक्रमण किया। यह देख अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको साथ लिये हुए, चाचाकी सहायताके लिये अग्रसर हुआ। इसी बीच शिखण्डीने आकर धनुषके ऊपर बाण चढ़ाया और भीष्म तथा द्रोणपर निशाना बाँधा। भीष्मकी शिखण्डी-के साथ न लड़नेकी प्रतिज्ञा थी; अतएव, उसे देखतेही, भीष्मने हथियार रख दिये और उसका बाण खाकर भी चुप हो रहे। भला द्रोणसे यह कब देखा जा सकता था? उन्होंने भीषण बाण-वर्षाकर कुछही देरमें शिखण्डीको मार भगाया।

उस दिनकी लड़ाईमें सात्यकिके दसों बेटे काम आये। उधर अकेले अर्जुनके हाथोंसे कौरवोंके पचीस हज़ार महारथियोंका संहार हुआ। सन्ध्या हो चली थी; अतएव युद्ध रोक दिया गया।

छठे दिन फिर लड़ाई होने लगी। आजकी लड़ाईमें धृष्टद्युम्न और भीमसेनकीही बहादुरी रही। भीम रथसे नीचे उतर, हाथमें गदा ले, एक ओरसे वीरोंकी खोपड़ियाँ चूर-चूर करने लगे। उन्होंने

अनेक पैदल और गजारोही सैन्यका संहार कर डाला। धृष्टद्युम्न बराबर उनकी सहायता करते रहे। इन दोनोंने मिलकर सारे कौरव-दलको छिन्न-भिन्न कर दिया। यह देख, द्रोणाचार्य वहाँ आ पहुँचे। पाण्डवोंकी सेना उनके आक्रमणका वेग न सह सकी। एकदम भगदड़सी मच गयी। जिसका जिधर सींग समाया, वह उधर ही भाग निकला। पाण्डव, लाख चेष्टा करनेपर भी, इस भागा-भागको न रोक सके। आज भी कुछ देरके लिये भीष्म और अर्जुनमें युद्ध हुआ; परन्तु कोई उल्लेख करने योग्य घटना, नहीं हुई।

सातवें दिन फिर युद्ध आरम्भ हुआ। भीष्म 'मण्डल-व्यूह' और पाण्डव 'वज्र-व्यूह' बनाकर युद्ध करने लगे। द्रोणकी बाण-वर्षासे द्रुपदका पुत्र मारा गया और राजा विराट् मैदानसे भाग निकले। अश्वत्थामाके हाथसे शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके हाथसे दुर्योधन, नकुल-सहदेवके हाथसे शल्य, युधिष्ठिरके हाथसे श्रुतायु और भीष्मके हाथसे युधिष्ठिरकी हार हुई। साँझ होनेपर दोनों दलोंने अपने-अपने शिविरोंमें जाकर विश्राम किया।

भीमके हाथसे कौरव-पक्षके सुनाम, पांड्य, आदित्यकेतु, महोदर, बह्वाशी, कण्डवीर और विशालाक्ष नामक दुर्योधनके आठ भाई मारे गये। अर्जुनके पुत्र, इरावान्ने भी, इस लड़ाईमें बड़ी वीरता दिखलायी; पर अन्तमें वह मारा गया। मरते-मरते भी उसने शकुनिके छः भाइयोंको यमराजके घर भेज दिया। अर्जुन उस समय दूसरी ओर लड़ रहे थे; भीमका उस समय बड़ाही रुद्र रूप था। उन्होंने केवल दुर्योधनके भाइयोंकोही नहीं मारा, बल्कि बड़े-बड़े वीरोंको सदाके लिये पृथ्वीपर सुला दिया। रात हो जानेपर भी लड़ाई होती रही। जब बिल्कुलही अँधेरा छा गया, तब सब लड़ाके अपने डेरोंमें जाकर आराम करने लगे।

भीष्मकी भीषणता ।

आज दुर्योधनके चेहरेपर बेतरह हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह बड़ाही हतोत्साह होकर अपने शिविरमें लौटा और कर्ण, दुःशासन तथा शकुनिको बुलाकर परामर्श करने बैठा। पाण्डवोंको हरानेकी युक्तियाँ सोची जाने लगीं। घमण्डी कर्णने कहा,—"जबतक भीष्म लड़ेंगे, तबतक मैं हथियार न उठाऊँगा; तुम उनसे कहो, कि हथियार रखकर, चुपचाप तमाशा देखें। फिर देखना, मैं अकेलाही पाण्डवोंका संहार कर डालता हूँ या नहीं।"

यह सुन दुर्योधन उसी समय भीष्मके पास पहुँचा और बोला, "पितामह! आप पाण्डवोंको पराजित करनेमें अनावश्यक विलम्ब कर रहे हैं। यदि आपकी ममता उन्हींपर अधिक हो, तो आप स्पष्ट कहिये, मैं वीरवर कर्णको सेनाका अधिनायक बनाऊँ। वे पाण्डवोंको निश्चयही हरा देंगे।"

दुर्योधनकी इस बातसे भीष्म-देवको बड़ा दुःख हुआ। वे थोड़ी देरतक आँखें बन्द किये कुछ सोचते रहे, इसके बाद नेत्र खोलकर बोले,—"वत्स! मैं प्राणोंका कुछ भी मोह न कर, तुम्हारे कामको अपना कर्त्तव्य समझकर, इस युद्धमें जी-जानसे जुटा-घुटा हूँ, तो भी तुम मुझीपर वृथा दोषारोपण करते हो! क्या यह तुम्हारे लिये उचित है? अच्छा लो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि कल मैं बड़ा भयानक युद्ध करूँगा। वैसा युद्ध इस भारत-भूमिमें कभी न हुआ होगा। इसकी याद पीढ़ी-दर-पीढ़ीतक बनी रहेगी। कलके भयानक युद्धकी कथा, भारतके इतिहासमें, ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखी जायेगी। कल या तो मैं पाण्डवोंके छक्केही छुड़ा दूँगा या स्वयं उनके हाथों मारा जाऊँगा।" यह सुन दुर्योधन प्रसन्न मनसे डेरेमें चला गया।"

नवें दिन जो युद्ध हुआ, वह सचमुच महायुद्ध था। उस दिन बड़े-बड़े वीरोंके हुंकारसे, पृथ्वी काँप उठी। आज भीष्मने सर्वतो-भद्र नामक व्यूहकी रचना की थी और युधिष्ठिरने महाव्यूहकी। शंख-ध्वनि होतेही दोनोंपक्ष, मरने-मारनेके लिये, आमने-सामने आ डटे। सोलह वर्षके वीर बालक अभिमन्युके आक्रमणसे कौरव-सेनामें 'त्राहि-त्राहि' मच गयी। जयद्रथ, अश्वत्थामा, द्रोण और कृप आदि महावीर, एक-एक करके, उसके सामनेसे हटने लगे। उस समय ऐसा मालूम होने लगा, मानो आज दो अर्जुन रण-क्षेत्रमें उतर आये हैं! जब अभिमन्युका कोई, किसी तरह, दमन नहीं कर सका, तब भीष्मदेव स्वयं उसकी ओर बढ़े; पर अर्जुनने उन्हें बीचमेंही अटका लिया। दोनों आपसमें भिड़ गये। दुर्यो-धनके आगे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार, उस दिन, उन्होंने महाभया-नक युद्ध किया। सहस्र-सहस्र पाण्डव-पक्षीय वीर, बात-की-बातमें, धराशायी होने लगे। अर्जुनका कठिन कलेजा भी भीष्मके प्रतापको देखकर काँप गया। वे हारनेका स्वप्न देखने लगे। अर्जुनको इस प्रकार विह्वल होते देख, श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा,—"अर्जुन! क्या तुम्हारे हृदयमें दया उत्पन्न होती है? क्या पितामहकी प्रतिष्ठाका भाव उदय हुआ है? देखते क्या हो? भीष्म बड़ा अनर्थ कर रहे हैं, उन्हें शीघ्र मारो।"

अर्जुनने कहा,—"भगवन्! हमलोग सदाके दयालु हैं। यदि राज्य पानेके लिये हमलोग पहलेसेही निर्दयताका अवलम्बन कर लेते, तो तेरह वर्षतक जङ्गलोंकी धूल क्यों फाँकते? अच्छा चलिये, आप-की आज्ञा शिरोधार्य है।"

परन्तु अर्जुनकी एक न चली। भीष्म लगातार सैन्य-संहार करते रहे। रात होनेतक भीष्मने भयङ्कर युद्ध करके हज़ारों वीरोंको

सदाके लिये अनन्त निद्रामें सुला दिया। आज जैसी हानि पाण्डवोंने कभी न उठायी थी। समस्त पाण्डव-सैन्यमें भीषण शोक छा गया!

भीष्मकी महत्ता।

युद्धमें बुरी तरह हारे हुए पाण्डव, रातको, कृष्णके साथ भीष्मके पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने पितामहसे अपने जीतनेका उपाय पूछा। भीष्मने कहा,—"जबतक मेरे हाथमें शस्त्र है, तबतक तुम्हारा जीतना असम्भव है। यही नहीं, कदाचित् देवताओंके लिये भी मेरा सामना करना कठिन है; परन्तु अब मेरा मन संसारसे ऊब गया है—मुझे क्षणभर भी यहाँ रहनेकी इच्छा नहीं होती। तुमलोग धर्मनिष्ठ हो; तुमने सदा धर्मके अनुसार आचरण किया है; अतएव मैं हृदयसे तुमलोगोंपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारे हाथों मुझे वीर-गति प्राप्तहो, इससे बढ़कर और क्या चाहिये? तुम मुझसे मेरे हारनेका उपाय पूछने आये हो, इससे मैं और भी आनन्दित हुआ हूँ। युद्धकेही समय मैं तुम्हारा शत्रु हूँ; पर विश्रामके समय तुम मेरे पोते और मैं तुम्हारा बूढ़ा दादा हूँ। अच्छा, सुनो—तुम्हारे सैन्य-दलमें द्रुपदका बेटा जो शिखण्डी है, वह पूर्व जन्ममें स्त्री था। उसने शङ्करकी तपस्याकर मेरे वध करनेका वर प्राप्त कर लिया है। द्रुपदके यहाँ भी वह कन्याकेही रूपमें पैदा हुआ था; परन्तु एक दानवके वरदानसे वह पुत्र हो गया; तो भी अभीतक उसका स्त्रीत्व पूरी तरहसे नहीं गया है—वह नपुंसक, निर्वीर्य है। उसे मेरे सामने कर दो। मैंने प्रतिज्ञा की है, कि मैं स्त्री और नपुंसकोंपर हथियार न चलाऊँगा; अतएव, उसे देखतेही मैं अस्त्र-शस्त्र रख दूँगा। उसी अवसरमें तुम मेरा वध कर डालना। मैं क्षत्रियकी तरह संग्राममें प्राण देनेके लिये बड़ा लालायित हूँ।"

यह सुन पाण्डवगण, पितामहको प्रणामकर, अपने शिविरकी ओर चले ; परन्तु भीष्म-पितामहकी उदारता और सरलतासे वीर अर्जुन बहुतही मुग्ध हुए और अपनेको धिक्कारने लगे, कि 'ऐसे उदारचेता, महाप्राण व्यक्तिको, स्नेहके आडम्बर दिखलाकर, हमने उसके मारनेका उपाय उसीसे पूछ लिया !' अर्जुनका मुख लज्जा और आत्मग्लानिसे नीचा हो गया। चेहरेका रङ्ग उड़ गया और आँखोंमें स्नेह तथा आदरके भावाधिक्यके कारण आँसू आ गये। यह देख, परम राजनीतिज्ञ श्रीकृष्णने, तरह-तरहके उपदेशों-द्वारा, अर्जुनको समझाना शुरू किया और उनका मोह दूर कर दिया।

भीष्मका पतन।

दसवें दिन फिर युद्धका डङ्का बजा। दोनों ओरके सैनिक हवें-हथियारोंसे सजकर तैयार हो गये। भीमसेनके भीषण बाणोंकी मारसे कौरव-सेना कातर हो उठी। सात्यकि, सहदेव और नकुलके आक्रमणोंसे पीड़ित हो कौरव-वीर, पीठ दिखाते हुए, भाग चले। यह देख, महावीर भीष्मपितामह युद्ध करनेको अग्रसर हुए। उन्होंने धनुष-बाण उठातेही ऐसी बाण-वर्षा की, कि उनके रथका मार्ग मुर्दोंसे भर गया—उनका मुँह देखनेसेही वे पूरे कालान्तक यमकी नाईं दिखाई पड़ते थे। अकेले भीष्मने उस दिन दस हज़ार गजारोही, दस हज़ार घुड़सवार और एक लाख पैदल सैनिकोंको मार गिराया ! पाण्डव-दलमें घोर आतङ्क और विकट शोक छा गया ! इसी समय भीष्मने देखा कि, सामनेसे शिखण्डी धनुष-बाण लिये आरहा है। उन्होंने झट उस ओरसे मुँह फेर लिया और एकाग्र मनसे पाण्डव-सेनाका संहार करने लगे। ऐसा सुयोग पाकर शिखण्डीने पितामहके शरीरमें असंख्य बाण मारे ; किन्तु उससे वे

तनिक भी विचलित न हुए, वे अपना—शत्रु-सैन्यके संहारका—कार्य पूर्ववत् करते रहे। इतनाही नहीं, उन्होंने अर्जुनपर एक बड़ा भारी आक्रमण भी किया। इस आक्रमणसे अर्जुन एक बार बड़ेही विचलित हुए; उनका स्थिर रहना कठिन होगया। थोड़ी देरतक चिन्ता करनेके बाद, उन्हें पितामहकी वह बात याद आयी, जो उन्होंने अपने मरनेके विषयमें बतलायी थी। बात याद आतेही वे झट, शिखण्डीके पीछे चले गये और उसीकी आड़ लेकर, भीष्मपर बाण-वर्षा करने लगे। शिखण्डी तो पहलेसेही तीर चला रहा था, अब उसे अर्जुनका सहारा मिल गया। साथही और-और वीर भी भीष्मकेही ऊपर टूट पड़े; क्योंकि सबका यह विश्वास था, कि जबतक यह बूढ़ा शेर जीता रहेगा, तबतक कौरव-पक्ष कभी निर्बल नहीं हो सकता। किन्तु भीष्म सारे आक्रमणोंको कभी सहते और कभी बचाते हुए, युद्ध करतेही गये।

अर्जुनने भीष्मका धनुष काट डाला; पर उन्होंने तुरतही नया धनुष लेकर युद्ध करना आरम्भ किया। यह धनुष भी अर्जुनने काट डाला। अबके उन्होंने तीसरा धनुष हाथमें लिया। वह भी काट डाला गया। तब उन्होंने एक साँग उठाकर अर्जुनपर बड़े ज़ोरसे फेंकी; पर वह भी बीचसे काट डाली गयी।

तब भीष्मने मन-ही-मन सोचा,—"यदि श्रीकृष्ण न होते, तो आज मैं सारे पाण्डव-पक्षको यमलोक भेज देता; परन्तु नहीं, अब मुझे लड़ाई-भिड़ाईसे क्या काम है? मरनेके लिये इससे बढ़कर अच्छा अवसर बार-बार हाथ न आयेगा।"

इधर अर्जुन बारम्बार तीर छोड़ते हुए, उनके शरीरको चलनी किये डालते थे। कुछही देरमें भीष्मके, शरीरका एक-एक अङ्ग घावोंसे भर गया और वे सूर्यास्तके कुछही पहले रथसे नीचे लुढ़क

पड़े। उनके गिरतेही कौरव-सेनामें हाहाकार मच गया। लोग उनके लिये कोमल तोशक और तकियेकी व्यवस्था करने लगे ; पर उन्होंने बाणोंकी शय्यापरही सोना स्वीकार किया। वे पृथ्वीपर न सो सके ; उनके लिये तीरोंकीही सेज बिछी। वे सदाके लिये मानों पृथ्वीके स्पर्शसे भी पृथक् हो गये। भीष्मदेवने अपने पितासे इच्छा-मृत्युका वर प्राप्त किया था। उन दिनों सूर्यदेव दक्षिणायन थे ; सूर्यके दक्षिणायन रहते हुए जिसकी मृत्यु होती है, उसकी सद्गति नहीं होती ; इसी लिये वे सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षामें मृत्युके निश्चित समयकी बाट देखने लगे।

भीष्मकी शर-शय्या।

भीष्मके गिरतेही उस दिनका युद्ध बन्द हो गया। पाण्डवोंके दलमें आनन्दके बाजे बजने लगे। कौरवोंकी हाहाकार-ध्वनिसे दशों दिशाएँ काँप उठीं। युद्ध बन्द हो जानेपर, दोनों पक्षोंके, मुख्य-मुख्य वीर और सम्माननीय पुरुषगण, मलिन मुख तथा शिथिल शरीरसे भीष्मदेवके पास आये। उस समय कौरवों और पाण्डवोंको एकत्र देख, पितामहके प्राण पुलकित हो उठे। उन्होंने गद्गद् कण्ठसे कहा,—"हे वीरगण ! इस समय तुम लोगोंको एकत्रित देखकर मुझे बड़ाही आनन्द हो रहा है। देखो, मेरा सिर लटक रहा है। ज़रा इसके सहारेके लिये कोई उपयुक्त तकिया तो लगा दो।"

कितनेही लोग भाँति-भाँतिके तकिये लेकर दौड़े ; पर भीष्मने उनमेंसे किसीको भी पसन्द नहीं किया। अन्तमें उन्होंने अर्जुनकी ओर देखा। पितामहके मनका भाव जान, अर्जुनने तीन बाण मारकर, उनका सिर ऊँचा कर दिया। यह देख, भीष्मने, प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा,—"बेटा ! क्षत्रियके लिये बाणोंका बिछौना

और बाणोंका तकियाही ठीक है ! अर्जुनने मेरे हृदयका भाव ठीक-ठीक समझा और किसीने नहीं। मैं तो सूर्यके उत्तरायण होनेतक इसी तरह पड़ा रहूँगा ; तुम लोग मेरी शय्याके चारों ओर खाई खोद दो, तो अच्छा हो। मैं तो अब चला ; पर अच्छा हो, यदि मेरा बलिदान करके भी तुमलोग सन्धि कर लो।"

इतनेमेंही दुर्योधन वैद्यों और शस्त्र-चिकित्सकोंको लिये हुए आ पहुँचा; पर पितामहने उन्हें लौटा दिया। अन्तमें उनकी रक्षाके लिये रक्षक नियुक्तकर, सब अपने-अपने शिविरोंमें चले गये।

प्रात:काल सब लोग भीष्मको प्रणाम करने आये। औरत, मर्द, बूढ़े, बच्चे, सबने देवताकी भाँति धूप, दीप, नैवेद्य और पुष्प चन्दनसे उनकी पूजा की। आर्य-सभ्यताके वे दिन कैसे गौरवके थे, जब कि परिवारका वृद्ध, देवताकी भाँति, पूजा जाता था ! अब तो वे बूढ़े या पुराने खूसट कहे जाते हैं और सठियाई हुई बुद्धिका खिताब पाते हैं। युग-युगकी सभ्यताका आदर्शही अलग है !

अस्तु; जब सब लोग उनकी पूजा-प्रतिष्ठा कर चुके, तब भीष्मने पीनेके लिये जल माँगा। तत्कालही लोग सोनेकी झारियोंमें तरह-तरहके सुगन्धित जल और शरबत लेकर दौड़े ; पर भीष्मने उन्हें छुआतक नहीं। वे खिन्न होकर बोले,—"अब मैं इस संसारसे चलनेकी तैयारी कर रहा हूँ। अब मेरी प्यास इस साधारण जलसे नहीं मिटेगी ? अर्जुन कहाँ है ?"

अर्जुन वहीं उपस्थित थे। भीष्मके मुँहसे उक्त बात निकलतेही वे झट आगे बढ़ आये और बोले,—"क्या आज्ञा है, बाबा ?"

भीष्मने कहा,—"बेटा ! तुमने अपने बाबाको उचित उपाधान प्रदान किया है ; अब उचित जलकी भी व्यवस्था कर दो।"

अर्जुन उनके मनकी बात ताड़ गये। उन्होंने गाण्डीव धनुष

उठाकर उसपर पर्जन्यास्त्र नामक बाण चढ़ाया और उनकी दाहिनी ओर पृथ्वीमें खींच मारा। साथही पृथ्वी छिद गयी और अमृतके समान जलकी धारा फूट निकली। उसीसे अर्जुनने भीष्मकी प्यास बुझायी।

पानी पीकर भीष्मने वारम्बार अर्जुनको आशीर्वाद देते हुए कहा,—"बेटा! तुमसा धनुर्धर अब इस संसारमें दूसरा नहीं है। दुर्योधनने मेरी बात न मानी—उसके सिरपर काल नाच रहा है।"

दुर्योधन पासही बैठा था। भीष्मकी यह बात सुन, वह बहुत जला। उसका चेहरा देखकरही भीष्म उसके हृदयका भाव समझ गये; बोले,—"इस पृथ्वीपर श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान धनुर्धारी कोई नहीं है। सब तरहके अस्त्र-शस्त्रोंका चलाना और रोकना, इन्हीं दोनोंको मालूम है। बेटा! अब इनसे वैर छोड़ दो। मेरी मृत्युके साथ-साथ यदि तुम लोगोंके युद्धका भी अन्त हो जाये, तो मैं बड़े सुखसे मरूँगा। यदि मेरी बात मान लोगे, तो सुखी होगे; न मानोगे, तो पछताओगे।"

कर्णकी सहृदयता।

इतना कहकर महात्मा भीष्म चुप हो गये। कुछ देर बाद सब लोग अपने-अपने डेरोंकी ओर चले गये।

इधर महवीर कर्णने जब भीष्मकी शर-शय्याका हाल सुना, तब वे पहलेका सारा वैर भूल गये और तत्काल उनके पास आकर उपस्थित हुए। आँखें बन्द किये हुए, खूनसे सराबोर, अन्तिम शय्यापर लेटे हुए, गुरु-पितामहको देखकर दयावान् कर्णका कण्ठ भर आया। वे उनके पैरोंपर गिरकर कहने लगे—

"हे महात्मन्! आपकी आँखोंके सामने रहनेपर, आप, सदैव

जिसपर अप्रसन्न रहते थे, वही राधेयका पुत्र कर्ण आपको भक्ति सहित प्रणाम करता है। मुझे क्षमा करेंगे। मैं आपकी बातोंका प्रतिवाद कर, हमेशा आपको रुष्ट कर दिया करता था। बाबा! क्या उस पापकी क्षमा नहीं है? मुझे इस समय मन-ही-मन बड़ा अनुताप हो रहा है।"

यह वचन सुनकर भीष्मने बड़े कष्टसे आँखे खोलीं। उन्होंने देखा, आनेवाला कर्णके सिवा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है। तब उन्होंने संतरियोंको दूर हटाकर, कर्णको, पिताकी तरह, दाहने हाथसे छातीसे लगाया और बड़े प्रेमसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

"हे कर्ण! यद्यपि तुमने सदाही हमारे साथ स्पर्द्धा की है, सदाही हमसे ईर्ष्या-द्वेष रखा है। तथापि इस समय यदि तुम हमारे पास न आते, तो हम निश्चय ही बहुत दुःखी होते, हमने यह बात बहुत विश्वस्त सूत्रसे सुनी है, कि तुम राधाके पुत्र नहीं; वरन् कुन्तीके पुत्र हो। हम सच कहते हैं, कि हमने तुमसे कभी द्वेष नहीं किया। तुम पाण्डवोंका विरोध किया करते थे; इस लिये, हम कभी-कभी कठोर वचन कहकर, तुम्हें राहपर लानेका यत्न करते थे। हम चाहते थे, कि तुम्हें अपने स्वरूप का—अपने तेजका—ज्ञान हो जाये। हम इस बातको बहुत अच्छी तरह जानते हैं, कि तुम बड़े वीर और बड़े धर्मात्मा हो। पहले जो तुमपर हमारा क्रोध था, वह आज बिल्कुल जाता रहा। हे वीर-शिरोमणे! पौरुष और यत्नकी अपेक्षा भाग्यही बलवान् है। अतएव वृथा युद्ध करनेसे क्या लाभ? तुम यदि अपने सहोदर भाई पाण्डवोंसे मेल कर लोगे, तो यह सारा वैर-भाव मिट जायेगा। अतएव हमारी इच्छा है, कि हमारे प्राण-नाशसे ही युद्धकी समाप्ति हो जाये। तुमने दुष्टोंका साथ किया है; इसलिये

तुम बुरे बन रहे हो, नहीं तो तुमसा दानी,वीर और धर्मात्मा दूसरा कौन है ? जाओ अब अपने भाइयोंसे जा मिलो। मैं तुम्हारे सब अपराध क्षमा करता हूँ। तुम्हारे पाण्डवोंसे मिल जानेपर युद्ध अवश्यही रुक जायेगा।"

कर्णने कहा,—"बाबा! यही एक बात नहीं हो सकती। और जो कुछ आप कहें, मैं करनेको तैयार हूँ। दुर्योधनके साथ मैं त्रिकालमें भी विश्वासघात नहीं कर सकता। जो उसके शत्रु हैं, वे मेरे भी परम शत्रु हैं।"

भीष्मने ज्ञानकी दृष्टिसे देखा; जो सर्वनाश होनेवाला है, वह होकरही रहेगा; उसको टालनेका प्रयत्न करना व्यर्थ है।

"अच्छा, जैसा उचित जान पड़े, वैसाही करना।"—यह कह पितामहने कर्णको विदा कर दिया। कर्ण, सोचते-विचारते, नीचा सिर किये, डेरेकी ओर चले गये।

द्रोण-पर्व

महाभारतका मध्य ।

शर-शय्या-शायी, आदर्शवीर महात्मा भीष्मके पाससे चलकर कर्ण, कौरव-दलमें आये । उन्होंने तरह-तरहके आश्वासन देकर, अपने घबराये हुए दुःखी सैनिकोंके मृत प्राय प्राणोंमें, पुनः सञ्जीवनी-शक्ति भर दी । कर्णकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी । भीष्मदेव निकम्मे होकर गिर गये थे ; अतएव उन्होंनेही समस्त सेनाका सञ्चालन करना आरम्भ किया । दुर्योधनको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने कहा,—"मित्र ! तुम्हारा तो मुझे पहलेसेही बड़ा भारी भरोसा था । सच पूछो, तो यह युद्धही मैंने तुम्हारे बल-भरोसेपर ठाना है । पितामहके मरनेसे कौरव-सेना अनाथसी हो गयी थी ; परन्तु जबतक तुम्हारे हाथोंमें शक्ति है, तबतक वह कदापि अनाथ नहीं हो सकती । पितामह मन-ही-मन पाण्डवोंपर प्रेम रखते थे , नहीं तो यदि वे चाहते, तो कभीके उन्हें यमलोक पहुँचा चुके होते । अब तुम्हारे मैदानमें उतर आनेसे निश्चयही पाण्डवोंकी मृत्यु होगी ।"

कर्णने कहा,—"तुम्हारा मेरे ऊपर जो भरोसा है,उसे मैं निश्चय ही सच कर दिखाऊँगा । आजसे मैं सेनाकी सहायताके लिये कमर कसता हूँ और सदा शत्रु-सैन्यके ध्वंसकी चेष्टा करूँगा ; पर मेरी राय है, कि भीष्मपितामहके स्थानमें गुरु द्रोणको सेनाध्यक्ष बनाया

जाये। उनसे बढ़कर मुझे और कोई योग्य सेना-नायक दिखलाई नहीं देता। उनके रहते मेरा अध्यक्ष बनाया जाना ठीक नहीं; अतएव तुम शीघ्रही उनके पास जाओ।"

कर्णके कहे अनुसार, दुर्योधन, द्रोणके पास जाकर बोला,—"गुरुदेव! आप हम सबोंके आचार्य हैं, तिसपर आपने विमल ब्राह्मण-वंशमें जन्म ग्रहण किया है; अतएव हमलोगोंकी इच्छा है, कि भीष्मपितामहका स्थान आपही ग्रहण करें। जैसे इन्द्र सब देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसेही आप भी हमारी रक्षा कीजिये।"

द्रोणने कहा,—"बेटा! तुम्हारी इच्छा मैं अवश्य पूरी करूँगा। जहाँतक मुझमें विद्या, बुद्धि और शक्ति होगी, वहाँतक मैं तुमलोगोंका मङ्गल-साधन करूँगा। मैं अपने नुकीले बाणोंसे नित्य असंख्य वीरोंको धराशायी करता रहूँगा; परन्तु एकमात्र धृष्टद्युम्नसे मैं न लड़ूँगा। वह मेरा मारा मरेगा भी नहीं; क्योंकि उसका जन्मही मुझे मारनेके लिये हुआ है।"

द्रोणके सेनापतिका पद स्वीकार करतेही, समस्त कौरव-सैन्यमें आनन्द-कोलाहल होने लगा। सबने बड़े हर्षसे, 'जय-जय' की ध्वनि करते हुए उनका, अभिनन्दन किया। इस आदर-सत्कारसे द्रोण, बहुतही प्रसन्न होकर बोले,—"दुर्योधन! कौरवोंमें श्रेष्ठ, भीष्म-पितामहके बादही मुझे सेनापति बना और इतना आदर-सत्कारकर, तुमने यथार्थही मुझे बड़ा सुखी किया है। कहो, अब तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं कौनसा कार्य करूँ?"

दुर्योधनने कहा,—"गुरुदेव! यदि आप मुझपर सचमुच प्रसन्न हैं, तो युधिष्ठिरको जीवितावस्थामेंही पकड़ लाइये।"

इसपर द्रोणने कहा,—"धन्य हैं युधिष्ठिर, जिन्हें तुम भी नहीं मारना चाहते! सच है, संसारमें उनका कोई शत्रु नहीं है।"

यह सुन दुर्योधनने कहा,—"नहीं, महाराज! यह बात नहीं है। युधिष्ठिरको यदि हमलोग मार डालेंगे, तो अर्जुन हममेंसे एकको भी जीता न छोड़ेगा। पर यदि वे हमारे यहाँ बन्दी बनकर आयेंगे, तो फिर हमलोग उन्हें जुएमें हराकर जङ्गलकी हवा खिलायेंगे।"

दुर्योधनकी कुटिलता-भरी बातोंसे द्रोण दुःखी हुए। उन्होंने कहा,—"जबतक अर्जुन युधिष्ठिरकी रक्षा करता रहेगा, तबतक मैं तो क्या, कोई भी वीर युधिष्ठिरको पकड़ नहीं सकता। अर्जुन मेरा शिष्य है सही; परन्तु उसने स्वयं शिवजीसे अलौकिक अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये हैं। हाँ,यदि तुम लोग अर्जुनको किसी तरह अन्यत्र ले जाओ और युधिष्ठिर भाग न जायें, तो मैं अवश्य उन्हें पकड़ लाऊँगा।"

यह सुन संसप्तकों और त्रिगर्त्तोंके राजा, सुशर्माने प्रतिज्ञा की, कि हमलोग अवश्य अर्जुनको युधिष्ठिरसे अलग ले जाकर अटका रखेंगे।

दूतोंने यह समाचार महाराजा युधिष्ठिरको जा सुनाया। उन्होंने अर्जुनको बुलाकर सारा हाल सुनाते हुए कहा,—"भाई! आज तुम मेरेही पास रहकर युद्ध करना; कहीं अन्यत्र न चले जाना।"

इसपर अर्जुनने कहा,—"मेरे शरीरमें प्राण रहते, कोई आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। आप तनिक भी चिन्ता न करें।"

ग्यारहवें दिन फिर लड़ाई होने लगी। द्रोणने मारे बाणोंके पाण्डव-सेनामें ऐसा आतङ्क फैला दिया, कि सबके होश उड़ गये। उनकी उस भीषण बाण-वर्षासे पाण्डवोंकी सेना, घासकी तरह, कटने लगी। इतने वीर मारे गये, कि जिसका ठिकाना नहीं। यह देख, युधिष्ठिर, भीम आदिने मिलकर, द्रोणपर आक्रमण करना शुरू किया। बड़ाही भयङ्कर संग्राम होने लगा। महाबली अर्जुनने, बात-की-बातमें, कौरवीय सेनाका इतना संहार किया, कि सबके छक्के छूट गये। भीम, कर्ण, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न,

शल्य, अभिमन्यु, सात्यकि आदि, परस्पर, बड़ी देरतक घमासान युद्ध करते रहे। दोनों ओरके अनेकानेक योद्धा, सदाके लिये, गम्भीर निद्रामें सोने लगे। देखते-देखते पाण्डवोंका पक्ष बड़ा प्रबल हो उठा। उसका आक्रमण,कौरवोंके लिये असह्य हो गया। कौरव-सेना हाहाकार करती हुई भाग चली। यह देख द्रोण, ललकार-ललकारकर, उन्हें ठहराने लगे। कुछ लोग तो उनकी बात सुनी-अनसुनीकर भागही गये ; पर सारी सेना नहीं भागी। वह आचार्यके अश्वासनपर भरोसाकर, प्राणोंकी ममता छोड़, फिर लड़ने लगी।

अबके द्रोणने युधिष्ठिरपर बड़ा भयानक आक्रमण किया। बड़े-बड़े पाण्डव-पक्षीय वीर, द्रोणके चुटीले बाणोंकी मारसे, घायल होने लगे। शिखण्डी, उत्तमौजा, नकुल, सहदेव, सात्यकि आदि योद्धा बुरी तरह पराजित हुए। तब द्रोण युधिष्ठिरको पकड़नेकी चेष्टा करने लगे। द्रोणकी गति-विधिका अनुमानकर विराट्, द्रुपद, कैकेय शिवि और व्याघ्रदत्त आदि वीर युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ; परन्तु द्रोणके आगे वे कबतक ठहर सकते थे ? व्याघ्रदत्त और सिंहसेन तो मारे गये ; पर बाक़ी वीर, उनका सामना न कर सकनेके कारण, पीछे हट आये। अब द्रोणका युधिष्ठिरके पास जानेका मार्ग खुल गया। यह देख, पाण्डव-सैन्यमें हाहाकार मच गया और सबको भय होने लगा, कि अब महाराजा युधिष्ठिर पकड़े गये। उधर कौरव-पक्षमें आनन्दकी ध्वनि होने लगी।

इसी समय शत्रु-सेनाको मारते-काटते अर्जुन वहाँ आ पहुँचे। उनकी सूरत देख बहुतसे वीर हतोत्साह हो गये। युधिष्ठिरको खतरेमें देख, अर्जुनने बाणोंका घटाटोपसा कर दिया। पृथ्वीसे लेकर आकाशतक बाण-ही-बाण दिखाई देने लगे। बाणोंके बादलसे सूर्य्यदेव, सन्ध्या होनेके पहलेही, छिप गये। यह देख द्रोणने

युद्ध बन्द करा दिया। उस दिन उनकी युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छा मनकी मनमेंही रह गयी।

इस तरह विफल-मनोरथ हो, कौरव बड़ेही लज्जित हुए। उन्होंने आपसमें परामर्श करना आरम्भ किया, कि कल अवश्यही युधिष्ठिरको पकड़ लेना चाहिये। आचार्य द्रोणने कहा,—"हाँ, ऐसाही करो। युद्धके लिये ललकारकर तुम अर्जुनको दूर हटा ले जाओ। अर्जुनका यह स्वभाव है, कि वह ललकारनेपर अवश्य लड़ने आता है और बिना शत्रुको हराये मैदानसे नहीं हटता; इसलिये जबतक तुम उसे अन्यत्र अटकाये रहोगे, उसी समयके बीचमें मैं युधिष्ठिरको पकड़ लूँगा।"

यह सुन सुशर्मा, सत्यरथ, सत्योप, सत्यकर्मा आदि वीरोंने अग्निको साक्षी रखकर प्रतिज्ञा की, कि "कल हमलोग अर्जुनको बिना मारे न छोड़ेंगे—यदि छोड़ दें, तो हमें घोर पातक हो।"

बारहवें दिन, युद्ध आरम्भ होतेही, इन लोगोंने अर्जुनको ललकारना शुरू किया। सत्यजित्‌को युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये छोड़कर, अर्जुन उनसे लड़नेके लिये अग्रसर हुए। सचमुच इन लोगोंने अर्जुनको बहुत तङ्ग किया। जब एक दल हारता, तब दूसरा दल झट आगे आ जाता और उन्हें अटका लेता था।

इसी समय श्रीकृष्णकी नारायणी सेनाने अर्जुनको घेर लिया और भयानक मार-काट मचा दी। यह देख अर्जुनने त्वाष्ट्र नामका अस्त्र छोड़ा, जिसमें ऐसा गुण था, कि प्रत्येक सैनिकको ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों अर्जुन उसके पासही खड़े हैं। इस भ्रममें पड़कर वे अपने सैनिकोंका आपही संहार करने लगे।

इधर मालव, मावेल्लक आदि वीरोंने ऐसी भयङ्कर बाण-वर्षा की, कि चारों ओर अँधेरासा छा गया। यहाँतक, कि श्रीकृष्णको अर्जुन

दिखाईही न पड़ने लगे और वे चिल्ला-चिल्लाकर अर्जुनको पुकारने लगे। कृष्णको व्याकुल होते देख, अर्जुनने, वायव्यास्त्र छोड़कर, सब बाणोंको हवाकी तरह उड़ा दिया। केवल बाणही नहीं उड़े, बल्कि उनके साथ-ही-साथ कितनेही वीर, हाथी-घोड़ोंके साथ, पत्तेकी तरह उड़ गये। उधर द्रोणाचार्य, असंख्य वीरोंका संहार करते हुए, धीरे-धीरे, युधिष्ठिरके पास पहुँचने लगे। यह देख युधिष्ठिर वहाँसे हट गये।

इसी बीच दुर्योधन, बहुतेरे हथियोंको लिये हुए, भीमपर चढ़ दौड़ा। देखते-ही-देखते भीमने सबको मार भगाया। तब भगदत्त भीमसे लड़ने आया। भगदत्तका मतवाला हाथी भीमके पराक्रम-का अपमान करने लगा और कुछही देरमें उसने, उनको अपनी सूँड़-में लपेट लिया; परन्तु महाबली भीम शीघ्रही उसकी सूँड़से निकल भागे! भीमको भागते किसीने न देखा, इसलिये पाण्डव-दलमें हाहा-कार मच गया, कि भीमको हाथीने मार डाला। यह सुन, दुःख और क्रोधसे अधीर होकर, युधिष्ठिर, नकुल आदि वीर भगदत्तसे लड़नेके लिये आ पहुँचे और दोनों ओरसे भयङ्कर बाणोंकी वर्षा होने लगी। भगदत्तके उस मस्त हाथीने पाण्डव-सैन्यमें खलबलीसी डाल दी। कोई उसे रोक या हरा न सका। इधर अर्जुन, सुशर्मासे युद्ध करनेमें बेतरह उलझे हुए थे; अतएव वे उस ओर आही न सके। कुछ देर बाद जब सुशर्मा अर्जुनके बाणकी चोटसे बेहोश होकर गिर पड़ा और एक-एक करके उसके छः भाई भी मार डाले गये, तब अर्जुन भगदत्तकी ओर बढ़े।

आतेही अर्जुन, बड़े पराक्रमसे भगदत्तके साथ लड़ने लगे। बहुत देरतक बराबरीका युद्ध होता रहा। भगदत्तने बड़े-बड़े भयानक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया; परन्तु श्रीकृष्णकी रथ-चालन-चातुरी

और अर्जुनकी विचित्र बाण-विद्याके आगे, उसकी एक न चली और अन्तमें वह अपने विशाल हाथीके साथही मार डाला गया। कौरव-दलमें एक बार फिर हाहाकार मच उठा।

भगदत्तको ठिकाने लगा, अर्जुन शकुनिकी ओर बढ़े। सामना होतेही दोनों वीर बड़े उत्साहसे, एक दूसरेपर, अस्त्र-शस्त्रोंका भयङ्कर प्रहार करने लगे। अर्जुनने, थोड़ी देरमेंही, शकुनिके दो भाइयोंको मार गिराया और स्वयं शकुनि, पराजित होकर, मैदानसे भाग निकला।

अनन्तर युधिष्ठिरके पास पहुँचनेके लिये, अर्जुनने बड़े वेगसे अपना रथ आगे बढ़ाया; परन्तु जिन राजाओंने पिछले दिन अर्जुनको अटकाये रखनेकी प्रतिज्ञा की थी, वे फिर आकर भिड़ गये और अर्जुन उधर न जा सके।

द्रोण युधिष्ठिरके बिल्कुल पास पहुँच गये थे और बड़े ज़ोरोंसे आक्रमण कर रहे थे। युधिष्ठिरकी सेना उस आक्रमणके सहनेमें असमर्थ हो, इधर-उधर, भागने लगी और वे स्वयं द्रोणके बाणोंके बादलमें छिपने लगे। अर्जुनने सत्यजित्को युधिष्ठिरकी रक्षाका भार दे रखा था। वह जी तोड़कर युद्ध करने और द्रोणके आक्रमणोंको रोकने लगा। जब सत्यजित्की बहादुरी और चतुराईने द्रोणाचार्यको बेतरह घबरा दिया, तब उन्होंने बड़े क्रोधके साथ सत्यजित्का सिर, अर्द्धचन्द्र-बाणसे, काट डाला! अपने रक्षकको इस तरह मरते देख, युधिष्ठिर वहाँसे खसक गये।

इस तरह युधिष्ठिरको हाथसे निकल जाते देख, द्रोण बड़े लज्जित और क्रोधित हुए। तबतक महावीर अर्जुन भी वहाँ पहुँच गये और अब गुरु-शिष्यका घोर युद्ध होने लगा। अर्जुनके आगे कौरव-सेना ठहर न सकी और जान लेकर भागने लगी। द्रोणने

देखा, कि अब तो मामलाही और-का-और हो गया। अतएव, उस दिनके लिये उन्होंने युद्ध रोक देनाही उचित समझा।

अभिमन्यु-वध।

तेरहवें दिन बड़े सवेरे, दुर्योधन गुरुके पास पहुँचा और रो-रोकर कहने लगा,—"गुरुदेव! आपने मुझे, युधिष्ठिरको पकड़कर ला देनेका, वचन तो दे दिया; पर अब आप उसका पालन नहीं कर रहे हैं। क्या इस दासको इस तरह आशा देकर निराश करना आप अच्छा समझते हैं?"

दुर्योधनके इस तानेसे आचार्य और भी लज्जित होकर कहने लगे,—"बेटा! तुम क्या यह नहीं देखते, कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ? परन्तु कृष्ण और अर्जुनकी चतुराईके आगे, मेरी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हुई जाती हैं। अच्छा, आज मैं एक ऐसा चक्र-व्यूह बनाऊँगा, जिसमें पाण्डवोंका जो कोई वीर पड़ जायेगा, वह जीता कभी बाहर न जा सकेगा। तुम लोग आज फिर अर्जुनको अन्यत्र हटा ले जाओ; मैं इसी चक्र-व्यूहमें फँसाकर सारी पाण्डव-सेनाका संहार कर डालूँगा।"

समर आरम्भ करनेके पहलेही द्रोणने अपने कहे अनुसार 'चक्र-व्यूह'नामक एक बड़े भारी विकट व्यूहकी रचना की। उसे देख पाण्डवोंके दिल दहल उठे। बड़े-बड़े वीरोंके चेहरोंका रङ्ग उतर गया। युधिष्ठिर घबराये हुएसे दीखने लगे।

उधर बचे-बचाये त्रिगर्त्तलोग अर्जुनको बहकाकर दूर ले गये और उन्हें युद्धमें फँसाये रहे। अर्जुनके न रहनेसे युधिष्ठिरकी घबराहट और बढ़ने लगी; क्योंकि कोई वीर चक्र-व्यूहको तोड़नेके लिये, आगे बढ़नेका साहस नहीं करता था। अन्तमें उन्होंने सोचा,

महाभारत

अभिमन्युकी रण-यात्रा ।

"उत्तराने स्वामीके पैर पकड़ लिये और जानेसे मना करने लगी ।"

[पृष्ठ—२१७]

Burman Press, Calcutta.

कि यह काम अर्जुनके बेटे अभिमन्युको सौंपना चाहिये ; क्योंकि वह भी अपने पिताकीही तरह तेजस्वी और वीर है। ऐसा विचार कर, उन्होंने अभिमन्युसे कहा,—

"पुत्र ! आज आचार्यने बड़ा विकट व्यूह बनाया है। इसे, हममेंसे, कोई नहीं भेद सकता। मैं जहाँतक समझता हूँ, तुम इसे भेदना जानते होगे ; सम्भव है, अर्जुनने तुम्हें इस प्रकारके व्यूहोंके तोड़नेकी तरकीब सिखला दी हो। यदि आज यह व्यूह न टूटा, तो अर्जुन हमारी बड़ी निन्दा करेंगे।"

अभिमन्यु,—"ताऊजी ! मुझे इस व्यूहको तोड़कर भीतर घुस जानेकी तरकीब अवश्य मालूम है ; पर मैं इसके बाहर निकलनेकी तरकीब नहीं जानता। इसलिये मेरी विद्या अधूरी है। ऐसी अवस्थामें,मेरा इसमें घुसना,पतङ्गके आगमें कूदनेके समान होगा।"

युधिष्ठिर,—"तुम तोड़ना तो जानते हो ? बस, यही बहुत है। तुम इसे भेदकर भीतर घुसनेकी राह पैदा कर दो ; हम लोग तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे और व्यूहको छिन्न-भिन्न करते हुए तुम्हारी रक्षा करेंगे। डरो मत, हमलोग तुम्हें अकेला नहीं छोड़ेंगे।"

अभिमन्यु,—"नहीं ताऊजी ! मैं डरता नहीं। आपलोगोंका सहारा रहते हुए, मुझे डर किस बातका है ? आपकी आज्ञा शिरोधर्य्य है। चलिये, मैं अभी व्यूह-भेद करता हूँ।"

यह कह अभिमन्यु अपनी स्त्री उत्तरासे मिलने चला ; क्योंकि उससे रणके लिये विदा माँगे बिना, उससे एक पैर भी आगे नहीं बढ़ा जाता था। ऐसा सन्दिग्ध चित्त लेकर रण-यात्रा करनी उचित नहीं ; यही विचारकर वह अपनी पत्नीसे जाकर मिला। उसके मुँहसे समस्त वृत्तान्त सुन, उत्तराका हृदय धड़कने लगा। आशङ्कासे उसका चित्त चञ्चल हो उठा। उत्तराने स्वामीके पैर पकड़ लिये

और जानेसे मना करने लगी ; परन्तु वीर अभिमन्युने उस कातर प्रार्थनापर कान न दे, उसे प्रबोध-वचनोंसे शान्त कर दिया। तब उत्तराने अपने हाथों उसे वीर-वेशसे सज्जितकर विदा दी ; पर क्षणभरके लिये भी वह इस बातकी कल्पना न कर सकी, कि हम लोगोंकी यही देखा-देखी अन्तिम होगी !

तदनन्तर वीर अभिमन्यु* बड़े उत्साहके साथ, व्यूहकी ओर चला और रास्तेमें बड़ी भयानक मार-काट करता हुआ कौरव-सेनाके मध्यमें जा पहुँचा। उस बालककी विलक्षण वीरताने कौरव-सेनामें बड़ा त्रास फैला दिया और उसके बाण, लोगोंपर, वज्रकासा काम करने लगे। यह देख, कौरव-दलने कर्णको आगे किया और वे उसके आक्रमणोंको रोकनेकी चेष्टा करने लगे; परन्तु अभिमन्यु पर्वतकी भाँति अचल रहा और उसने देखते-देखते व्यूहका अग्र भाग तोड़ डाला। यह देख कौरव-सेनामें बड़ा कोलाहल मच गया और प्रायः सभी गिने-चुने वीर अभिमन्युको रोकनेके लिये वहाँ आकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। व्यूहके द्वार-रक्षक जयद्रथने कितना रोका ; परन्तु अभिमन्यु किसीके रोके न रुका और व्यूहके भीतर घुसही गया। किन्तु हाय ! पीछे जो पाण्डव वीर उसकी रक्षाके लिये आ रहे थे, वे उसके साथ भीतर न जा सके। जयद्रथने उनपर इस प्रकार भयङ्कर रूपसे बाण-वर्षा करनी शुरू की, कि पाण्डवोंकी एक भी न चली और एकके बाद दूसरा वीर धराशायी होने लगा।

---

* यदि आप अभिमन्युकी वीरताका विस्तृत हाल, वीर-रसकी फड़कती हुई, जानदार कवितामें पढ़ना चाहते, हों तो हमारे यहाँसे "वीर-पञ्चरत्न" नामक सचित्र ग्रन्थ मँगा देखें। मूल्य २॥।) रेशमी जिल्द ३।) रुपया।

यदि इसी कथाको उपन्यासके रूपमें, खूब विस्तारके साथ पढ़ना चाहें, तो सचित्र "बालक अभिमन्यु" मँगा देखें। मूल्य १) रुपया।

यह अवसर पा, कौरवोंने टूटे हुए व्यूहको फिरसे सुधार लिया और अभिमन्यु उस व्यूह-रूपी पींजरेमें बन्द होगया।

अब तो कौरवोंके उत्साह और आनन्दकी सीमा न रही। वे बड़ी तेज़ीके साथ अभिमन्युके ऊपर आक्रमण करने लगे। परन्तु अभिमन्यु इससे तनिक भी न घबराया और अधिकाधिक उत्साहके साथ युद्ध करने लगा।

सबसे पहले दुर्योधननेही अभिमन्युपर आक्रमण किया ; पर अभिमन्युने उसके सारे बल-पराक्रमका अपमानकर, उसे इतना हैरान किया, कि यदि कर्ण, कृप, द्रोण, शल्य, अश्वत्थामा और कृतवर्म्मा उसकी सहायताको न आ जाते, तो वह बिना गिरे न रहता। इन वीरोंने आकर दुर्योधनको बचा लिया और वह वहाँसे टल गया। हाथमें आये हुए शिकारको इस तरह निकल जाते देख, अभिमन्युको बड़ा क्रोध चढ़ आया और उसने अपने विकट बाणोंसे सबको मार भगाया। उन सबको भागते देख, अभिमन्युने बड़े हर्षसे शङ्ख बजाया।

कुछही देर बाद शल्य सामने आये। अभिमन्युने उन्हें तुरतही मूर्च्छित कर दिया। यह देख उनकी सेना भागने लगी, तब उनका छोटा भाई लड़ने लगा। अभिमन्युने उसे झट मार गिराया। उसके सारथि और चक्र-रक्षक भी साथ-ही-साथ मारे गये। यह देख सैकड़ों वीर एक साथही अभिमन्युपर टूट पड़े ; परन्तु उस वीरने सबको एक-एक करके यमपुरी भेज दिया। इसके बाद उसने अद्भुत कौशलसे कौरवोंके प्रधान-प्रधान वीरोंपर बाणोंकी वर्षासी कर दी।

यह देख दुर्योधन बहुत घबराया और क्रोधके साथ अपने वीरोंसे कहने लगा,—"वीरो ! तुम लोगोंके मौजूद होते हुए भी, यह घमण्डी बालक अबतक जीवित है, यह बड़े दुःखकी बात है !

गुरु-द्रोण तो इसे कभी न मारेंगे। उनकी तो अर्जुनपर बड़ी कृपा है; फिर वे उसके लड़केको क्यों मारने लगे? तुमलोग मिलकर इस अभिमानीका सिर अभी चूर-चूर कर दो।"

यह सुन, दुःशासनने, बड़े अभिमानके साथ कहा,—"मैं अभी अभिमन्युका संहार किये डालता हूँ। आप कुछ चिन्ता न करें।"

यह कह, वह अभिमन्युसे घोर युद्ध करने लगा। दोनोंही रथ-युद्धमें निपुण थे; अतः दोनोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। कुछ-ही देरमें दुःशासन बेहोश होकर रथपर गिर पड़ा। उसका सारथि, मारे डरके, रथ हाँककर उसे युद्ध-भूमिसे भगा ले गया।

तदनन्तर, कर्ण सामने आये और अभिमन्युसे लड़ने लगे। अभिमन्युके आगे कर्ण भी बेतरह दबे और उसने कौरव-सेनाका यथेच्छ संहार करना आरम्भ किया। उसने दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मण और शल्यके पुत्र रुक्मरथको, बात-की-बातमें मार गिराया और कौशल-देशके राजा, महारथ तथा अन्यान्य कई राजों-राज-कुमारोंको यमलोकका अतिथि बनाया। यह देख कर्ण, दुर्योधन आदि गुरुके पास गये और गिड़गिड़ाकर बोले,—"महाराज! आप जल्दी कोई उपाय कीजिये, नहीं तो अर्जुनका पुत्र जिस प्रकार भयङ्कर युद्ध कर रहा है, उससे मालूम होता है, कि वह कुछही देरमें हमलोगोंमेंसे एकको भी जीता न रहने देगा।"

द्रोणने कहा,—"वास्तवमें तुम लोगोंका कहना ठीक है। अपने शिष्यके पुत्रकी इस विकट वीरताको देख, मेरे मनमें बड़ा आनन्द हो रहा है! जब तुम जैसे महारथी उसके सामने नहीं ठहर सकते, तब उसके परम वीर होनेमें सन्देहही क्या है? वह तनिक भी विश्राम किये बिना चारों ओर इस प्रकार अस्त्र-परिचालन करता है, मानों उसके दोही नहीं, अनेक हाथ हैं।"

अभिमन्यु और सप्त-महारथी।
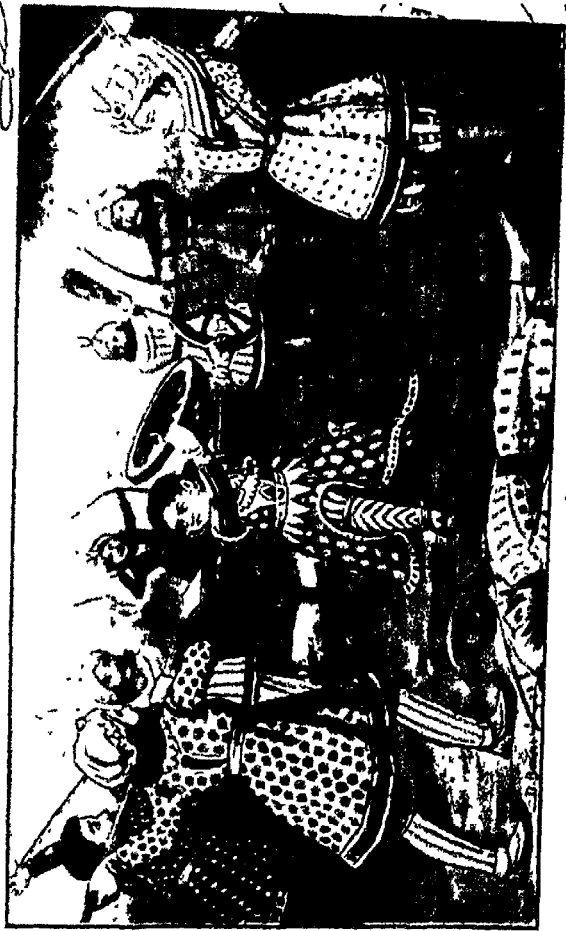
"तब अभिमन्युने रथका चक्का उठा लिया और उसीसे कौरवोंका नाश करना आरम्भ किया।" [पृष्ठ—२२१]

कर्णने कहा,—"गुरुदेव ! आपने ठीकही कहा है। बालक होने-पर भी, वह वीरतामें बड़ों-बड़ोंके कान काटता है। हमलोग इसीलिये वहाँसे चले आये हैं, कि न जानें हमें कब पीठ दिखा देनी पड़े। उसके बाणोंकी ज्वालासे अब भी मेरा शरीर जल रहा है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग चलनी बन गया है।"

कर्णकी ये बातें सुन, द्रोणने हँसकर कहा,—"वत्स ! अभिमन्यु जो कवच पहने हुए है, वह अभेद्य है। इसीसे तुमलोगोंके वार उसपर काम नहीं करते। अतएव जबतक उसके हाथमें हथियार है, तबतक उसे हरा देना अत्यन्त कठिन है। यदि तुमलोग मिल-जुलकर उसके हथियार छीन लो और उसे रथपरसे नीचे उतारकर युद्ध करो, तो अवश्य सफलता मिल सकती है।"

द्रोणके कहे अनुसार, अबकी बार, सबने एक साथ मिलकर अभिमन्युपर आक्रमण किया। किसीने उसका धनुष काट डाला, किसीने उसके सारथिको मार डाला, किसीने रथके घोड़ोंको काट गिराया, किसीने उसके चलाये हुए सारे अस्त्र-शस्त्रोंकोही बेकार कर दिया। इस समय अभिमन्युके पास न रथ है, न धनुष ; पर शत्रु उसपर बराबर आक्रमण करते चले जाते हैं ! यह देख उसने ढाल-तलवार उठाली। वह, शत्रुओंसे अपना बचाव करता हुआ उनपर आक्रमण करने लगा। कर्ण और द्रोणने मिलकर उसकी ढाल-तलवार भी काट गिरायी ! तब उसने रथका चक्का उठा लिया और उसीसे कौरवोंका नाश करना आरम्भ किया ; परन्तु क्षणभर भी न बीता होगा, कि अश्वत्थामाके बाणोंने उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले !

अब अभिमन्यु बिल्कुल निहत्था हो गया ; इसी अवसरमें दु:शासनके पुत्रने उसके सिरपर ऐसी गदा मारी, कि वह उसके प्रहारको सहन न कर सका और गिरकर मर गया ! इस प्रकार

बहुतोंने मिलकर उस अकेले सिंह-कुमारको, अन्याय, अधर्म और निर्लज्जताके साथ मार डाला। कौरव-सेनामें आनन्दकी नदीसी उमड़ आयी। कौरवगण हर्ष-नादसे आकाश फाड़ने लगे। उनके मनमें, ऐसा पाप करके भी, न तो ग्लानि हुई, न पश्चात्ताप ; उलटे वे मन-ही-मन सुखी हुए। इस नीचताका भी कोई ठिकाना है ?

वीरवर अभिमन्युकी मृत्युका संवाद पाण्डव-दलमें पहुँचतेही शोकका प्रवाह बह चला। सेना अधीर होकर भागनेका उपक्रम करने लगी। यह देख युधिष्ठिरने कहा,—"भाइयो! घबराओ नहीं ; क्षत्रियके लिये रणसे भागनेकी अपेक्षा मृत्युके मुखमें जाना हज़ार गुणा अच्छा है। वीर अभिमन्युने जिस तरह माता-पिताका नाम उज्ज्वल करते हुए वाञ्छनीय वीर-गति प्राप्त की है, यदि उसी तरह हमलोग वीर-गति पा सकें, तो हमारे मातृ-ऋणका परिशोध सदाके लिये हो जायेगा। क्योंकि क्षत्राणीके दूध पीनेका बदला रणभूमिमेंही, अपने रक्तसे, दिया जाता है।"

युधिष्ठिरकी इन वीरता-भरी बातोंको सुनकर उनकी सेना रुक गयी। सैनिक फिर बड़े उत्साहके साथ जमकर लड़ने लगे। उनके असीम साहस और अमित उमङ्गके आगे, कौरवोंके पैर देरतक न जमे रह सके और वे प्राण लेकर भाग चले। इसी समय सूर्यास्त हो गया और युद्ध रोक देनेके लिये भेरी बजा दी गयी।

युद्ध-कालमें सब अपने शोक-दुःखको भूले हुए थे। अब युद्धसे विरत हो, अपने-अपने डेरोंमें आतेही, लोग अपने-अपने मृत-सम्बन्धी और कुटुम्बियोंके लिये शोक तथा विलाप करने लगे। पाण्डवोंके शिविरमें भी आज अभिमन्युकी मृत्युके कारण गहरा शोक छाया हुआ था। धर्मराज युधिष्ठिर बहुत अधीर होकर रो रहे थे और कह रहे थे,—"हाय! आज मेरेही कारण पुत्र अभिमन्युको

प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। अब मैं कैसे अर्जुन और सुभद्राको अपना यह काला मुँह दिखलाऊँगा ?"

अन्यान्य लोग उन्हें चारों ओरसे घेरे बैठे हुए समझा-बुझा रहे थे। उधर त्रिगर्तोंको मारकर अर्जुन, कृष्णको साथ लिये, अपने शिविरकी ओर लौटे। रास्तेभर अमङ्गलके चिह्न और डेरेमें पहुँचकर, सबको उदास देख, अर्जुन बहुत डरे। उनके बायें अङ्ग बार-बार फड़कने लगे। दुश्चिन्ताके मारे वे क्षण-भरके लिये अधीर होकर चुपचाप खड़े हो गये। अनन्तर पूछनेपर मालूम हुआ, कि आजके महासमरमें उनके वीर पुत्र अभिमन्युको अन्यायी शत्रुओंके हाथों प्राण खोना पड़ा है। यह सुनतेही वे शोकसे व्याकुल होकर औरतोंकी तरह विलाप करने लगे। पुत्र-शोकके प्रचण्ड आघातको सहनेकी शक्ति उनके वीर-हृदयमें भी नहीं थी।

अर्जुनका शोकोच्छ्वास लगातार बढ़ता देख, कृष्णने कहा,—"हे मित्र! तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ? वीरोंके लिये युद्धमें मरनेसे बढ़कर और क्या अच्छा हो सकता है ? तुम्हारा पुत्र वीर-गतिको प्राप्त हुआ है, तुम वृथा क्यों शोक कर रहे हो ? तुम्हें इस प्रकार शोकमें पड़ा देख, तुम्हारे भाई-बन्धु और भी अधीर हो रहे हैं। तुम उनको चुप कराओ। क्षत्रियके लिये ऐसे अवसर धैर्यकी परीक्षाके लियेही आते हैं; तुम भी उसी धैर्यका परिचय दो।"

अर्जुन-प्रतिज्ञा।

श्रीकृष्णके वाक्योंसे अर्जुनको बहुत कुछ ढाढ़स हुआ। तब अर्जुनने अभिमन्युके मारे जानेका सारा वृत्तान्त जानना चाहा। युधिष्ठिरने ज्यों-का-त्यों सारा हाल कह सुनाया; जिसे सुन वे हाहाकार-कर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें इस प्रकार अचेत होते देख, सबके

चेहरोंपर हवाइयाँ उड़ने लगीं और वे बड़ी घबराहटके साथ एक दूसरेका मुँह देखने लगे।"

मूर्च्छा टूटतेही क्रोधसे दाँत पीसते हुए अर्जुन कहने लगे,—"सुनिये महाराज! जिस पापी जयद्रथको मैंने बन्दी बनाकर भी छोड़ दिया था, वही, इतनी जल्दी, मेरे उपकारोंको भूलकर, दुर्योधनका हिमायती बन, मेरे प्राण-प्रिय पुत्रकी मृत्युका कारण बना है। मैं उसे कलही जहन्नुम भेजकर दम लूँगा। आपलोग सुन रखिये, मैं शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ, कि यदि कल सूर्यास्त होनेतक मैं उसे न मार डालूँ, तो मेरी वह गति हो, जो पापी, विश्वासघाती और माता-पिताकी हत्या करनेवालोंकी होती है। कल या तो मैं उसे मारूँगा या आपही जलती हुई चितामें प्रवेशकर प्राण दे दूँगा।" यह कह अर्जुनने बड़े ज़ोरसे अपने गाण्डीव-धनुषपर टङ्कार दी, जिससे आकाश गूँज उठा, पृथ्वी काँप उठी और पाण्डव-पक्षीय वीर नाना प्रकारके बाजे बजा, अपने नायककी वीर-प्रतिज्ञाका अभिनन्दन करने लगे।

कानों-कान उड़ता हुआ यह संवाद कौरवोंके पास भी पहुँचा। अर्जुनकी विकट प्रतिज्ञा सुन, जयद्रथके तो सारे शरीरमें कँपकँपी पैदा हो गयी। वह बर्फसा सर्द हो गया। उसने काँपते-काँपते दुर्योधनसे आकर कहा,—"भाई! या तो तुम मेरी रक्षाका प्रबन्ध करो, नहीं तो कहो, मैं अपने घर चला जाऊँ। आज अर्जुनने बड़ी विकट प्रतिज्ञा की है। कल या तो वह मरेगा या मैं मरूँगा। उसने मुझे बुरी तरहसे मारनेकी क़सम खाई है। इसीसे मुझे बड़ा डर लग रहा है।"

दुर्योधनने देखा, कि जयद्रथ बहुत डरा हुआ है! इसे समझा बुझाकर रोक रखना चाहिये, नहीं तो सचमुच चल देगा। यह विचारकर उसने कहा,—"सिन्धुराज! इतना क्यों डरते हो? कल सारी

सेनाएँ सब काम छोड़कर तुम्हारीही रक्षा करेंगी। आचार्य, कर्ण, भूरिश्रवा, शल्य, सुदक्षिण, अश्वत्थामा और शकुनि आदि वीर तुम्हें चारों ओरसे घेरे रहेंगे और तुम भी तो कोई ऐसे-वैसे नहीं, विकट वीर हो। फिर अर्जुनकी प्रतिज्ञासे इस प्रकार अनाथोंकी भाँति अधीर क्यों हो रहे हो ?"

यह कह, दुर्योधन उसे द्रोणाचार्यके पास ले गया। उन्होंने भी उसे अभय-दान दे निश्चिन्त कर दिया।

इधर रातभर कृष्ण और अर्जुनको नींद न आयी। उदासीके मारे उनकी पलकें पलभरके लिये न झँपी। कृष्णने अभिमन्युकी माता, अपनी बहन, सुभद्राको बहुत तरहसे समझाया और उस वीरकी विधवा पत्नी, उत्तराको नाना प्रकारके आश्वासन दिये। उन्हें किसी तरह समझा-बुझाकर वे अर्जुनके पास चले आये और कलके युद्धमें कैसे-कैसे, क्या-क्या करना होगा, इसके विषयमें बहुत देरतक परामर्श करते रहे। भोर होते-न-होते उन दोनोंकी आँखें मारे निद्राके स्वभावत: बन्द होने लगीं। परामर्श समाप्त हो चुका था ; अतएव, वे कुछ देरके लिये सो रहे। पहले श्रीकृष्णकी नींद टूटी। उन्होंने उठतेही अपने सारथिको बुलाकर रथ सजानेकी आज्ञा दी। इधर अर्जुन स्वप्नावस्थामें महादेवजीके दिये हुए अस्त्रोंकेही ध्यानमें मग्न थे।

चौदहवें दिन कौरवोंने शकट-व्यूह नामक एक विकट व्यूह बना-कर, उसके बीचमें जयद्रथको रख दिया। कौरव-पक्षके प्राय: सभी चुने हुए वीर उस व्यूहकी रक्षा कर रहे थे। जयद्रथ उस व्यूहकी विशालता और दृढ़ता देख, मन-ही-मन सोच रहा था, कि आज पाण्डव अवश्य मुँहकी खायँगे और अर्जुनको, प्रतिज्ञा-भङ्ग होनेके कारण, अवश्यही जीतेजी चितामें जलना पड़ेगा।

अर्जुनके कहे अनुसार कृष्ण उनका रथ कौरवोंके सामने ले आये। भयानक युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने सबसे पहले दुर्योधनके भाई दुर्मर्षण और उसकी सेनाको परास्त किया। तदनन्तर दुःशासन भी उनके बाणोंकी चोट न सह सकनेके कारण, व्यूहके भीतर जा घुसा और सोचने लगा, कि जान बची और लाखों पाये।

दुःशासनके भागतेही अर्जुन बेखटके व्यूहके द्वारतक चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, कि आचार्य द्रोण द्वारकी रक्षा कर रहे हैं। अर्जुनने उनसे कहा,—"गुरुवर! बड़ी कृपा हो, यदि आप मुझे इस व्यूहके भीतर चले जाने दें।"

परन्तु गुरु द्रोण इस बातको कब सुननेवाले थे? उन्होंने हँसकर कहा,—"अर्जुन! यह युद्ध-भूमि है, घर नहीं। घर होता, तो तुम्हारी प्रार्थना मैं अवश्यही स्वीकार कर लेता; परन्तु यहाँ, युद्ध-भूमिमें, मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं सुन सकता। बिना लड़े, तुमको तो क्या, देवराज इन्द्रतकको भी मैं व्यूहके भीतर किसी तरह नहीं जाने दे सकता।"

यह कह द्रोणाचार्यने अर्जुनके ऊपर असंख्य बाण छोड़े। अर्जुन उनके भयानक आक्रमणोंको यथासाध्य रोक, मौक़ा पाते ही उनपर भी आक्रमण करने लगे। गुरु-चेलेकी ऐसी लड़ाई इतिहासमें अति विरल है।

द्रोणसे लड़ते-लड़तेही अर्जुनने भोज और कृतवर्माको परास्त किया। उन्हें हराकर अर्जुनने फिर द्रोणाचार्यके साथ लड़ना आरम्भ किया; परन्तु जब देखा, कि समय बीतता चला जाता है और जयद्रथको मारनेका असली काम योंही रहा चाहता है, तब उन्होंने द्रोणसे लड़ना बन्दकर वहाँसे टल जाना चाहा। उन्हें अन्यत्र जाते देख, द्रोणने कहा,—"क्यों अर्जुन! आज तुम बिना शत्रुको

हटायेही क्यों चले जा रहे हो ? तुम्हारी तो यह प्रतिज्ञा है न, कि जबतक शत्रुको न हरा लो, तबतक युद्ध-भूमिसे न हटो ?"

अर्जुनने देखा, कि आचार्य मुझे बातोंके जालमें फँसाकर असली कामसे दूर हटा ले जाना चाहते हैं ; अतएव वे हँसकर बोले,—"हाँ, मेरी वह प्रतिज्ञा ठीक है और मैं उसका सदैव पालन भी करता हूँ ; परन्तु आपके सम्बन्धमें मेरा वह नियम लागू नहीं हो सकता ; क्योंकि आप मेरे शत्रु नहीं, गुरु हैं ; मैं आपका पुत्र-तुल्य शिष्य हूँ ।"

परन्तु द्रोणाचार्यने न माना और अर्जुनका पीछा करते गये । रास्तेमें अनेक वीरोंको मारते-काटते अर्जुन बाहर निकल गये । द्रोणाचार्य मुँहही ताकते रह गये । यह देख दुर्योधन बहुतही झुँझलाया और द्रोणको कोसने लगा ।

उसने कहा,—"मुझे तो जान पड़ता है, कि आपका मन मुझसे कुछ फिरा हुआ है ; इसीलिये आप जी लगाकर पाण्डवोंसे युद्ध नहीं करते, नहीं तो अर्जुन यों आपके सामनेसे न निकल भागता । क्या आप नहीं जानते, कि आज अर्जुनने जयद्रथको मारनेकी विकट प्रतिज्ञा की है ? यदि वह सन्ध्या होते-होते अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका, तो आपही चितामें जल मरेगा । इस तरह जयद्रथको बचाकर हमलोग दो-दो लाभ उठा सकते हैं । हमारा प्रबल शत्रु इस प्रकार आसानीसे मारा जाये, इसकी चेष्टा करना क्या आपका कर्तव्य नहीं है ? जयद्रथको आपने किस मुँहसे अभय-वचन दिया था, जो अब इस प्रकार उसे निराधार छोड़ रहे हैं ? देखिये, मेरी बातोंसे क्रोध न कीजियेगा । मैंने तो केवल आपको, आपकी की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण कराया है ।"

दुर्योधनकी ये टेढ़ी-सीधी बातें सुन, द्रोणाचार्यने कहा,—"महाराज ! मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ । मुझमें अब जवानोंकीसी शक्ति नहीं

रही, जो उमङ्गके साथ लड़ूँ। तो भी पुरानी हड्डियाँ जहाँतक लड़ सकती हैं, वहाँतक मैं इनसे काम ले रहा हूँ। एक तो अर्जुन स्वयंही बड़ा भारी वीर और परम रण-कुशल है, दूसरे श्रीकृष्ण जैसा चालाक सारथि उसका सहायक बन गया है; बस, इन दोनोंके आगे मेरी एक भी नहीं चलने पाती। मैं देखता हूँ, कि मैं तो क्या, उन दोनोंको स्वयं इन्द्र भी नहीं हरा सकते। यदि न मानो, तो तुम्हीं उनसे दो-दो हाथ लड़कर देख लो। मैं तुम्हारा शरीर एक दुर्भेद्य कवचसे ढके देता हूँ, जिससे तुम्हारे शरीरपर कोई भी हथियार असर न कर सकेगा।"

यह कह आचार्यने दुर्योधनके शरीरपर एक बड़ाही विचित्र और किसी तरह न टूटनेवाला सुदृढ़ कवच कस दिया। दुर्योधन मन-ही-मन अर्जुनको मार डालनेका सङ्कल्प करता हुआ, अपने साथ एक हज़ार चतुरङ्गिणी सेना लेकर, गर्वके साथ युद्ध करनेके लिये चला गया।

इतनेमेंही पाण्डवोंकी ओरके अनेक वीरोंने, एक साथ द्रोणपर आक्रमण किया और देखते-देखते उनका व्यूह भङ्ग कर दिया। कौरव-सेनामें भयानक भगदड़ मच गयी। धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये आचार्यने एक बड़ाही तीखा तीर धनुषपर चढ़ाया; पर उसके छूटते-न-छूटते सात्यकिने आकर उसे बीचमेंही काट गिराया। धृष्ट-द्युम्न बच गये और द्रोण तथा सात्यकिका विकट युद्ध होने लगा। बड़ी देरतक युद्ध होता रहा; पर जय-पराजयका निश्चय नहीं हो सका। इसी अवसरमें दोनों ओरके बहुतसे वीर, अपने-अपने पक्षकी सहायताके लिये आ पहुँचे और मार-काटका बाज़ार पहलेसे भी ज़ियादा गर्म हो गया।

उधर अर्जुन धीरे-धीरे उस स्थानके पास पहुँच रहे थे, जहाँ जय-द्रथ अपनी मृत्युकी घड़ियाँ, बड़ी उत्कण्ठा, दुःख और घबराहटके

साथ गिन रहा था। अर्जुनको इस प्रकार बढ़ते देख, दुर्योधन काँप उठा और जयद्रथकी रक्षाके लिये अर्जुनपर आक्रमण करनेको तैयार हो गया। दुर्योधनके शरीरपर आचार्यका दिया हुआ अभेद्य कवच कसा था; इसलिये उसका हौसला बढ़ गया था। उसने खूब डटकर युद्ध करना आरम्भ किया। अर्जुनके सारे बाण व्यर्थ जाने लगे। दुर्योधनके शरीरपर कवच रूपी ढाल थी; इससे एक भी तीर उसपर असर नहीं कर सकता था। यह देख कृष्ण चकराये; अर्जुनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। कौरव-पक्ष अर्जुनको इस प्रकार विस्मित और चकित होते देख, हर्षके साथ सिंहनाद करने लगा।

कृष्णने कहा,—"अर्जुन! यह क्या बात है, जो आज तुम्हारे बाण व्यर्थ जारहे हैं? क्या गाण्डीव धनुष आज कुछ कमज़ोर हो गया है या तुम्हारी भुजाएँही निर्बल हो गयी हैं?"

अर्जुनने थोड़ी देर विचारकर कहा,—"वासुदेव! अब मैं समझा। आज गुरुजीने दुर्योधनको एक दुर्भेद्य कवच प्रदान किया है। वह कवच ऐसा कठिन और अटूट है, कि इन्द्रका वज्र भी उसे नहीं तोड़ सकता; परन्तु दुर्योधनके शरीरपर वह वैसाही मालूम होता है, जैसे औरतोंका गहना केवल उनका सौन्दर्य्य बढ़ाता है। यह कवच पहनकर उसने अपने पैरोंमें आपही कुल्हाड़ी मारी है। यह उसकी रक्षा न कर उल्टा हरायेगा।"

यह कह अर्जुनने दुर्योधनके ऊपर बड़े पैने बाण छोड़ने शुरू किये; पर उन बाणोंको, बीचमें खड़ा अश्वत्थामा काट देता था, जिससे वे दुर्योधनके पास पहुँचने नहीं पाते थे। अबके अर्जुनने देखा, कि दुर्योधनका सारा शरीर तो कवचसे ढका है; पर हाथ खाली हैं। इसलिये वे हाथकोही लक्ष्यकर तीर छोड़ने लगे।

हाथोंमें लगातार कई बाण लगतेही दुर्योधन बिल्कुल निकम्मा हो गया और यही जान पड़ने लगा, कि या तो वह शीघ्र मूर्च्छित हो जायेगा या दूसरा बाण लगतेही मर जायेगा ; परन्तु इसी अवसरमें बहुतेरे कौरव-वीर उसकी सहायताको आ पहुँचे ।

इसके बाद जयद्रथतक पहुँचनेके लिये अर्जुनने ऐसा भयङ्कर युद्ध करना आरम्भ किया, जिसे देख बड़े-बड़े वीर दाँतों-तले उँगली दबाने लगे । श्रीकृष्णके पाञ्चजन्य शङ्खकी विकट ध्वनि और अर्जुनके गाण्डीव-धनुषकी टङ्कार वीरोंके हृदयोंमें त्रास उत्पन्न करने लगी । यह देखकर कौरव-पक्षके सब गिने-चुने वीरोंने एक साथ अर्जुनपर बाण बरसाने शुरु किये ; पर अर्जुनका बाल भी बाँका न हुआ ।

इधर द्रोणाचार्य युधिष्ठिरसे भयङ्कर युद्ध कर रहे थे । द्रोणने युधिष्ठिरके रथके घोड़ोंको मार गिराया । उनका धनुष काट डाला ; तो भी वे उनको पकड़ न सके, क्योंकि उसी समय सहदेवने आकर युधिष्ठिरको अपने रथमें बैठा लिया और वहाँसे बड़ी तेज़ीके साथ अपना रथ हाँक ले गये । द्रोणके घोड़े अच्छे न थे ; अतएव वे कितना सिर मारकर भी उनका पीछा न कर सके । युधिष्ठिरके वहाँसे चले जानेपर भी पाण्डव-पक्ष बड़ी देरतक आचार्यके साथ युद्ध करता रहा ।

भीम-कर्ण-युद्ध ।

इसी समय श्रीकृष्णके पाञ्चजन्यकी ध्वनि कानोंमें पड़तेही युधिष्ठिरके मनमें अर्जुनकी ओरसे बड़ा सन्देह होने लगा । उन्होंने सोचा, कि अवश्यही अर्जुनपर कोई भयानक विपत्ति आया चाहती है ; इसीलिये उन्होंने सहायताके लिये शङ्ख बजाया है । यह सोच, वे सात्यकिसे बोले,—"प्यारे सात्यकि ! मेरे मनमें बड़ा

सन्देह हो रहा है, कि अर्जुन किसी सङ्कटमें पड़ा चाहते हैं। क्योंकि, अभी-अभी मैंने श्रीकृष्णके पाञ्चजन्यकी बड़ी विकट ध्वनि सुनी है। तुम अर्जुनके प्रिय शिष्य हो, तुम्हें उनके पास जाकर अवश्य उनकी सहायता करनी चाहिये।"

सात्यकिने कहा,—"महाराज! आप व्यर्थ क्यों डर रहे हैं? जब गुरुजीने आपकी रक्षाके लिये मुझे यहाँ रहनेको कह दिया है, तब मैं कैसे उनकी आज्ञा टालकर जा सकता हूँ? आप उनके बड़े भाई हैं; अतएव आपकी आज्ञा मेरे लिये दुगुनी मान्य है। मैं उसे माननेको तैयार भी हूँ; परन्तु मुझे अपने गुरुकी वीरतापर पूरा-पूरा भरोसा है। कैसीही विपत्ति हो, उससे वे निस्सन्देह अपनेको उबार ले सकते हैं। आप यह व्यर्थका सोच छोड़ दें।"

पर युधिष्ठिरने सात्यकिकी एक न मानी; अतएव उन्हें लाचार होकर जानाही पड़ा। युधिष्ठिर उनकी रक्षाके लिये उनके पीछे-पीछे चले। सात्यकिके स्थानपर भीम, युधिष्ठिरके शरीरकी रक्षा करने लगे।

द्रोणाचार्यने सात्यकिको बीचमेंही रोक लिया और विकट बाण छोड़कर उन्हें व्यस्त करना आरम्भ किया; परन्तु वीर सात्यकि उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे ऐसी वीरतासे लड़ने लगे, कि कौरवोंके छक्के छूट गये। सात्यकिने अनेक वीरोंको हराकर, वहाँसे टलना और अर्जुनके पास पहुँचना चाहा। रास्तेमें दुःशासन आदि वीरोंको हराते हुए सात्यकि आगे बढ़ने लगे। द्रोण भी युवाओंकी तरह उमङ्गके साथ युद्ध करते हुए एक-एक करके पाण्डव-पक्षके गिने-चुने नामी वीरोंको मार रहे थे। सात्यकि इन सब बातोंकी कुछ भी परवा न करते हुए, व्यूहके भीतर घुसही गये। अब तो युधिष्ठिरको रह-रहकर इस बातका सोच होने लगा, कि मैंने सात्यकिको अर्जुनकी सहायताके लिये अकेला भेजकर अच्छा

नहीं किया। यह विचारकर उन्होंने भीमको अर्जुन और सात्यकिकी सहायताके लिये भेजा।

भीम बड़े वेगसे रास्तेमें अनेक वीरोंको मारते-काटते व्यूहके द्वारपर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचतेही उन्होंने देखा, कि साक्षात् रुद्रकी तरह द्रोण द्वारकी रक्षा कर रहे हैं। भीमको आते देख, द्रोणने कहा,—"भीम! तनिक समझ-बूझकर आगे बढ़ना। आज मैं तुम्हारे विपक्षमें हूँ। आज मैंने अर्जुनको तो दया करके छोड़ दिया है; पर तुम्हें न छोड़ूँगा। हाँ, चुपचाप यहाँसे चले जाओ, तो तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न करूँगा।"

अभिमानी भीमकी आँखोंसे क्रोधके मारे चिनगारियाँ निकलने लगीं। वे आचार्यकी ये अपमान करनेवाली बातें न सह सके; बिगड़कर बोले,—"आपकी यह बात तो मेरे गलेके नीचे नहीं उतरती, कि आपने अर्जुनको दया करके छोड़ दिया है। मेरा मन तो यही कह रहा है, कि अर्जुननेही आपको ब्राह्मण समझकर छोड़ दिया होगा। अर्जुन सीधे आदमी हैं—वे भलेही आपको छोड़ दें; पर मैं गुरु-ब्राह्मण-साधु कुछ नहीं मानता, मेरा नाम भीम है। जो मेरे विपक्षमें हो, उसका सिर चूर-चूर किये बिना मैं नहीं रह सकता।"

यह कह भीमने बड़े ज़ोरसे द्रोणके ऊपर गदा चलायी। यदि गुरु कूदकर नीचे न उतर आते, तो उसी समय खोपड़ी दो टुकड़े हो जाती। पर वह वार बिल्कुल ख़ाली न गया—उनके सारथि, रथ और उसके घोड़ोंका वहीं चूरा हो गया।

यह देख दुर्योधनके भाइयोंने बड़े क्रोधके साथ भीमके ऊपर आक्रमण किया; पर भीमके सामने पड़नेपर एक भी जीता न बचा। वे यमराजकी तरह सबके प्राण लेने लगे। उनसे निपटकर वे फिर द्रोणाचार्यकी ओर लपके। इस समय गुरु द्रोण दूसरे रथपर

सवार हो, विकट बाण-वर्षासे पाण्डव-सेनाको छिन्न-भिन्न कर रहे थे। पहुँचतेही भीमने फिर एक गदा द्रोणपर चलायी। इस बार भी रथ-मात्रही भङ्ग हुआ—द्रोण बाल-बाल बच गये।

भीमने कुछ दूर आगे जाकर देखा, कि सात्यकि भोज और काम्बोजराजसे युद्ध कर रहे हैं। अवसर पा, वे व्यूहके अन्दर घुस गये और लगे एक-एकको पकड़कर मारने। इसी समय कृष्ण और अर्जुनको देख उन्होंने सिंहकी तरह गर्जन किया। इससे प्रसन्न हो अर्जुन और कृष्णने भी हर्ष-ध्वनि की। युधिष्ठिरके कानोंमें यह ध्वनि पड़तेही उनका हृदय आनन्दसे भर गया।

भीम बड़े भीम पराक्रमसे धृतराष्ट्रके पुत्रों और कौरव-सैनिकोंका संहार करने लगे। देखते-देखते उन्होंने दुर्योधनके इकतीस भाइयों-को मार गिराया। यह देख कर्ण बड़े क्रोधके साथ भीमका सामना करनेके लिये आगे आये। भीमने थोड़ीही देरमें उनके रथके घोड़ों और सारथिको मार डाला। लाचार हो कर्णने वृषसेनके रथका सहारा लिया।

अब दोनों वीरोंका भयङ्कर युद्ध होने लगा। कर्ण बड़े भारी धनुर्द्धर थे; उन्होंने भीमके सारे अस्त्र-शस्त्रोंको बातकी बातमें बेकार कर दिया। तब वे ढाल-तलवार लेकर लड़ने लगे। कर्णने अपने नुकीले बाणोंसे उनकी ढाल-तलवार भी काट गिरायी। अब तो भीम बड़े सङ्कटमें पड़े। उन्हें चारों ओर अन्धेरा दीखने लगा। बचनेका और कोई उपाय न देख वे, मरे हुए हाथियोंके झुण्डमें जा छिपे।

कर्णके लिये यह अवसर बड़ाही अच्छा था, वे यदि चाहते, तो उसी समय भीमको यमराजके हवाले कर देते; परन्तु उन्होंने, कुन्तीसे की हुई अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार, भीमको भागने दिया। इसके बाद वे वहाँ पहुँचे, जहाँ भीम हाथियोंके झुण्डमें मुँह छिपाये पड़े थे।

भीमको इस तरह छिपा हुआ देख, कर्णने उपहासके साथ कहा—"अरे मूर्ख ! तेरे जैसे कायरोंके लिये युद्ध-भूमिका नाम लेना भी पाप है। तू क्या समझकर लड़ने आया था ? औरतोंकी तरह साड़ी पहन ले। तुझे तो घरमें बैठे रहना चाहिये था। तू युद्ध-वीर कबसे बना ? तू तो केवल खाऊवीर है !"

भीमको कर्णका यह ताना तीरकी तरह विँध गया। वे बोले,—"मूर्ख ! मैंने तुझे कई बार हराया है, यह बात क्या तू इतनी जल्दी भूल गया ? युद्धमें हार-जीत तो हुआही करती है। फिर अपने मुँह अपनी शेखी क्यों बघार रहा है ? यदि तुझमें बल हो, तो आ जा, अभी मल्लयुद्ध करके देख ले। कौन कितने पानीमें है, यह अभी मालूम हो जायेगा।"

परन्तु पक्के पहलवान, मल्लविद्याके आचार्य भीमके साथ कुश्ती लड़नेका साहस कर्णको न हुआ। उन्होंने भीमका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

भूरिश्रवा-वध।

इधर अर्जुन युद्ध करते-करते वहाँ आ पहुँचे, जहाँ सात्यकि, भोज और काम्बोज-लोगोंको हराकर, अर्जुनके पास जानेके लिये तैयार खड़े थे। कृष्णने सात्यकिका युद्ध-कौशल देखा था ; अतएव बार-बार उनकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने अर्जुनसे कहा,—"अर्जुन ! आज सात्यकिने युद्धमें बड़ी बहादुरी दिखलायी और वास्तवमें तुम्हारा शिष्य होनेकी योग्यता प्रकट कर दी है।"

अर्जुन कृष्णकी इस बातसे प्रसन्न होनेके बदले, अप्रसन्न होकर बोले,—"हे कृष्ण ! सात्यकिने यहाँ आकर बड़ा बुरा काम किया है। मैंने उसे युधिष्ठिरकी रक्षा करनेका भार दिया था; किन्तु उसने

मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया। वह यहाँ क्यों चला आया? शत्रुओंसे भरे हुए स्थानमें अब उसके आनेकी आवश्यकताही क्या थी? उसके रथके घोड़े थक गये हैं; तरकसके तीर समाप्त हो चुके हैं; उसे तो अपनीही जान बचानी कठिन होगी, वह मेरी क्या सहायता करेगा? इधर मैं जयद्रथको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी चिन्तामें हूँ, उधर सात्यकिने आकर मुझे और एक चिन्तामें डाल दिया। अब आपही बताइये, मैं जयद्रथका वध करूँ या सात्यकिकी रक्षा? न मालूम, धर्मराजने क्या सोचकर सात्यकि और भीमको मेरे पास भेज दिया।"

कृष्ण और अर्जुनमें इस प्रकार बातें होही रही थीं, कि सात्यकिका रास्ता रोकनेके लिये भूरिश्रवा सामने आ डटा। सात्यकि लड़ते-लड़ते थक चुके थे; पर भूरिश्रवा पूरे उत्साहसे भरा हुआ था। उसने बात-की-बातमें सात्यकिके रथको चूर-चूर कर डाला और उन्हें लात मार ज़मीनपर गिरा दिया। इसके अनन्तर वह उनकी चोटी पकड़, तलवारसे उनका सिर काटनाही चाहता था, कि इसी समय कृष्णके अनुरोधसे अर्जुनने एक ऐसा तीखा तीर छोड़ा, जिससे तलवारके साथही भूरिश्रवाका हाथ कटकर नीचे गिर गया।

भूरिश्रवाको अर्जुनके इस व्यवहारपर बड़ा क्रोध हुआ; पर हथकटा वीर करही क्या सकता था? वह जली-कटी बातें कहकरही अपना क्रोध उतारने लगा। बोला,—"अर्जुन! तुम इतने बड़े वीर होकर ऐसी नीचतापर क्योंकर उतर आये? क्या यह शिक्षा तुम्हें गुरु द्रोणसे मिली है? या स्वर्गमें इन्द्रसे सीख आये हो? अथवा स्वयं महादेवजीने तुम्हें यह नीचता करनेका उपदेश दिया है? जिस समय मैं एक दूसरे आदमीके साथ युद्ध कर रहा था; उस समय तुम्हें बाण चलानेका क्या अधिकार था? तुमने बड़ाही अन्याय किया।"

अर्जुनने कहा,—"तुम न्याय और अन्यायकी दुहाई देकर भी यह नहीं जानते, कि मेरा शिष्य मारा जाये और मैं आँख पसारे देखता रहूँ ? ऐसा होनेसे मुझे जितना पाप होता, उतना तुम्हारा हाथ काटनेसे नहीं हुआ।"

यह सुन भूरिश्रवाने प्रायोपवेशन कर—भूखों रहकर— मरनेके विचारसे वहीं शर-शय्या तैयार की और अपने इष्टदेवका स्मरण करने लगा। यह देख, समस्त कौरवगण अर्जुनको धिक्कारने और धर्मकी दुहाई देने लगे। सब सुनकर अर्जुनसे न रह गया—उनका पुराना शोक और प्रतिहिंसा मानो नयी हो आयी। वे बोले,—"अपने पक्षवालोंकी रक्षा करना मेरा परम कर्त्तव्य है। सात्यकि मेरा शिष्य था—उसके प्राण सङ्कटमें थे—मैंने उसकी रक्षा की। यह कोई पाप-कर्म नहीं हुआ ; परन्तु तुम लोगोंने जो मिल-जुलकर अकेले और निहत्थे बालक अभिमन्युको मार डाला था, वह क्या धर्म था ?"

अर्जुनकी ये बातें सुन भूरिश्रवाने लज्जासे सिर नीचा कर लिया और अपने कटे हाथसे इशारा किया, कि "हाँ, तुम ठीक कहते हो। तुमने कुछ भी बुरा नहीं किया।"

इसी समय सात्यकिने हतज्ञान होकर भूरिश्रवाका सिर काट डाला। चारों ओरसे लोग उन्हें इस नीच कार्यके लिये धिक्कार देने लगे। अर्जुनने भी उन्हें इसके लिये बहुत फटकारा ; पर सात्यकि करते क्या ? उनको क्रोधमें कुछ न सूझा और जोकुछ मनमें आया, कर बैठे। अब तो जो कुछ होना था, वह हो गया।

जयद्रथ-वध।

अर्जुनने देखा, कि अब दिन बहुत थोड़ा रह गया है ; अभीतक असली काम कुछ भी नहीं हुआ। यह सोचकर वे उस स्थानपर

आये, जहाँ जयद्रथ बड़े-बड़े महारथियों द्वारा घिरा हुआ था। सारे दिनके परिश्रमके बाद अपना शिकार सामने पाकर अर्जुनके चेहरेपर प्रसन्नता और उत्साह छा गया और वे बड़े वेगसे उस ओर दौड़े।

उन्हें इस प्रकार शीघ्रतासे बढ़ते देख, दुर्योधनने कर्णको अर्जुनसे लड़नेके लिये ललकारा। पहले-पहल तो कर्णने कुछ शिथिलतासी दिखलायी; पर पीछे दुर्योधनके बहुत कहने-सुननेसे वे तैयार हो गये। अनेक वीरोंका संहार करते हुए अर्जुन कर्णके पास आ पहुँचे। आतेही उन्होंने पैने बाणोंसे कर्णकी सारी देह लहू-लुहान कर दी। उनका रथ टूट गया; तब वे जाकर अश्वत्थामाके रथपर सवार हो गये। अब अर्जुनका अश्वत्थामा और मामा शल्यसे युद्ध होने लगा। शत्रुओंने बाणोंकी बेतरह वर्षा की; पर अर्जुनका तेज तनिक भी मलिन न हुआ। वे और भी भयानक युद्ध करते हुए लगातार कौरव-वीरोंका संहार करने लगे।

इसी समय कुछ-कुछ अँधेरासा हो आया। कौरवोंने सोचा, "बस अब क्या है? अब तो सन्ध्या हुआही चाहती है, अर्जुनकी प्रतिज्ञा नहीं पूरी हुई; जयद्रथ बच गये। अब तो अर्जुनको जीते-जी चितापर आरोहण करना पड़ेगा।" जयद्रथ मारे आनन्दके फूल उठा और अपने सुरक्षित स्थानसे बाहर निकलकर सूर्यकी ओर देखने लगा। सबने देखा, कि सूर्यका विम्ब छिप गया है और सारे संसारपर सन्ध्याकी अँधियारी फैल रही है।

जयद्रथको सिर उठाकर सूर्यकी ओर देखते देख, कृष्णने अर्जुनसे कहा,—"अर्जुन! अब क्या देख रहे हो? जयद्रथको मारनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है, केवल थोड़ी देरके लिये सूर्य-विम्ब बादलोंमें छिप गया है। जयद्रथ ऊपर मुँह किये आसमानकी ओर देख रहा है; अभी उसका सिर काट डालो।"

अर्जुनने तत्काल एक वाण मारकर जयद्रथका सिर धड़से अलग कर दिया। कौरव लोगोंने समझा, कि अर्जुनने प्रतिज्ञाके विरुद्ध, सूर्यास्तके बाद, जयद्रथका वध किया है; परन्तु कुछही क्षणमें जब बादलोंके भीतरसे सूर्यका अस्त होता हुआ लाल विम्ब निकल आया, तब तो सबके चेहरेका रङ्गही उड़ गया।

विकट युद्ध।

जयद्रथके मारे जानेसे कौरव-दलमें हाहाकार मच गया। सारी सेना त्राहि-त्राहि करने लगी। इधर क्रोधमें आकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाने अर्जुनपर आक्रमण किया; पर अर्जुनने उन्हें कुछही देरमें मार भगाया। उस दिन वीरोंमें ऐसा जोश भर रहा था, कि वे रातमें मशालें जला-जलाकर लड़ते रहे। अर्जुनने कितना चाहा, कि कर्णसे लड़ें; परन्तु कृष्णाने अपनी चतुराईसे उस दिन कर्ण और अर्जुनका युद्ध न होने दिया। इधर सात्यकि और कर्णमें बड़ी मार-काट हुई। बीचमें अश्वत्थामा, कृतवर्मा आदिने मिलकर सात्यकि-पर आक्रमण किया; पर वे सात्यकिका कुछ भी विगाड़ न सके।

जयद्रथके मारे जानेसे दुर्योधनको द्रोणके ऊपर बड़ा गुस्सा आया। वह द्रोणके पास जाकर उत्तेजित स्वरमें कहने लगा,—"गुरुवर! आपके मौजूद रहते हुए भी हमारा पक्ष दिन-दिन छीजता चला जाता है। एक-एक करके सभी नामो-नामी वीर रण-शय्या-पर सो गये! सबने मेरे लिये अपने अमूल्य प्राणोंकी बलि दे दी; पर आपने अभीतक कुछ भी न किया; खड़े-खड़े तमाशा देखा किये और आपके सामनेही मेरे भाई और जयद्रथ मारे गये। आपको सेनापति बनाकर मैंने क्या लाभ उठाया? इस समय तो मेरा मरना-ही अच्छा मालूम होता है।"

इन जली-कटी बातोंको सुनकर द्रोण बोले,—"दुर्योधन! तुम क्यों मुझे व्यर्थ अपने वचन-बाणोंसे बेध रहे हो? मैं तो तुमसे बराबर कहता आया हूँ, कि अर्जुनको जीत लेना देवताओंके लिये भी सहज नहीं है। तीनों लोकोंमें जिनकी बराबरी करनेवाला धनुर्द्धर कोई न था, वे भीष्म भी उसके बाणोंके शिकार हो चुके, दूसरोंकी तो बातही क्या है? सच जानो, इस समय जुएके वे पाँसे-ही बाण बन-बनकर कौरवोंका संहार कर रहे हैं, जिनके सहारे तुमने पाण्डवोंके साथ अन्याय किया था। अधर्म और अन्यायका फल कब अच्छा हुआ है? जुआ खेलकर पाण्डवोंको सतानेके लिये हमलोगोंने तुम्हें कितना मना किया था, पर तुमने एक न सुनी; सबको पैरोंसे ठुकरा दिया। अब क्यों पछता रहे हो? जैसा किया है, वैसा पाओगे। ब्रह्मा भी अब उसमें बाधा नहीं डाल सकते। लो, तुम मेरे ऊपर अकड़ते हो, तो मैं जाता हूँ; जान हथेलीपर रखकर युद्ध करूँगा सही; पर मुझे तो कुछ होता-जाता नहीं दीखता। अच्छा, तो देखो, अब तुम भी सेनाकी रक्षाके लिये पूरी तरहसे तैयार हो जाओ।"

यह कहकर द्रोण पाण्डव-सेनाकी ओर अग्रसर हुए। उन्होंने लगातार बाण-वर्षाकर पाण्डवोंको अस्त-व्यस्त कर दिया। दुर्योधनने सहस्रों वीरोंको मार गिराया। दुर्योधनका यह दुस्साहस देख, युधिष्ठिरने मारे बाणोंके थोड़ीही देरमें उसे बिल्कुल निकम्मा कर दिया। भीम और द्रोणने बड़ा विकट युद्ध किया। दोनोंके हाथोंसे विपक्षी वीर कट-कटकर गिरने लगे। घटोत्कच और अश्वत्थामा भी बड़ी देरतक लड़ते रहे। अश्वत्थामाके लिये घटोत्कचका पराक्रम सहना कठिन हो गया; पर उसने बड़ेही साहस और कौशलके साथ घटोत्कचके आक्रमणोंको व्यर्थ कर दिया।

घटोत्कच-वध ।

इधर भीम, सोमदत्तसे युद्ध कर रहे थे। भीमने जब सोमदत्त-को एक शस्त्रके आघातसे मूर्च्छित कर दिया, तब उसके पुत्र वाल्हीक-ने भी शक्ति मारकर भीमको बेहोश कर दिया। कुछ देर बाद जब वे होशमें आये, तब उन्होंने वाल्हीकपर गदाका एक ऐसा हाथ तानकर मारा, कि उसकी खोपड़ीके टुकड़े-टुकड़े हो गये।

इसके बाद भीमने दुर्योधनके नौ भाइयोंको मार डाला। तद-नन्तर उन्होंने कर्णके भाई वृषरथ, शकुनिके भाई शतचन्द्र और धृत-राष्ट्रके सात सालोंको भी मार गिराया।

एक ओर युधिष्ठिर और द्रोणका युद्ध जारी था; पर सौ-सौ युक्तियाँ करनेपर भी वे युधिष्ठिरको न हरा सके।

इसी अवसरमें कर्णने पाण्डवोंकी सेनाको छिन्न-भिन्न करना शुरू किया। सब लोग घबराकर इधर-उधर भागने लगे। यह देख, अर्जुन वहाँ आ पहुँचे और कर्णके आक्रमणोंको रोकनेकी चेष्टा करने लगे। अर्जुनने उनके रथ और सारथिका नाश कर डाला। यदि भाग्यवश कृपाचार्य वहाँ न पहुँच जाते, तो कर्णकी मृत्यु निश्चित थी। इसके बाद कर्णने जो वीरता दिखलायी, उससे सब घबरा उठे। युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा,—"भाई! कर्णके तेजको शीघ्र मन्द करो, नहीं तो सारी सेना अभी नष्ट हुआ चाहती है।"

अर्जुनने श्रीकृष्णको अपना रथ कर्णके पास ले चलनेके लिये कहा; परन्तु कृष्णने वहाँ जानेके लिये मना किया और घटोत्कचको भेजनेकी सम्मति दी। आज्ञानुसार घटोत्कच कर्णसे लड़ने गया।

उस समय घटोत्कचने बड़ाही भयङ्कर युद्ध किया। उससे सारी कौरव-सेना त्राहि-त्राहि पुकार उठी। ऐसा मालूम होने लगा, मानो

आजही समस्त कौरव-सैन्यका संहार हो जायेगा ! यह देख, कर्णने अपनी, बहुत दिनोंसे गाढ़े समयमें काम करनेके लिये रखी हुई, शक्तिके द्वारा घटोत्कचका पेट फाड़ डाला। यह शक्ति वे, अर्जुनको मारनेके लिये, बड़े यत्नसे रखे हुए थे ; पर आजकी विकट अवस्थासे अपना बचाव करनेके लिये, उनको, इससे काम लेनेके सिवा, दूसरा कोई उपायही नहीं दिखलाई पड़ा। इसलिये उनकी मनकी मनहीमें रह गयी और शक्ति भी जाती रही।

घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डव बड़े उदास हुए ; पर श्रीकृष्णके चेहरेपर ज़रा भी मलिनता नहीं दिखलाई पड़ी। यह देख अर्जुनने पूछा,—"हे माधव ! अपने भतीजेके मारे जानेसे हमलोगोंको तो इतना शोक हो रहा है ; पर आप उससे बिल्कुलही उदासीन दिखाई दे रहे हैं ; यह कैसी बात है ?"

श्रीकृष्णने कहा,—"अर्जुन ! कर्णके पास इन्द्रकी दी हुई जो अमोघशक्ति थी, उसके रहते हुए स्वयं यमराजके लिये भी वे अवध्य थे। कर्णने अपना कवच और कुण्डल देकर इन्द्रसे यह शक्ति प्राप्त की थी और उसी दिनसे उसे तुम्हारा नाश करनेके लिये रख छोड़ा था। आज इसीलिये मैंने तुम्हारा और कर्णका सामना नहीं होने दिया। अब वह शक्ति घटोत्कचके ऊपर चलाकर उन्होंने अपनेको बिल्कुलही निर्बल बना लिया है। अब तुम उन्हें जीते-जीही मरा हुआ समझो। यही कारण है, जो मुझे तुम्हारी तरह घटोत्कचके मरनेका शोक नहीं हुआ। अच्छा, देखो, द्रोणके आक्रमणसे हमारी सेना बेतरह व्याकुल हो रही है, इसके बचावके लिये जल्द चेष्टा करो ; नहीं तो द्रोणके हाथों कोई भारी अनर्थ हुआ चाहता है।"

यह सुन युधिष्ठिर द्रोणके विरुद्ध लड़ने चले। साथ-साथ अर्जुन भी बड़े वेगसे दौड़े। द्रोणकी रक्षाके लिये दुर्योधनने असंख्य

वीर भेजे। बड़ाही विकट संग्राम छिड़ गया। रातकी अँधियारी बहुत गाढ़ी हो गयी थी; सिपाही भी लड़ते-लड़ते बहुत थक चुके थे; अतएव अर्जुनने सब लोगोंको विश्राम करनेकी सम्मति दी। शत्रु-पक्षके सेनापतिने भी यह बात मान ली और घोर युद्ध करके थके हुए सभी सैनिक, रण-स्थलमेंही, जहाँ-के-तहाँ सो गये।

द्रुपद-विराट-वध।

सवेरा होतेही दोनों दल फिर लड़नेके लिये तैयार हो गये। दुर्योधनने द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर कहा,—"गुरुदेव! आप पाण्डवोंको सदा सहारा देते रहे हैं। कल वे खूब थक चुके थे, थोड़ी देरतक और लड़नेसे वे निश्चयही मारे जाते; पर आपने युद्ध बन्दकर उलटा उन्हें आराम करनेका अवसर दे दिया। इसलिये उनको तो लाभही रहा; पर हमलोगोंने व्यर्थ अपने वीरोंकी हत्या करवायी। मैं देखता हूँ, कि आपसे मेरा मनोरथ पूर्ण न होगा।"

दुर्योधनके इन, विषैले बाणोंसे भी अधिक, भयङ्कर वचनोंको सुनकर द्रोणकी हड्डी-हड्डी सुलग उठी। वे क्रोधसे अधीर होकर कहने लगे,—"दुर्योधन! तुम बड़े भारी मूर्ख हो। तुम्हें बात करनेतकका शऊर नहीं है। मैं तो तुम्हारे लिये जी-जानसे लड़ रहा हूँ और तुम उलटे मेराही तिरस्कार कर रहे हो। क्या यही उपकारका बदला है? जाओ, यदि मेरा किया कुछ होनेका नहीं, तो जिसका किया कुछ हो सके, उसीके सिर सेनापतित्वका सेहरा बाँध दो। तुम लोगोंके जीमें जैसा आये करो, मुझे तो केवल पाञ्चालोंको मारकर केवल अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी करनी है।"

यह सुन दुर्योधनने कौरव-सेनाको दो भागोंमें बाँट दिया। एक-के सेनापति द्रोण और दूसरेके कर्ण बनाये गये। इसके बाद भय-

कर लड़ाई छिड़ गयी। युधिष्ठिरने द्रोणपर आक्रमण किया; अर्जुन उनकी रक्षा करने लगे। उधरसे द्रुपद और विराट्, द्रोणके ऊपर टूट पड़े। दोनोंनेही आचार्यको बेतरह तंग कर डाला; पर अन्तमें आचार्यने उन दोनोंकोही मार डाला। पिताको मारे जाते देख, धृष्टद्युम्नने प्रतिज्ञा की, कि आज यदि मैं द्रोणको न मार सकूँ, तो कदापि मेरी सद्गति न हो।

इसके बाद एक ओरसे पाञ्चाल और दूसरी ओरसे अर्जुन द्रोणपर आक्रमण करने लगे। उधर दुर्योधन और दुःशासनके साथ नकुल और सहदेव तथा भीमके साथ कर्णका घोर युद्ध होने लगा। ये लोग भी खूब जी खोलकर लड़े।

द्रोणके साथ अर्जुनकी बड़ी भयङ्कर लड़ाई हुई; किन्तु अर्जुन उन्हें जानसे नहीं मारना चाहते थे। अर्जुनके रण-कौशलको देख-देखकर द्रोण फूले अङ्ग नहीं समाते थे। वे मन-ही-मन कहते थे,—"अर्जुन जैसे महान धनुर्धरका गुरु होकर मैं धन्य हो गया!" मानो युद्ध-कालमें, शत्रु-रूपमें एक दूसरेके सम्मुख उपस्थित होनेपर भी, गुरु-शिष्यका पवित्र भाव दोनोंके हृदयमें प्रबल भावसे जागरित था। हाय! एक दिन आज भी है, कि अदनीसी बातपर, गुरु-चेलेकी बात तो दूर रही, बाप बेटेका, भाई भाईका स्नेह भूल जाता है और वे हिंस्र पशुओंसे भी बढ़कर निर्दयताके साथ एक दूसरेका रक्त-पान करनेको तैयार हो जाते हैं। यह सब समयका प्रभाव है!

द्रोणाचार्य-वध।

इधर द्रोण अर्जुनसे भी युद्धकर रहे थे और उधर एक-एक करके पाञ्चाल-वीरोंको भी रण-चण्डीके हवाले करते जाते थे। यह देख कृष्ण-के मनमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई; उन्होंने अर्जुनसे कहा,—"अर्जुन!

जबतक आचार्यके हाथोंमें धनुप-बाण है, तबतक हम-तुम तो क्या, स्वयं देवराज भी उन्हें पराजित नहीं कर सकते। इसलिये कोई ऐसा उपाय करो, जिससे वे व्याकुल होकर हथियार रख दें। हथियार वे एकही प्रकारसे रख सकते हैं। पुत्रपर उनकी बड़ी ममता है; अतएव यदि कोई जाकर उनसे कह दे, कि आपका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया, तो उनका सारा जोश ठण्डा पड़ जायेगा और वे काठके पुतले जैसे निकम्मे हो जायेंगे।"

किन्तु अर्जुनने कृष्णकी इस बातपर ज़रा भी ध्यान न दिया। वे चुपचाप पहलेकी तरह लड़ते रहे। तब कृष्णने युधिष्ठिरको बहुत कुछ समझा-बुझाकर राज़ी कर लिया।

अवन्ति-नरेश इन्द्रवर्माके पास अश्वत्थामा नामका एक हाथी था। भीमने उसे मार डाला और ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाकर कहने लगे, कि "अश्वत्थामा मारा गया।" उनके सुरमें सुर मिलाते हुए युधिष्ठिरने भी कहा,—"अश्वत्थामा हतः नरो वा कुञ्जरो वा।" जिस समय युधिष्ठिर इस वाक्यका अन्तिम अंश कह रहे थे, उस समय कृष्णने इतने ज़ोरसे शङ्ख और घण्टा बजाना आरम्भ किया, कि वह अंश द्रोणके कानोंमें न पहुँचा। सत्यवादी युधिष्ठिरके मुँहसे यह संवाद सुनकर द्रोणको सन्देह करनेका कोई कारण न रहा और वे शोकसे विह्वल हो उठे। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका खून ठण्डा पड़ गया और उन्होंने घबराकर अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल दिये।

युधिष्ठिर जीवनमें कभी झूठ न बोले थे; पर कृष्णने, समयकी विकटता और राजनीतिकी चाल समझाकर, उन्हें इसपर राज़ी कर लिया था। उनका रथ कभी धरती न छूता था; उनके सत्यके प्रतापसे वह सदा भूमिसे चार अंगुल ऊँचा रहता था; परन्तु जीवनमें एक बार असत्य कहतेही उनका रथ भूमिमें गड़सा गया।

द्रोणने अपने हथियार फेंककर कहा,—"दुर्योधन! राम तेरा भला करे ; मैं तो अब चला। जिस पुत्रकी ममतासे मैंने ब्राह्मण होकर क्षत्रिय-धर्म स्वीकार किया, तपस्वी होनेके बदले धनुर्धर बना, क्षमा करनेके स्थानमें प्रतिहिंसाको—बदला लेनेकी प्रवृत्तिको—हृदय-में स्थान दिया, जब वही न रहा, तब मेरा हथियार बाँधना व्यर्थ है!" यह कह, वे व्याकुल होकर विलाप करने लगे।

अच्छा अवसर देख, पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये, धृष्टद्युम्न द्रोणकी ओर बढ़ा। सभी विचारवान् लोग उसे धिक्कार देने और रोकने लगे। अर्जुन भी उसको रोकनेके लिये अपने रथसे उतर पड़े ; परन्तु उसने किसीकी परवाह न की और शोकसे व्याकुल, निहत्थे द्रोणाचार्यका सिर काटही डाला! विधिका विधान पूरा हुआ ; देवताका वरदान सफल हुआ। अतन्में द्रोण-हन्ता द्रुपद-पुत्रने द्रोणकी हत्या करही डाली!

भीमने प्रसन्न होकर धृष्टद्युम्नको गलेसे लगाया और कहा,—"जिस दिन कर्ण और दुर्योधन भी इसी तरह मारे जायेंगे, उस दिन फिर भी मैं तुम्हें गले लगाऊँगा। आज तुमने बड़ा भारी काम कर डाला। तुम्हारी सदा जय हो।"

द्रोणके मारे जातेही कौरव-दलमें भयानक कोलाहल मच गया। सारे सैनिक, डरके मारे, मैदान छोड़कर भागने लगे। दुर्योधन, कर्ण, शल्य, कृप आदि सभीके पैर उखड़ गये।

उस समय अश्वत्थामा दूसरी ओर युद्ध कर रहा था। उसे अपने पिताकी मृत्युका कुछ भी हाल मालूम न था। उसने आतेही देखा, कि सैनिक लोग बेतहाशा भागे चले जारहे हैं! यह देख उसने पूछा,—"भाई! यह क्या बात है, जो तुम सब-के-सब लड़ाई-का मैदान छोड़कर भागे जा रहे हो?" उत्तरमें जब उसने यह

सुना, कि नीचता और धोखेके साथ, धृष्टद्युम्नने उसके पिताको मार डाला है, तब तो उसके क्रोधका कोई ठिकानाही न रहा। उसने प्रतिज्ञा की, कि आज मैं अवश्यही पाण्डव-वीरोंका संहार कर डालूँगा।

अश्वत्थामाके पास नारायणास्त्र नामका एक बड़ा भयानक अस्त्र था। उसका प्रतिकार किसीको भी मालूम न था। देवता भी उसके सामने नहीं ठहर सकते थे। अश्वत्थामाने अपने धनुषपर वही नारायणास्त्र चढ़ाकर छोड़ दिया।

उस अस्त्रके छूटतेही सर्वत्र भयङ्कर जल-वृष्टि होने लगी। वज्र-कासा भयानक धड़ाका हुआ। सूर्य छिप गया। चारों ओर अन्धेरा छा गया। भूमि काँपने लगी। समुद्रका जल उफनने लगा। नदियाँ उलटी धारसे बहने लगीं। उस अस्त्रके भीतरसे अनेकानेक अस्त्र निकल-निकलकर पाण्डव-सैन्यका संहार करने लगे। सब लोग त्राहि-त्राहि कर उठे! कृष्णको उस अस्त्रका प्रतिकार मालूम था। उन्होंने चिल्लाकर कहा,—"इसे सब लोग साष्टाङ्ग प्रणाम करो; बस, इसकी शान्ति हो जायेगी।" कृष्णकी इस आज्ञाका सबने पालन किया; पर भीम मचल गये और गदा लेकर अस्त्रको काटने दौड़े। नारायणास्त्रने तो उसदिन उनका खात्माही कर दिया होता, यदि श्रीकृष्णने उनके हाथसे बलपूर्वक गदा छीनकर साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके लिये उन्हें दबा न दिया होता।

नारायणास्त्रको इस प्रकार विफल होते देख, अश्वत्थामाको बड़ा विस्मय और दुःख हुआ। किसी प्रकार अपने मनके शोक-दुःखको दबाकर, उसने फिर भयङ्कर युद्ध करना शुरू किया। पाण्डव-पक्षके बड़े-बड़े वीरोंको उस बड़े बापके बेटेने हैरान कर डाला। सब-के-सब दुम दबाकर उसके सामनेसे हट गये।

अपनी सेनाके सभी वीरोंको इस तरह अश्वत्थामाके सामनेसे

प्राण लेकर भागते देख वीर अर्जुनको बड़ी चिन्ता हुई। वे झटपट वहाँ आकर वीरोंको भागनेसे रोकने लगे; पर वे लोग अश्वत्थामाकी मारसे ऐसे व्याकुल हो गये थे, कि अर्जुनकी बातोंका उनपर कुछ भी असर नहीं हुआ। वे सब लगातार भागतेही चले गये। यह हालत देख, कृष्णको भी बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई और वे भी अर्जुनके सुर-में-सुर मिलाकर भागते हुए योद्धाओंको समझाने और धैर्य देते हुए उनका उत्साह बढ़ाने लगे। इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्णके बहुत समझाने-बुझानेके बाद वीरोंके उखड़े हुए पैर फिरसे जम गये और अर्जुनको निश्चिन्त-मनसे अश्वत्थामाके साथ युद्ध करनेका अवसर मिल गया।

अश्वत्थामाके सामने आतेही अर्जुनने कहा,—"गुरु-पुत्र! अब तुम औरोंसे लड़ना छोड़कर थोड़ी देर मेरा भी तो सामना करो। तुम अपने सामने सबको तुच्छही समझ रहे हो; पर ज़रा मुझसे आकर भिड़ो, तो मैं तुम्हें दिखा दूँ, कि तुम कितने पानीमें हो।"

अर्जुनने, आजसे पहले, अपने गुरु-पुत्रके प्रति ऐसे अपमान-जनक शब्दोंका व्यवहार कभी नहीं किया था; पर इस समय अश्वत्थामाके अस्त्र-शस्त्रोंने उनकी सेनामें जो भगदड़ मचा दी थी, और उनके प्राणसे भी प्यारे वीरोंको जैसा हैरान-परेशान कर दिया था, उसे देखकर अर्जुनका मन ठिकाने नहीं था। वे क्रोधसे जल-भुनकर तिलमिला रहे थे और इसीसे उन्होंने अश्वत्थामाको ऐसी जली-कटी सुनायी थी।

अर्जुनकी यह गर्वसे भरी हुई बात सुन, अश्वत्थामाको भी बेतरह गुस्सा चढ़ आया और उसने उनके सामने आ, जल-स्पर्शकर, एक भयानक आग्नेय-अस्त्रको अभिमन्त्रित किया और कृष्ण तथा अर्जुनकी ओर लक्ष्यकर छोड़ दिया। उसके छूटतेही आकाश-

मण्डलमें घोर अग्नि प्रकट हुई ; चारों ओर बाणोंके बादलसे छा गये और अन्धकारसे दसों दिशाएँ छिप गयीं ! उस महा-भयङ्कर आग्नेयास्त्रके प्रकट होतेही पाण्डव-सेनामें घोर हाहाकार मच गया—सब लोग प्राण बचानेके लिये व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे। थोड़ीही देरमें चारों ओर आग-ही-आग दिखाई देने लगी और ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानो अभी इस अग्निमें संसार जलकर भस्म हो जायेगा !

कौरव-सेनाके लोग, पाण्डवोंकी सेनाको इस प्रकार भस्म होते देख, बड़े प्रसन्न हुए और भेरी, शंख आदि बाजे बजाकर बार-बार अपना हर्ष प्रकट करने लगे। अश्वत्थामाने अपने मनमें सोचा, कि नारायणास्त्रके वारसे पाण्डव भलेही बच गये हों ; पर इस आग्नेय अस्त्रसे उनके प्राणोंकी रक्षा होनी एकबारगी असम्भव है।

देखते-ही-देखते अश्वत्थामाके उस आग्नेयास्त्रने पाण्डवोंकी एक अक्षौहिणी सेना जलाकर भस्म कर दी। बड़े-बड़े शूर-वीर योद्धा, प्राण-रहित होकर, इस प्रकार रण-भूमिमें गिर पड़े, जैसे वज्रके मारे हुए वृक्ष टूट-टूटकर पर्वतोंपर गिर पड़ते हैं।

यह देख, अर्जुनने ब्रह्मास्त्र छोड़कर उस आग्नेयास्त्रका प्रतिकार किया। दूसरा वार भी खाली जाते देख, अश्वत्थामाको बड़ा खेद हुआ और वह लज्जित होकर रण-क्षेत्रसे बाहर निकल गया। जाते-जाते कहता गया,—"अच्छा, कल देखा जायेगा। एक-एकको मार-कर पिताका बदला न ले लिया, तो मेरा नाम अश्वत्थामा नहीं।"

कर्ण-पर्व

कर्णका सेनापतित्व।

सञ्जयके मुखसे द्रोणाचार्यकी मृत्युका दुःसंवाद पाकर, कौरव-राज धृतराष्ट्र मूर्च्छितसे हो रहे। राज-भवनमें भयानक हाहाकार मच गया। धृतराष्ट्र पछताते हुए अपने पुत्रोंकी निन्दा और पाण्डवोंकी प्रशंसा करने लगे।

उधर कौरवोंकी छावनीमें यह विचार होने लगा, कि द्रोणका स्थान अब किसको देना चाहिये। अश्वत्थामाने कहा,—"महावीर कर्ण बड़े भारी योद्धा हैं; इसलिये मेरी राय है, कि उन्हेंही अपनी सेनाका सेनापति बनाया जाये। उनके सेनापति होनेसे हमलोग अवश्यही शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर सकेंगे।"

दुर्योधनने भी इस सम्मतिको पसन्द किया और कर्णसे कहा,—"मित्र! तुम्हारे सिवा अब कोई ऐसा वीर मुझे नज़र नहीं आता, जो सेनापति बनाया जाये; अतएव तुम मेरी रक्षाके लिये सेनापति बनना अवश्य स्वीकार कर लो।"

कर्णने स्वीकार कर लिया। सैनिकोंने बड़ी धूम-धामके साथ उनका स्वागत करते हुए हर्ष-ध्वनि की। मानो सबमें नये जीवनका सञ्चार हो गया; उत्साहकी नदी उमड़ आयी। शल्यने बड़ी प्रसन्नतासे कर्णका सारथि होना स्वीकार किया। दुर्योधनको इस

बातका पूरा भरोसा था, कि कर्णके हाथों पाण्डव अवश्य मारे जायेंगे। भीष्म और द्रोण ऊपरसे तो मेरी ओरसे लड़ रहे थे, पर उनके हृदयमें पाण्डवोंके प्रति अगाध प्रेम भरा हुआ था। हाँ, कर्णके हृदयमें, सिवा मेरे स्नेहके, और किसीके लिये स्थान नहीं है। अतएव, वे आज उन्हें बिना मारे कदापि न छोड़ेंगे।

सोलहवें दिन कर्ण, मकर-व्यूहकी रचनाकर, समर-भूमिमें अवतीर्ण हुए। पाण्डवोंने भी अर्द्धचन्द्र-व्यूह बनाकर युद्धकी तैयारी की। प्रातःकालके सूर्यकी सुनहरी किरणोंमें वीरोंकी तलवारें चमचमा उठीं। आज एक बड़े भारी हाथीपर चढ़कर भीम लड़ाईके मदानमें उतरे। उन्होंने पहले तो क्षेमधूर्त्तिको मार गिराया, इसके बाद वे अश्वत्थामासे जा भिड़े। बड़ी देरतक लड़ाई होती रही। अन्तमें दोनोंही अचेत होकर अपनी-अपनी सवारियोंमें गिर गये। तब दोनोंके सारथि और महावत अपने-अपने स्वामियोंको लेकर मैदानसे भाग निकले। उधर अर्जुन बचे-खुचे त्रिगर्त्त-वीरोंका नाश कर रहे थे। होशमें आकर अश्वत्थामा इसबार उनसे ज़बर्दस्ती जा भिड़ा। तब गुरु-पुत्रको उन्होंने अपने बाणोंसे बेतरह घायलकर रण-भूमिसे भगा दिया।

इसी अवसरपर दण्डधारने अर्जुनपर आक्रमण किया; पर अर्जुन जैसे बलीकी मार न सह, वह थोड़ीही देरमें मारा गया। उसके मारे जानेपर उसका भाई लड़ने आया। उसको भी समर-शय्यापर सुलाकर अर्जुन फिर त्रिगर्त्त-सेनासे युद्ध करने लगे।

इसके बाद कर्ण और नकुलका युद्ध होने लगा। नकुल कर्णके हाथों बुरी तरह हारे; पर कुन्तीके सामने की हुई अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने नकुलके प्राण नहीं लिये। इधर धृष्टद्युम्नको भी कृपाचार्यने बड़ा दबाया और वे वहाँसे रथको दूर भगा ले गये।

सेनापति कर्ण।

"सोलहवें दिन कर्ण, मकर-व्यूहकी रचनाकर समर-भूमिमें अवतीर्ण हुए।"

[पृष्ठ—२५०]

Herman Press, Calcutta.
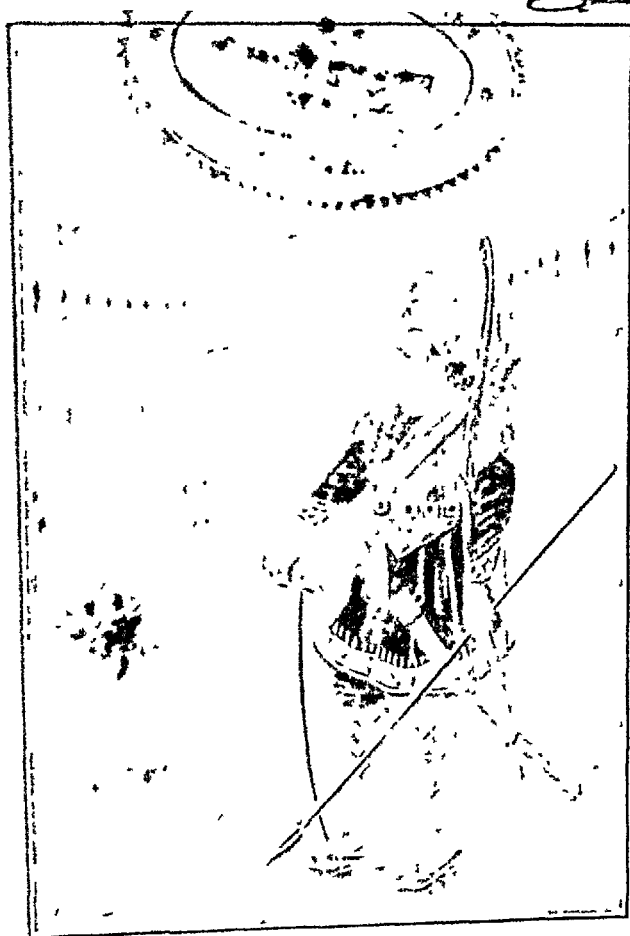
दुर्योधन और युधिष्ठिरमें भी बड़ी देरतक युद्ध होता रहा। अन्तमें युधिष्ठिरके शस्त्र-प्रहारसे दुर्योधन बेहोश होकर गिर पड़ा। उसे गिरते देख, भीमने कहा,—"भैया! देखना, कहीं दुर्योधनको आप न मार डालना ; क्योंकि उसे मारनेकी प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूँ। उसे मेरे लिये छोड़ दीजिये।"

युधिष्ठिरने सचमुच दुर्योधनको छोड़ दिया। सन्ध्यातक बड़ा भयानक संग्राम होता रहा। कर्ण और अर्जुनने, अपने रण-कौशलसे, असंख्य वीरोंको यम-धाम भेज दिया। सन्ध्या होतेही युद्ध बन्द कर दिया गया और दोनों ओरके सैनिक विश्राम करनेके लिये अपने-अपने डेरोंमें गये।

सत्रहवें दिन अर्जुनको मारनेकी विकट प्रतिज्ञा कर, कर्ण, संग्राम-भूमिमें उतरे। उनके हाथोंमें उस समय परशुरामके दिये हुए अस्त्र शोभा पा रहे थे और सारथिके कार्यमें कुशल शल्य, बड़ी कुशलताके साथ, उनका रथ-सञ्चालन कर रहे थे। यह देख, कर्णके मनमें आत्माभिमानका उदय हो आया और वे बड़े गर्वके साथ कहने लगे,—"हे शल्य! देखना, आज मैं कैसी रण-कुशलता दिखलाता हूँ। अर्जुन अपनेको बड़ा वीर समझता है ; पर आज देखोगे, कि मैं उसका यह गर्व किस प्रकार मिट्टीमें मिला देता हूँ। रणचण्डिके! यदि मेरे हाथों पापी कृष्ण और अर्जुन मारे जायें, तो मैं प्रत्येक भिक्षुकको मुँह-माँगी भिक्षा प्रदान करूँगा।"

शल्य,—"कर्ण! तुम यह क्या कहते हो? अर्जुनको तुम त्रिकालमें भी नहीं मार सकते। तुम जैसे सैकड़ों वीरोंको, वह, अकेलाही परास्त कर सकता है। आज तुम कुछ पहले-पहल यह प्रतिज्ञा नहीं कर रहे हो, वरन् अर्जुन-वधकी प्रतिज्ञा तुम इससे पहले, सैकड़ों बार कर चुके हो ; परन्तु तुम्हारी वह प्रतिज्ञा आजतक कभी

पूरी नहीं हुई। मालूम होता है, कि तुम रण-शूर नहीं, केवल वाक्य-शूर हो ; क्योंकि वीर लोग बड़े-बड़े बोल ही नहीं बोला करते, वरन् काम करके भी दिखला देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आज तुम्हारे दिन पूरे होनेको आ गये हैं। तुम्हारी कामना तुम्हें उलटाही फल देगी। तुम कभी वीरोंके सामने नहीं पड़े, इसीसे ऐसी बहँकी-बहँकी बातें कर रहे हो ; तुमसे क्या होना-जाना है ? अच्छा होता, यदि तुम लड़ाईके मैदानमें उतरते ही नहीं।"

शल्यके इन निन्दा-युक्त वचनोंको सुनकर, कर्णको बड़ा क्रोध हुआ। वे बिगड़कर शल्यको गालियाँ देने लगे ; पर शल्यने उन गालियोंकी कुछ परवा न की ; क्योंकि उन्होंने युधिष्ठिरसे प्रतिज्ञा कर ली थी, कि कर्णका सारथि बनकर, उसको तेजहीन करनेको, मैं सदा चेष्टा करता रहूँगा ; अतएव वे कर्णकी उक्त बातको सुनी-अनसुनी कर, उसको निन्दाओंका तार, लगातार बाँधते चले गये। बड़ी ले-दे और कहा-सुनी होने लगी। दुर्योधनने देखा, कि यह तो तबेलेमेंही दुलत्ती चला चाहती है। अतएव वह बीच-बचाव करनेके लिये आकर कहने लगा,—"भाइयो ! यह अवसर, आपसमेंही लड़ने-झगड़नेका नहीं हैं; सामने शत्रु हैं; पहले उनको पराजित कर लो, तब आपसमें निबट लेना या जो जी चाहे सो कर लेना।"

दुर्योधनकी बातसे दोनों चुप हो गये। इसके बाद शल्यने कर्णका रथ पाण्डवोंके व्यूहके पास पहुँचा दिया। दूरसेही अर्जुनको देख, मद्रराज शल्यने कर्णसे कहा,—"कर्ण ! देखो, तुम जिसे खोज रहे हो, वही तुम्हारा प्रबल शत्रु, अर्जुन—आँखें पसारकर देखो—किस शानके साथ गाण्डीव धन्वा लिये खड़ा है ! किस कौशलके साथ, कृष्ण, उसके रथको सैन्य-समूहके सम्मुख चला रहे हैं !"

अर्जुन उस समय त्रिगर्त्तोंसे युद्ध कर रहे थे। उन्हें देखतेही

कर्णने पाण्डव-सैन्यपर भयङ्कर रूपसे आक्रमण किया। दोनों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। वीरोंकी हुंकार-ध्वनिसे आसमान गूँज उठा। कर्णके बाण, असंख्य पाण्डव-सैनिकोंको धरा-शायी करने लगे। उधर अर्जुनने त्रिगर्त्त-राज सुशर्माको मार गिराया। भीमने दुर्योधनके छः भाइयोंको सदाके लिये भूशायी कर दिया। यह देख, कर्णने युधिष्ठिरपर ऐसा भयानक आक्रमण किया, कि उनकी बुरी दशा हो गयी। वे रण-क्षेत्रसे भाग चले। उन्हें भागते देख, सेनाके पैर भी उखड़ गये। भीम, सात्यकि और धृष्टद्युम्नने उसे बड़े-बड़े उत्साह वचनोंसे उत्साहित कर, रोक रखा। फिर दोनों पक्षोंमें जमकर लड़ाई होने लगी। कर्णके बार-बारके आक्रमणसे, भीमको बड़ा क्रोध चढ़ आया। वे गदा लेकर कौरव-सेनामें घुस पड़े और सैकड़ों हाथियों और गज-सेनाके नायकोंको मार-मारकर ढेर करने लगे। जैसे प्रचण्ड वायुके झोंकेसे मेघोंकी घनी घटा भी उड़ जाती है, वैसेही भीमके प्रचण्ड पराक्रमके आगे कौरव-सेना भी तितर-बितर होने लगी।

अर्जुन-भर्त्सना।

उधर अर्जुन त्रिगर्त्तोंको मारकर अपने पक्षको ओर चले। वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि सेनामें युधिष्ठिर नहीं हैं और अकेले भीमही, कालान्तक यमकी भाँति, शत्रु-कुलका नाश कर रहे हैं। तब उन्होंने भीमसे पूछा,—"भाई! धर्मराज कहाँ हैं?" भीमने लड़तेही लड़ते उत्तर दिया,—"वे कर्णके बाणोंसे पीड़ित हो, अपने शिविरमें चले गये हैं।" यह सुन अर्जुन भी उधरही चल पड़े।

कृष्ण और अर्जुनको समर-क्षेत्रसे लहू-लुहान शरीर लिये हुए लौटते देखकर, युधिष्ठिरने समझा, कि वे कर्णको मारकर चले आ

रहे हैं। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे पूछा,—"क्यों भाई! तुमने कर्णको किस तरह मारा ?"

अर्जुन,—"महाराज ! मैं तो अभी त्रिगर्त्त-सैनिकोंको मारकर चला आ रहा हूँ। आपको समर-क्षेत्रमें न देखकर, मुझे, बड़ी चिन्ता हुई ; इसीलिये चला आया हूँ। अब मैं कर्णकी ओर जाता हूँ और उसे बिना मारे न लौटूँगा।"

कर्णसे हारे और खिसियाये हुए युधिष्ठिरको, अर्जुनकी ये बातें सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ। वे अपने आपेमें न रहे। कर्णको इन लोगोंने अभीतक नहीं मारा—यह जानकर उनका हिताहित-ज्ञान लुप्त हो गया। वे बड़े क्रोध-भरे शब्दोंमें अर्जुन और उनके गाण्डीव-धनुषको धिक्कारने लगे। उनकी कठोर, वज्र-समवाणी, अर्जुनसे न सही गयी और वे खड्ग खींचकर, अपने उन्हीं परम पूज्य भाईको मारनेके लिये तैयार हो गये, जिनके नेत्रोंके इशारे-मात्रपर, वे, संसार-को न्यौछावर कर देनेके लिये सदा तैयार रहते थे तथा जिनकी आज्ञाका पालन करते हुए, संसारमें जहाँतक कष्ट और दुःखोंकी पराकाष्ठा है, वहाँतक उसे उठा चुके थे और उठा रहे थे। अहा ! समय भी क्याही विचित्र परिवर्त्तनशील है ! मनुष्यके अबोध मनका भी कैसा रङ्ग-बिरङ्गा व्यवहार है !!

अर्जुनको, इस प्रकार दुष्कृत्य करते देख, श्रीकृष्णने झट उनका हाथ पकड़ लिया और कहा,—"अर्जुन ! तुम यह कैसी मूर्खता कर रहे हो ? क्या तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है ? जो युधिष्ठिर तुम्हें पुत्रके समान प्यार करते हैं, जिनका तुमने आजतक कभी अनादर नहीं किया, आज तुम उन्हींको मारनेके लिये तैयार हो रहे हो ! क्या बड़ोंकी मान-प्रतिष्ठाका तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहा ? मालूम होता है, कि आज तुम पागल हो गये हो।"

श्रीकृष्णकी उक्त बातें सुन, अर्जुनके सिरसे, तत्कालही क्रोधका भूत उतर गया। वे लज्जित होकर सिर झुकाये खड़े हो रहे। कुछ देर बाद हाथ जोड़कर कहने लगे,—"भगवन्! आपने ठीक कहा। मेरी बुद्धि सचमुचही मारी गयी थी; परन्तु मैं लाचार था। मैंने प्रतिज्ञा की थी, कि जो कोई मेरे गाण्डीव-धनुषकी निन्दा करेगा, उसे मैं तत्काल मार डालूँगा। भाई साहबने इसका कुछ भी विचार न कर, मेरे धनुषको धिक्कारना आरम्भ कर दिया; इसीलिये मैं भी क्रोधके मारे अन्धा हो गया। यदि वे मुझे लाख गालियाँ देते, तोभी मैं कुछ न बोलता; क्योंकि इनकी गालियों, झिड़कियों और धिक्कारोंको मैं आशीर्वाद समझता हूँ। अब आपही कहिये, पूज्य भ्राताके ऊपर हाथ उठाकर मैंने जो महापाप किया है, उसका प्रायश्चित्त क्या है? मुझे तो आत्म-घातही एकमात्र प्रायश्चित्त मालूम होता है। अब मैं इस अधम शरीरको न रखूँगा। यह कह अर्जुनने ज्योंही अपनी गर्दनको तलवारसे उड़ा देना चाहा, त्योंही श्रीकृष्णने, तलवार समेत उनका हाथ पकड़ लिया और तलवार छीनकर दूर फेंक दी।

अर्जुनकी इस धर्मशीलताको देख युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए—उनके मनमें जो थोड़ी-बहुत ग्लानि पैदा हुई थी, वह मिट गयी। उन्होंने अर्जुनको स्नेह-पूर्वक आलिङ्गन करते हुए कहा,—"भाई अर्जुन! मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया। वास्तवमें मैंही दोषी हूँ; तुम्हारा क्रोध अन्याय-युक्त नहीं था। मैंने व्यर्थही कड़ी-कड़ी बातें कहकर तुम्हारा जी जलाया था। अच्छा, अब तुम शीघ्रही युद्धके मैदानमें जाओ और अपनी कर्ण-वधवाली प्रतिज्ञा पूरी करो।"

भाईकी आज्ञा पा, श्रद्धाके साथ उनके चरणोंमें मस्तक झुका, कृष्णको साथ लेकर, अर्जुन, फिर युद्ध-क्षेत्रमें आये। इस बार उन्होंने पक्का प्रण कर लिया, कि वे अब कर्णको मारकरही लौटेंगे।

दुःशासन-वध ।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, कि भीमसेन बड़ी भयानक मार-काट मचाये हुए हैं। दल-के-दल शत्रु, उनके सामने इस तरह गिरते जाते हैं, जिस तरह किसान पके हुए धानको काट-काटकर गिराता है। कर्ण भी बेढब फुर्ती दिखा रहे हैं। उनके एक-एक बाणसे कितनेही योद्धा एकही समय भूमिपर गिरते जाते हैं। यह देख, उन्होंने अपना रथ कर्णकी ओर बढ़ाया। रास्तेमें अर्जुनने दुर्योधनके दस भाइयोंको बात-की-बातमें मार डाला।

इसी समय सबने देखा, कि कर्णके तीखे तीरोंने, शिखण्डीकी जान लेली। यह देख, भीमको बड़ा क्रोध चढ़ आया। उन्होंने तत्काल कर्णपर धावा किया; लेकिन बीचमेंही दुःशासनने उन्हें रोककर तानेके साथ कहा,—"कहाँ जाते हो भीम! आओ, आज ज़रा मैं भी तुम्हारी वीरता देखूँ, कि तुम कैसे वीर हो!" यह ताना भीमसेनसे न सहा गया। उनका गुस्सा और बढ़ गया। वे दुःशासनपर टूट पड़े और दोनोंमें घनघोर युद्ध छिड़ गया। दोनोंकाही युद्ध-कौशल दर्शनीय था; परन्तु जोड़ कुछ विलक्षण था,—एक ओर भीमकर्मा भीम थे और दूसरी ओर दुष्टकर्मा दुःशासन! दुराचारीने पहले तो भीमको खूबही छकाया, उन्हें मारे बाणोंके चलनी कर दिया, जिसमें वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े; परन्तु थोड़ीही देर बाद, जब उन्हें चैतन्य हुआ, तब वे उठ खड़े हुए और बोले,—"दुःशासन! तू तो मेरे ऊपर अपने बल-बूतेभर वार कर चुका, अब ले, यह एक मेरा भी सम्हाल!" इतना कह भीमने बड़े ज़ोरसे दुःशासनके सिरपर गदा मारी। गदाके लगतेही उसकी खोपड़ी चकनाचूर हो गयी और वह रथसे लगभग बीस हाथकी दूरीपर जा

भीमका प्रतिज्ञा-पालन।

"भीम, दुःशासनके मर्मागसे खूनका चुल्लू पी गये।"

[illegible] Press, Calcutta.

[पृष्ठ—७५७]

गिरा। उसमें उठनेकी शक्ति न रही और वह भूमिपर पड़ा-पड़ा तड़पने लगा।

इसी समय भीमको, जुएकी सभामें किये हुए कौरवोंके, विशेषतया दुःशासनके, अत्याचार और अपमान करनेवाले वाक्य, एक-एककर याद आने लगे। द्रौपदीका वह करुण हाहाकार—पापी कौरवोंका राक्षसी अट्टहास्य—वर्षों बीत जानेपर भी, उसी तरह उनके कानोंमें गूँजने लगा, मानों आज ही वे सब घटनाएँ हुई हैं। यह सब सोचते, क्रोधसे दाँत पीसते और आँखोंसे चिनगारियाँ निकालते हुए भीमको अपनी दुःशासन-सम्बन्धी भीषण प्रतिज्ञा याद हो आयी। उन्होंने झट एक तेज़ धारवाली तलवार, ज़मीनपर पड़े हुए, दुःशासनके कलेजेमें भोंक दी। ख़ूनका फौआरा छूटने लगा। आस-पास खड़े हुए भय-भीत योद्धाओंको चकित और विस्मित करते हुए भीम, दुःशासनके गर्मागर्म ख़ूनका चुल्लू पीकर बोले,—"वीरो! आज मैं अपनी पहली प्रतिज्ञासे मुक्त हो गया। मैंने दुराचारी, नीच, सती-पीड़क, धर्मवञ्चक दुःशासनको, उसकी करनीका फल चखा दिया। इस समर-यज्ञमें जिन दो पशुओंके बलिदान करनेका मेरा सङ्कल्प था, उनमें आज एकका हो चुका! अब दुर्योधनकी बारी है; उसका बलिदान होते ही युद्धका अन्त हो जायेगा।"

भीमका भयङ्कर कार्य—मनुष्यके रक्तका पान—देखकर कौरव-सेना काँप उठी; बड़े-बड़े वीरोंके हाथसे हथियार छूट पड़े। किसीके नेत्र झँप गये; कोई डरके मारे चीखने लगा। चारों ओर एक विकट भगदड़ सी मच गयी।

दुःशासनके रक्तका पान कर, भीम, हाथीको मार कर, उन्मत्त हो फिरनेवाले जङ्गली शेरकी तरह, समर-भूमिमें दर्प-भरी मूर्त्ति और

रुधिर-भरे अङ्गोंके साथ फिरने लगे। अब भी उनकी रक्त-पिपासु गदा, कौरव-वीरोंका रक्त-पान करनेसे विरत नहीं होती थी। वे जिधर जाते, उधरही दस-बीसको मार गिराते थे। इसी तरह उन्होंने दुर्योधनके और भी कई भाइयोंको मार डाला।

दुर्योधनका हठ।

इधर युधिष्ठिरके पाससे चलकर अर्जुन कर्णसे युद्ध कर रहे थे। दोनों ओर लड़ाईके विकट बाजे बज रहे थे। घायल और मरे हुए वीर, पेड़से पके हुए फलोंकी भाँति, धड़ाधड़ गिरते जाते थे। कर्णने एक ही साथ अर्जुनपर दस बाण छोड़े; पर अर्जुनने सब व्यर्थ कर डाले और उत्तरमें दस तीखे बाण कर्णके हृदयको लक्ष्यकर छोड़े। बहुत देरतक दोनों एक दूसरेको गिरा देनेकी चेष्टा करते रहे। दोनोंके शरीरमें असंख्य घाव दिखाई देने लगे। अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, कृप आदि, कौरव-दलके प्रसिद्ध वीर, कर्णकी रक्षा कर रहे थे; परन्तु अकेले अर्जुनके आगे सबकी अक्ल हैरान थी। ऐसा मालूम होता था, मानो सिंहके आगे सियारोंका झुण्ड खड़ा है। अपनी एक भी चलती न देख, अश्वत्थामा बेतरह घबरा गया। उसने व्याकुल होकर दुर्योधनसे कहा,—

"महाराज! मुझे तो अब इस युद्धमें जय होती नहीं देख पड़ती। पाण्डव किसी तरह भी परास्त न होंगे। जिन्होंने महारथी भीष्म और धनुर्वेदके सर्वोत्तम आचार्य, मेरे पिताको मार गिराया, भला वे किसके मारे मर सकते हैं? हम-तुम, महारथी भीष्म-द्रोणके आगे, भला हैं किस खेतकी मूली? हाँ, मैं और मामा कृप किसीके हाथों नहीं मर सकते। कर्णकी तो आज कुशल नहीं दीखती; इसलिये यदि आप आज्ञा दें, तो मैं अर्जुनसे युद्ध बन्द करनेके लिये कहूँ। मुझे

विश्वास है, कि वह मेरी बात मान लेगा। कर्ण जैसे वीरके मारे जानेपर आपका कौन सहायक होगा? किसके भरोसेपर आप युद्ध जारी रखेंगे? अतएव इस सत्यानाशी युद्धको बन्द कीजिये; कौरव-कुलको समूल नष्ट होनेसे बचाइये और सन्धि कर लीजिये।"

यह सुन, दुर्योधन कुछ देरतक चिन्ता करके, अन्तमें कहने लगा,—"गुरु-पुत्र! तुम यह क्या कह रहे हो? देखते-देखते मेरे कितने भाई मारे गये और मैं अपनी जानके लिये अपमान जनक सन्धि कर लूं? भीमने भाई दुःशासनको मारकर जैसी अपमान-भरी बातें कही हैं, उन्हें मैं क्योंकर भूल जाऊँ? पाण्डवोंके साथ युद्ध करते हुए मुझे अपने मित्रों और भाइयों सहित रण शय्यापर सदाके लिये सो जाना स्वीकार है; पर युद्ध बन्द करना कदापि स्वीकार नहीं है। अपमान सहकर जीना, सहस्र बार मरनेसे भी अधिक दुःखदायी है। रही कर्णकी बात, सो उनकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी, कि सम्मुख-समरमें अर्जुनसे युद्ध करूँ। आज उनकी वर्षोंकी मनस्कामना पूरी हुई है; लड़ने दो। अर्जुन हज़ार करे, तोभी कर्णको जीतना उसके लिये एकबारगी असम्भव है। और यह तो बताओ, आज तुम्हें क्या हो गया है, जो ऐसी बहँकी-बहँकी बातें कर रहे हो? गुरु-पुत्रके मुँहसे ऐसी हल्की बातें सुननेकी मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं थी।"

इस प्रकार अश्वत्थामाका प्रस्ताव रद्द हो गया और लड़ाई जारी रही। कर्ण और अर्जुन, परस्पर एक दूसरेको मारनेके लिये, भीषण पराक्रम दिखा रहे थे। इसी बीच अर्जुनके धनुषकी डोरी टूट गयी। यह अच्छा अवसर पा, कर्णने मारे बाणोंके अर्जुनको ढँक दिया। अर्जुनके पक्षवाले कर्णके उन अमोघ बाणोंको काट न सके। यह देख, कौरव-दलके लोग मारे आनन्दके, बाजे बजाने लगे।

कर्ण-वध।

बाजोंकी ध्वनि सुन, अर्जुनको बेहद क्रोध चढ़ आया। उन्होंने झट डोरी चढ़ाली और देखते-देखते कर्णके सारे बाण काट गिराये। इसके बादही उन्होंने कर्णके ऊपर वज्रके समान अनेक भयङ्कर बाण चलाये। इसी तरह घमासान युद्ध होता रहा। कभी कर्ण प्रबल हो जाते, तो कभी अर्जुन ज़ोर दिखाते; परन्तु दोनोंमेंसे एक भी हारता नहीं दिखाई देता था।

अन्तमें कर्णने अर्जुनको किसी तरह वशमें आते न देखकर, नागास्त्रको धनुषपर चढ़ाया। उस भयानक अस्त्रका प्रयोग करते देख, शल्यने अपने मनमें विचार किया, कि अबकी बार अर्जुनपर बड़ा भारी सङ्कट आया चाहता है। अतएव, कर्णका ध्यान बँटानेके लिये, उन्होंने कहा,—"अरे यार! तुम भी यह क्या सड़ियलसा शर सन्धान कर रहे हो? इससे तुम अर्जुनका क्या बिगाड़ लोगे? कोई अच्छासा अस्त्र छोड़ो।"

शल्यने कर्णका ध्यान बँटानेकी चेष्टा तो की; पर कर्णने उनकी एक न सुनी। वे बोले,—"मेरी यह प्रतिज्ञा है, कि एक शर धनुपपर चढ़ाकर, उसे छोड़े बिना दूसरे शरको हाथ नहीं लगाता।"

इतना कह, उन्होंने नागास्त्रको छोड़ दिया। उसकी सनसनाहटसे चारों दिशाएँ गूँज उठीं; आकाशमें आगसी जलती दिखाई देने लगी। यह देख, श्रीकृष्णने रथको ऐसा झुका दिया, कि वह अस्त्र, अर्जुनके मस्तकमें न लगकर किरीटमें लगा और व्यर्थ चला गया। अर्जुनने अपने नंगे सिरपर दुपट्टा बाँध लिया और आक्रमण करनेके लिये तैयार हो गये। जिस नाग-राजने कर्णको यह अस्त्र प्रदान किया था, वह भी उस समय युद्धमें सम्मिलित था। उसने

नागास्त्रको विफल होते देख, अर्जुनपर भयानक अस्त्रोंका प्रयोग किया। उसके अस्त्रोंका खण्डन करते हुए अर्जुनने, उसका सिर भी धड़से अलग कर दिया। उससे निपटकर वे फिर कर्णकी ओर झुके। इस बार कर्णने वारुणास्त्र चलाया और सोचा, कि अबके अर्जुनका कल्याण नहीं है; परन्तु अर्जुनने उसे वायव्यास्त्रके द्वारा झटपट काट गिराया और एक ऐसा तीक्ष्ण, वज्र जैसा भयङ्कर, बाण कर्णके ऊपर चलाया, कि उसके लगतेही कर्ण अचेत होकर गिर पड़े; उनके हथियार छूट गये और क्षत-स्थानसे रुधिरकी धारा बह चली। शल्यने रथको भगा ले जानेकी बहुत चेष्टा की; पर वह अर्जुनके बाणके प्रहारसे पृथ्वीमें ऐसा धँस गया था, कि लाख चेष्टा करनेपर भी ऊपर न आया। कर्णको अचेत पड़ा देख, अर्जुनने धनुष-बाण नीचे रख दिया। यह देख श्रीकृष्णने कहा,—

"अर्जुन! यह क्या? तुमको होश है या नहीं? शत्रुको निर्बल पाकर भी तुम उसे छोड़ देते हो? कर्णको मार गिरानेका इससे अच्छा अवसर अब और कौनसा आयेगा? तुम्हारा यह काम बुद्धिमानी और युद्ध-नीतिके सर्वथा विरुद्ध है।"

श्रीकृष्णके कहे अनुसार, अर्जुनने कर्णके ऊपर छोड़नेके लिये तरकससे बाण निकालकर, उसे धनुपपर चढ़ायाही था, कि कर्णकी मूर्च्छा भङ्ग हो गयी; परन्तु इस समय उनकी परशुरामसे सीखी हुई, युद्ध-विद्या बिसर गयी थी—शरीर अवश हो गया था। लाचार उन्होंने कहा,—"अर्जुन! धर्मके नामपर अभी तीर न चलाओ; मुझे ज़रा रथके पहिये निकाल लेने दो, तब लड़ना।"

यह सुन, श्रीकृष्णने व्यङ्ग-भरे शब्दोंमें कहा,—"कर्ण! अहोभाग्य, जो आज तुम्हें धर्मका नाम तो याद आया! पर उस समय तुमने धर्मको कहाँ रख दिया था, जब तुम्हारे सामनेही, भरी सभामें,

द्रौपदीका अपमान किया गया था ? सबसे बढ़कर बात तो यह है, कि जब तुम लोगोंने एक साथ मिलकर निहत्थे बालक अभिमन्युको मारा था, तब क्या एक क्षणके लिये भी तुम्हें धर्मका ख़याल हुआ था ? फिर क्यों व्यर्थ धर्म-धर्म चिल्ला रहे हो ? तुम्हें धर्मसे क्या सरोकार ? आज तुम्हारी अन्तिम घड़ी है। चाहे जितना बल-पौरुष दिखलाओ; अब तुम्हारा छुटकारा नहीं है।"

ये मर्मभेदी बातें सुन, कर्णने लज्जासे अपना शिर झुका लिया। कुछ देर बाद, क्षात्र-तेज उदय होतेही, उन्होंने अर्जुनको युद्धके लिये ललकारा और ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र आदि, न जाने कितनी तरहके अस्त्र-शस्त्र चलाये और थोड़ी देरके लिये अर्जुनको मूर्च्छित कर दिया। अर्जुनको अचेत होते देख, कर्णने एक बार फिर रथके पहियोंको भूमिसे निकालनेकी चेष्टा की ; पर वे अपना काम करने भी न पाये थे, कि अर्जुनकी मूर्च्छा टूट गयी। यह देख, श्रीकृष्णने उस समय अर्जुनसे कहा,—"मित्र ! जबतक कर्ण रथके पहिये निकालें,उसके पहलेही तुम उनका काम तमाम कर दो।"

यह सुन,अर्जुनने इन्द्रके वज्रके समान भीषण, अञ्जलीक नामक अस्त्रको,तरकससे निकालकर गाण्डीवपर चढ़ाया और उसे कानतक खींचकर छोड़ दिया। उस अस्त्रने, मुँह फैलाये हुए कालकी तरह, जलती हुई उल्काकी तरह, आकाशको प्रकाशित करके, सबके देखते-देखते कर्णका सिर काट गिराया। बिजलीके गिरनेसे, जैसे पर्वतका शिखर कटकर ज़मीनपर गिर पड़ता है, और उससे गेरूकी धारा बह निकलती है, उसी तरह कर्णका ऊँचा शरीर भी ज़मीनपर धड़ामसे गिर पड़ा और उससे खूनकी धारा बह चली। कर्णको मरा देखकर भीम आनन्दसे नाचने-कूदने और सिंहनाद करने लगे ! पाण्डव-सेनामें बड़े उत्साहसे, खुशीके बाजे बजने लगे।

इस प्रकार, संसारमें जो अर्जुनके जोड़का एकमात्र वीर था, जिसकी दान-शीलता और वीरताकी कथा घर-घरमें विख्यात थी, जो अपनी बातका धनी और मानपर प्राण देनेवाला था, जो दुर्भाग्यवश, उच्च कुलमें पैदा होकर भी सूत-पुत्र कहलाया और जिसने अपने बल-पौरुष तथा साधुताके बलसेही राजाका पद पाया—वही वीर, धीर, गम्भीर पुरुष, महावीर अर्जुनके द्वारा रण-सेजपर, अनन्त-कालतक अटूट निद्राका आनन्द लेनेके लिये, सुला दिया गया !

इधर इतने बड़े पराक्रमी, कौरव-सेनापतिके मारे जातेही सारी सेनामें हाहाकार और भागाभाग मच गयी। सबके चेहरेपर गहरी उदासीकी छापसी पड़ गयी। दुर्योधन,—"हा कर्ण ! हा सखा !! हा मेरे एक मात्र सहायक !!!" कह कर, स्त्रियोंकी अपेक्षा भी अधिक विकलतासे रोता हुआ, अपनी छावनीमें चला आया।

कौरव लोगोंने अनेक युक्तियोंसे—विविध पुरानी कथाएँ सुना-कर—उसे दिलासा देनेका बहुत कुछ प्रयत्न किया ;किन्तु दुर्यो-धनको तो कर्ण बहुत प्यारे थे और उन्हींके ऊपर उसे, भीष्म और द्रोणकी अपेक्षा भी अधिक भरोसा था ; अतएव उनकी मृत्युके शोकसे वह, मन-ही-मन घुलने लगा। उसमें किसी भी बातसे शान्ति पानेकी सामर्थ्य न रही।

जब सब लोग अपने-अपने डेरोंमें आराम करनेके लिये चले गये, तब एक बार परम विद्वान्, वृद्ध, दूरदर्शी आचार्य कृप, युद्धके मैदानमें आये उन्होंने दृष्टि पसारकर, इधर-उधर—चारों ओर नज़र दौड़ायी। उस समय उन्हें बड़ा भयङ्कर दृश्य दिखाई दिया। वह युद्धका मैदान क्या था, मानो काल-भैरवकी क्रीड़ा-भूमि थी। योगिनियोंके खेलनेका अखाड़ा था। उन्होंने देखा, कहीं रथ टूटे पेड़ हैं, कहीं हाथी और घोड़ोंके पहाड़से लगे पड़े हैं, कहीं पैदल

सेनाके मुण्डोंके ऊँचे टीलेसे लग रहे हैं, जो लोग बच रहे हैं, वे पाण्डवोंके पराक्रमसे भय खाकर अपने जीवनकी घड़ियाँ गिन रहे हैं। घायलोंकी हाहाकार ध्वनिसे बड़ाही करुणा-भरा नज़ारा नज़र आता है।

इस दृश्यको देख, उन्होंने एक लम्बा श्वास छोड़कर, समयको प्रणाम किया और अपने डेरोंमें चले आये।

सञ्जयके मुखसे आजकी लड़ाईका समाचार सुन, अन्धे और बूढ़े राजा धृतराष्ट्र, हाहाकार कर, मूर्च्छित हो, गिर पड़े। भीष्म और द्रोणके मारे जानेसे उन्हें जो शोक हुआ था, उसकी अपेक्षा सौगुना अधिक शोक उन्हें कर्णके मारे जानेसे हुआ ; क्योंकि उन्होंने दिव्य चक्षुओंसे अपने कुलका भावी संहार देख लिया था और इसीलिये अधीर हो, वे मन-ही-मन रोने लगे।
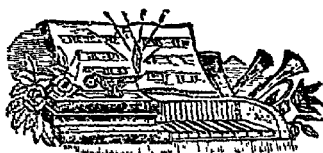
शल्य-पर्व

शल्यका सेनापतित्व।

कर्णके मारे जानेपर कृपाचार्यने, एक बार, युद्ध-भूमिकी अच्छी तरहसे देख-भालकर, दुर्योधनसे कहा,—"महाराज! आज सत्रह दिनोंसे यह नर-संहारकी लीला चल रही है। शत्रु-मित्र सभी मर रहे हैं; परन्तु विकट वीर पाण्डवोंके आगे, किसीकी एक भी चलती नहीं दिखाई देती। जब भीष्म, द्रोण, कर्ण, सब-के-सब मौजूद थे, तभी जब हमलोगोंका किया कुछ न बन पड़ा, तब इन लोगोंको गवाँकर हम क्या कर सकते हैं? इसलिये मेरी तो राय यही है, कि आप पाण्डवोंसे मिलकर सन्धि कर लें। अपनेसे बलवान् शत्रुसे युद्ध करना राजनीतिके विरुद्ध है। यदि थोड़ासा दब जानेसेही अपनी और संसारकी भलाई होती हो, तो व्यर्थकी अकड़के पीछे अपना सर्वस्व नष्ट कर डालना ठीक नहीं। मुझे तो अब बिना सन्धि किये अपना कल्याण होता नहीं दीखता।"

यह सुन, दुर्योधनने कहा,—"आचार्य! अब सन्धि नहीं हो सकती। मैं जहाँतक अग्रसर हो चुका हूँ, वहाँसे लौटना एकदम असम्भव है। मेरे इतने हित-मित्रों और भाई-बन्धुओंने मेरे लिये सिर कटाये और मैं कमीनेकी तरह, उनकी जान ले चुकनेपर भी,

अपनी जानके लिये सन्धि कर लूँ—यह हो नहीं सकता। जिन पाण्डवोंको मैंने दास बनाया था, जिनके आगे मूँछें उमेठे, छाती अकड़ाये खड़ा होकर गर्व-भरी बातें कहा करता था, उन्हींसे, किस मुँहसे सन्धिकी प्रार्थना करूँगा? इस दीन प्रार्थनाके मुँहसे निकलनेके पहलेही, शस्त्रके आघातसे, समर-भूमिमें, मेरा, सदाके लिये सो जाना क्या अच्छा नहीं है? अन्तमें तो एक दिन मरनाही होगा, फिर आजही मानके साथ मरकर वीर-गति क्यों न प्राप्त कर लूँ? आप तो स्वयं वीर हैं, धर्मके जानकार हैं, फिर ऐसा घृणित उपदेश क्यों दे रहे हैं? मैं मरकर स्वर्गमें अपने वीर मित्रोंके साथ मिलना चाहता हूँ, जीवित रहकर, शत्रुओंके ताने-तिश्ने सुनकर, नरक-यन्त्रणा भोग करना नहीं चाहता। आपको ऐसा उपदेश न देना चाहिये।"

दुर्योधनकी दृढ़ता-भरी बातें सुन, कृपाचार्य चुप हो गये। कौरवोंने दुर्योधनकी शतमुखसे प्रशंसा की और कहने लगे,—"महाराज! यह दृढ़ता, यह अध्यवसाय और यह वीरता आपके योग्यही है। अतः, अब यह निश्चय करना चाहिये, कि हमारा सेनापति कौन हो?"

यह सुन, दुर्योधनने अश्वत्थामाकी ओर देखा। उनका मतलब समझ, अश्वत्थामाने कहा,—"महाराज! मद्र-राज शल्य, सब तरहसे, सेनापति होने योग्य हैं। उनका बल, वीर्य, विद्या, बुद्धिमत्ता, सब कुछ विलक्षण है। वे आपके बड़े हित-चिन्तक और कृतज्ञ भी हैं। अतएव वे खूब मन लगाकर अपने कर्त्तव्योंका पालन करेंगे। यदि, उनकी आपपर इतनी श्रद्धा न होती, तो वे क्यों अपने सगे भानजोंको छोड़कर आपका साथ देते? उन्हेंही सेना-पति बनाइये, तभी काम चलेगा।"

सबने अश्वत्थामाकी रायको पसन्द किया। अतएव शल्यही सर्व-सम्मतिसे अठारहवें दिनके सेना-पति बनाये गये।

शल्यका पराक्रम ।

सवेरा होतेही शल्यने "सर्वतोभद्र" नामक एक विकट व्यूहकी रचना की और अपने चुने हुए मद्रदेशीय वीरोंको लेकर वे उसके द्वार-पर डट गये। कौरवोंसे घिरे हुए दुर्योधन बीचमें, संसप्तकोंके साथ कृतवर्मा वाम-भागमें, यवन-सेनाके साथ कृपाचार्य दक्षिण-भागमें तथा काम्बोज वीरोंको अपनी रक्षाके लिये नियुक्तकर, अश्वत्थामा, उस व्यूहके पृष्ठ-भागमें आ विराजे। सबसे पहले सवारोंका एक दल, शकुनि और उलूकको अधीनतामें, लड़नेके लिये भेजा गया।

थोड़ी देरके युद्धमें, कर्णके पुत्र चित्रसेन, सत्यसेन और सुशेन, नकुलके हाथों, मारे गये। सहदेवने भी शल्यके पुत्रको मार डाला।

शल्यने बड़ा पराक्रम दिखलाया। उनकी मारके आगे पाण्डव-सेनाका पैर आगे बढ़ना कठिन हो गया। उन्होंने मारे बाणोंके युधिष्ठिरको हैरान कर दिया। भीम और शल्यका देरतक गदा-युद्ध होता रहा; पर कोई दबता नहीं दिखाई देता था। अन्तमें दोनों एक दूसरेकी मारसे अचेत होकर गिर पड़े। कृपाचार्यने शल्यको वहांसे ले जाना चाहा; पर इसी समय भीमकी मूर्च्छा टूट गयी और उन्होंने शल्यको लड़नेके लिये ललकारा। उनकी ललकार सुनतेही शल्यकी भी बेहोशी दूर हो गयी और वे फिर प्रचण्ड विक्रमके साथ युद्ध करने लगे। पाण्डवोंके लिये शल्यका बल-पौरुष सहना असम्भवसा प्रतीत होने लगा।

शल्य-वध ।

इस बार शल्यका यह शौर्य देख, युधिष्ठिर घबरा उठे। तब उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि "आज या तो मैंही मरूँगा या शल्यकोही

मार डालूँगा। अर्जुन और भीमने अपने-अपने हिस्सेके अनुसार वैरियोंको मार गिराया है। मैं मामा शल्यकोही अपना हिस्सा समझता हूँ। आज सारा संसार, मामा-भानजेका यह भयङ्कर युद्ध, अच्छी तरह देखले।"

यह कह, उन्होंने, भीमको आगे, अर्जुनको पीछे, धृष्टद्युम्न और सात्यकिको अगल-बगल तथा नकुल और सहदेवको चक्रकी रक्षाके लिये नियुक्तकर, शल्यकी ओर प्रस्थान किया। पास पहुँचतेही दोनों मोह-माया छोड़कर लड़ने लगे। बड़ी भयानक लड़ाई हुई। अन्तमें शल्यका सारथि और उनके रथके घोड़े मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख, अश्वत्थामा उन्हें अपने रथपर चढ़ाकर अन्यत्र ले भागे। पाण्डव-सेना आनन्दसे नृत्य करने लगी। उनके आनन्दके बाजे शल्यके कानोंमें वज्रकी तरह गूँज उठे। वे, दूसरे रथपर सवार हो, फिर वहाँ आ पहुँचे। आतेही पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकोंने उन्हें घेर लिया। इसी अवसरमें युधिष्ठिरने एक बड़ा तीखा बाण शल्यपर फेंका, जिसकी चोटसे वे प्राय: मूर्च्छितसे होकर रथपर गिर पड़े। यह देख, युधिष्ठिरको बड़ा आनन्द हुआ।

इसी अवसरमें कृपाचार्यने युधिष्ठिरके सारथिको मार गिराया। इधर भीमने शल्यके धनुषके दो टुकड़े कर डाले और उनके रथके घोड़ोंको भी मार डाला और इसी समय अन्यान्य वीर भी वहाँ आ पहुँचे और परस्पर एक दूसरेपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे।

शल्य घबरा उठे। एक हो तो वशमें किया जाये, यहाँ तो बहुतोंसे पाला पड़ गया। लाचार वे अपने अश्व-हीन रथसे नीचे उतर आये और ढाल-तलवार लेकर युधिष्ठिरकी ओर झपटे। भीमसेनने दूरसेही यह सब देखा। और अपने पैने बाणोंसे बात-की-बातमें उनकी ढाल-तलवार काट गिरायी ; परन्तु पासमें हथियार न

रहनेपर भी, मद्र-राज, युधिष्ठिरकी ओर बढ़तेही गये। यह देख, युधिष्ठिरने एक बड़ी भारी शक्ति शल्यको मारी, जिसके लगतेही वे तड़पकर लोट गये। जैसे कृष्णके हाथों उनके मामा कंसका निधन हुआ था, उसी तरह युधिष्ठिरके हाथों मामा शल्यकी भी मृत्यु हुई। इस प्रकार कौरव-सेनाका चौथा सेनापति भी सदाके लिये वसुन्धरा-की गोदमें सो गया! कौरव-सेना हाहाकार करती हुई भाग चली। शल्यको मरा हुआ देख, उनका छोटा भाई क्रोधसे पागल होकर युधिष्ठिरपर टूट पड़ा। देखते-ही-देखते युधिष्ठिरने उसका सिर भी काट गिराया। शल्यके सहस्रों सैनिक पाण्डव-वीरोंके हाथसे मारे गये। यह देख, कौरवोंका रहा-सहा उत्साह भी भङ्ग हो गया और वे मैदान छोड़कर भाग चले।

सर्व-संहार।

तब दुर्योधनने बड़े कष्टसे अपनी भागती हुई सेनाको रोका और जान हथेलीपर रखकर विकट युद्ध करना आरम्भ किया। इधर म्लेच्छोंके राजा शाल्वने बड़े भयङ्कर वेगसे धृष्टद्युम्नपर आक्र-मण किया। उसके हाथीने धृष्टद्युम्नको ऐसा धक्का दिया, कि वह उसका वेग न सम्हाल सका और रथसे कूदकर दूर जा खड़ा हुआ। उसका सारथि न कूद सका, अतएव वह मारा गया। रथसे कूद, एक भीषण गदा हाथमें ले, धृष्टद्युम्नने उस हाथीको मार डाला। शाल्वराज, हाथीके गिरतेही, आप भी गिर पड़ा और सहदेवके भालेने उसका काम तमाम कर डाला।

इसके बाद शकुनि, कृप, अश्वत्थामा और दुर्योधन—ये चारों वीर, पाण्डव-पक्षसे युद्ध करने लगे। समस्त पापोंकी खान, वंश-नाशी यद्धकी जड़, शकुनिको सबसे आगे देख, नकुलका क्रोध उबल पड़ा।

वे दाँत पीसते हुए बोले,—"क्यों रे नीच ! क्या और कोई वीर कौरव-पक्षमें न रहा, जो तूही सबका अगुआ बनकर लड़ने आया है ? यह युद्ध-भूमि है ; जुएका खेल नहीं, जो उमँगकर लड़ने आया है ! अच्छा, ठहर, मैं अभी तुझे पुत्र-सहित यमराजके घर भेजे देता हूँ।"

सूर्यास्त होनेमें कुछही देर बाक़ी थी। अतएव सहदेवने शकुनिके ऊपर भीम-वेगसे आक्रमण किया और बात-की-बातमें उसके सारथि तथा घोड़ोंको मार गिराया। नकुलने उसके पुत्रको मारकर भूमि-पर सुला दिया। यह देख, क्रोध और शोकसे अधीर हो, शकुनि बारम्बार नकुल-सहदेवपर आक्रमण करने लगा ; परन्तु सहदेवने उसके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको काट डाला। तब वह लाचार हो, दुम दबाकर भाग चला ; परन्तु भागकर जाता कहाँ ? सहदेवने उसका पीछा किया और उसको मारे बाणोंके छेद डाला। आखिर-कार सहदेवके काल-समान भयङ्कर भालेने, देखतेही-देखते शकुनिकी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

इधर दुर्योधनके निन्यानवे भाइयोंमेंसे जो बारह भाई बच रहे थे, वे सब भी आजकी लड़ाईमें, भीमके हाथोंसे मारे गये। अर्जुनने आज सुशर्माको भी स्वर्ग-धाम भेज दिया। अब कौरवोंकी ओर नाम लेने योग्य केवल दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृप और कृतवर्माही रह गये। कौरवोंकी समुद्र-समान ग्यारह अक्षौहिणी सेना केवल सत्रह दिनोंमें काम आ गयी।

दुर्योधन-पलायन।

अपनी सेनाका यह भयङ्कर संहार, अपने मित्रों और सहा-यकोंका यह शोक-जनक सत्यानाश दुर्योधनको आगकी तरह जलाने लगा। उसने अपना सर्वनाश उपस्थित देख, रण-भूमिसे भाग

जानाही अच्छा समझा। युद्ध-भूमिसे थोड़ी दूर, पूर्वकी ओर, दुर्योधनका बनवाया हुआ एक तालाब था। दुर्योधन उसी तालाबकी ओर भाग चला। अब रास्ते-भर वह अपनी करनीपर पछताता रहा और बार-बार अपनेको धिक्कारता जाता था, कि क्यों नहीं मैंने पहलेही विदुरका कहना मान लिया? पर अब क्या हो सकता था? जो तीर हाथसे निकल गया, वह लौटकर कैसे आ सकता है?

इसी समय सञ्जय, लड़ाईके मैदानसे घर लौटे जा रहे थे। उन्होंने रास्तेमें दुर्योधनको भागते हुए देखा। उस समय दुर्योधन चिन्ताकी मूर्त्ति बना हुआ था। उसके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। पहले तो उसने सञ्जयको न पहचाना; पर जब सञ्जयने उसे पुकारकर उसके बाक़ी भाइयोंके मारे जानेका समाचार सुनाया, तब उसने शोकसे अधीर होकर कहा,—"सञ्जय! पिताजीसे जाकर कहना, कि दुर्योधन बेतरह घायल होकर तालाबमें जा छिपा है। अब मेरा अन्तकाल आयाही समझो। मैं अपने प्यारे भाइयों और शुभचिन्तक मित्रोंको खोकर कैसे जीवित रह सकता हूँ?"

यह कह,दुर्योधन तो तालाबकी ओर गया और सञ्जय धृतराष्ट्रके पास चले आये। कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्माने दूरसेही दुर्योधनको भागते देख लिया था। वे उसके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचे और बोले,—"महाराज! आप ऐसे कातर न हों। हमलोग आपको अग्रसरकर पाण्डवोंको अवश्यही हरायेंगे। हमारे रहते वे किसी तरह भी जीत नहीं सकते।"

यह सुन दुर्योधनने कहा,—"यह मेरा परम सौभाग्य है, जो आप लोग अभीतक जीवित हैं; परन्तु मैं तो बेतरह घायल होगया हूँ, मैं इस समय किसी प्रकार युद्ध न कर सकूँगा। यदि आज रातभर आपलोग मुझे विश्राम कर लेने दें, तो कल अवश्य

युद्ध करूँगा।" यह सुन, वे लोग लौट गये और दुर्योधन उस तालावमें जा छिपा।

जिस समय कृप-कृतवर्मा आदिसे दुर्योधनकी बातें हो रही थीं, उसी समय वहाँ कुछ व्याध घूमते-फिरते चले आये थे। उन लोगोंने छिपकर इन लोगोंकी सारी बातें सुन ली थीं। उन्होंने यह जानकर, कि दुर्योधन यहाँ छिपा हुआ है, भीमके पास जाकर उसके वहाँ छिपनेका सारा हाल कह सुनाया।

अनाथा कौरव-कामिनियाँ।

इधर युद्धका रोमाञ्चकारी परिणाम सुन, कौरव-शिविरमें भयानक रोना-पीटना मच गया। बालक, वृद्ध, युवा और स्त्रियाँ—सभी पुक्का फाड़कर रोने लगे। ऐसा मालूम होने लगा, मानो क्रन्दन-ध्वनिसे आकाश फटा चाहता है। कौरव-कामिनियोंका वह विलख-विलखकर रोना देख, वज्रका हृदय भी पिघल जाता था। अन्तमें सब स्त्रियोंने वहाँसे हस्तिनापुर चले जानेका विचार किया और वे पैदलही जानेको तैयार हो गयीं। यह देख, युयुत्सुने धर्मराज युधिष्ठिरके पास जाकर कहा,—"महाराज! कौरव-स्त्रियाँ बहुत शोकातुर हो रही हैं। अब ये इस स्थानमें रहना नहीं चाहतीं और हस्तिनापुर जानेको तैयार हैं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उन्हें अकेली न जाने देकर साथ जाऊँ और उन्हें वहाँ पहुँचाकर चला आऊँ।" युधिष्ठिरने सहर्ष उसे वैसा करनेकी आज्ञा दे दी। युयुत्सु उन्हें पहुँचानेके लिये चला। रास्तेमें, नगर-द्वारपरही, विदुरने उसे देखकर युद्धका हाल पूछा। उसने भयङ्कर सर्वनाशका समाचार सुना, विदुरके कोमल हृदयको अत्यन्त दुःखित कर दिया। अनन्तर विदुर अपने बड़े भाई, अन्धराज धृतराष्ट्रके पास आ, ध्वंसकारी युद्धकी कथा सुनाने लगे।

भीम-दुर्योधन-युद्ध ।

उधर दुर्योधनका कहीं पता न पानेसे, पाण्डव बड़े हैरान थे। चारों ओर दूत भेजे गये थे; पर वे सब निराश हो-होकर लौट आये। इसी समय, ऊपर बताये हुए, व्याधोंके मुँहसे अनुकूल समाचार पाकर, पाण्डवोंके मुख-कमल प्रसन्नतासे खिल गये। उन्होंने बहुतही आनन्दित हो, व्याधोंको मुँह-माँगा पुरस्कार देकर विदा किया और उसी क्षण उस तालाबके पास चले आये।

तालाबमें जल-स्तम्भ देख, उन लोगोंने विचार किया, कि इसके भीतरसे क्योंकर दुर्योधनको बाहर निकालना चाहिये। तब कृष्णकी सलाहसे युधिष्ठिर बड़े तीखे और ताने-भरे वचन कहने लगे; क्योंकि श्रीकृष्णको मालूम था, कि दुर्योधन बड़ा अभिमानी है; वह किसीका ताना नहीं सह सकता।

युधिष्ठिरने कहा,—"क्यों दुर्योधन! अपने सब सगे-सम्बन्धियोंका सफ़ाया कर अब तुम, अपनी जानके डरसे कायरोंकी तरह तालाबमें आ छिपे हो? इस कामसे तो तुम्हारी वीरतामें बड़ा बट्टा लगता है। यदि तुममें वीरताका लेशमात्र भी हो, तो जलके बाहर आकर लड़ो। या तो खुद मरो या हमें मारो।"

यह सुन, दुर्योधनने पानीके अन्दरसेही जवाब दिया,—"भाई साहब! अपनी जान भला किसे नहीं प्यारी होती? यदि मैं भी प्राण बचानेके लिये यहाँ आ छिपा, तो क्या बुरा किया? परन्तु आप निश्चय जान रखें, कि मैं जान लेकर नहीं भागा हूँ। मेरा रथ टूट चुका था, हथियार पास नहीं थे। इसके सिवा मैं थक भी बहुत गया था; इसीलिये मैंने यहाँ आकर थोड़ी देर विश्राम करनेका विचार किया है। ज़रा ठहर जाइये—आप लोग भी लड़ाई करते-करते बहुत

थक गये होंगे—थोड़ा आराम कर लीजिये। इसके वाद हमलोगों-का युद्ध अवश्य होगा।"

युधिष्ठिरने कहा,—"हमलोग काफ़ी आराम कर चुके हैं। तुम्हें न पानेसेही वहुत हैरान हो रहे थे। तुम्हें पाकर अव हमारी सारी हैरानी दूर हो गयी है। वस, अव जल्दी वाहर निकलो ; हमलोग अधिक देरतक नहीं ठहर सकते।"

दुर्योधन,—"मेरे सभी भाई-वन्धु, इष्ट-मित्र और सहायक इस सत्यानाशी युद्धमें काम आ चुके। भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि नामी-नामी वीर, सदाके लिये संसारसे चल वसे! अव इस वन्धु-हीन, मित्र-हीन और वीर-हीन राज्यको लेकर मैं क्या करूँगा? जाओ, तुमलोग आनन्दसे राज-लक्ष्मीका उपभोग करो। मैं तो अव जाकर वन-वासी हो जाऊँगा। यद्यपि मैं अव भी लड़कर तुम लोगोंको पराजित कर सकता हूँ; परन्तु वन्धु-वान्धवोंको खोकर मेरा उत्साह जाता रहा और मुझे संसारसे वैराग्य पैदा हो गया है।"

युधिष्ठिर,—"क्यों न हो! वड़े वैरागी वनने चले हैं। क्योंजी! जव तुमने हमारा सन्धिका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया था, तव तुम्हारा यह वैराग्य कहाँ चला गया था? अव क्या हम तुम्हारी भीख लेंगे? वस, अव जल्द वाहर निकलो, तुम्हारी खोपड़ी चूर-चूरकर हम वल-पूर्वक तुमसे अपना राज्य लेंगे।"

यह कठोर तिरस्कार सुन, दुर्योधन जलके वाहर निकल आया और गम्भीर स्वरसे बोला,—"देखो, तुम लोग वहुतसे हो और मैं अकेला हूँ। तुम्हारे पास हथियार हैं और मैं विल्कुल निहत्था हूँ। इस तरह एकके साथ वहुतोंका युद्ध करना अन्यायकी वात है। इसलिये यदि एक-एक करके तुमलोग मुझसे निपट जाओ, तो मैं तुम लोगोंको अभी लड़ाईका मज़ा चखा दूँगा।"

यह सुन, युधिष्ठिरने कहा,—"तुम कवच पहन लो और जो हथियार चाहो, ले लो। इसके बाद जिसके साथ तुम्हारी इच्छा हो लड़ो। यदि इन पाँचोंमेंसे तुम, किसीको भी मार सको, तो अब भी सारा राज्य तुम्हारा ; हम अपना दावा बिल्कुल छोड़ देंगे। देखो, हम तुम्हारे साथ कितनी दयाका बर्ताव कर रहे हैं और एक तुम हो, जो तुमने नन्हेंसे बालक अभिमन्युको निहत्था और अकेला देखकर भी,धर्मका कुछ विचार न किया और अनेक महारथियोंकी सहायता-से उसे मार गिराया! खैर, जाने दो—वे बातें अब बीत गयीं। हम तो अपनी प्रतिज्ञापर अटल हैं। जबतक एकके साथ तुम्हारा युद्ध होता रहेगा, तबतक हममेंसे दूसरा कदापि कुछ न बोलेगा। बस, अब आ जाओ, व्यर्थकी देर न करो।"

युधिष्ठिरकी बातें सुन दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसकी सुप्त हिंसा मानो फिर जाग पड़ी। उसने लोहेका कवच धारण कर, बाल बाँधे और गदा हाथमें लेकर कहा,—"युधिष्ठिर! अब चाहे जो कोई आ जाये, मेरे हाथमें गदा रहते कोई मुझे हरा नहीं सकता। जिसे अपनी माताके दूध पीनेका अधिक गर्व हो, वह मेरे सामने आकर अपने बलकी परीक्षा कर ले।"

यह देख, कृष्णने चिन्तित होकर युधिष्ठिरसे कहा,—"महाराज! अब मैं समझ गया, कि पाण्डवोंके भाग्यमें राज्य का सुख भोगना बदाही नहीं है। वे वन-वासीही होनेके लिये पैदा हुए हैं। आपने किस साहसपर केवल एकके मरनेपर सारा राज्य हार जाना स्वीकार कर लिया? दुर्योधनकीही इच्छापर प्रतिद्वन्द्वीका निश्चय छोड़कर आपने बड़ा बुरा काम किया था। यदि वह आपको, अर्जुनको या नकुल-सहदेवकोही चुन लेता, तो क्या परिणाम होता? दुर्योधन गदा-युद्धमें अपना जोड़ा नहीं रखता। भीमसेन

बड़े भारी गदाधारी हैं सही ; परन्तु दुर्योधन इस विद्यामें उनसे अधिक निपुण है।"

कृष्णको इस प्रकार चिन्तित और युधिष्ठिरका तिरस्कार करते देख, भीमने कहा,—"केशव! आप क्यों घबराते हैं? मैं आज दुर्योधनको पछाड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी किये देता हूँ। ज़रा आप तमाशा तो देखिये।"

कृष्णने प्रसन्न होकर कहा,—"वीरवर! मुझे तुम्हारे बाहु-बलका सदासे भरोसा रहा है। आज तुम्हारेही करते युधिष्ठिर शत्रु-हीन होंगे ; पर ज़रा सोच-समझकर युद्ध करना।"

इसी समय वहाँ यादवोंके राजा, कृष्णके बड़े भाई, बलराम भी आ पहुँचे। उनको आते देख, सबने पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया। उन्हें इस भीषण युद्धका कुछ भी हाल मालूम नहीं था ; क्योंकि एक तो उन्होंने पहलेसेही किसीका पक्ष लेना अस्वीकार कर दिया था, दूसरे लड़ाई होनेके पहलेही वे तीर्थ-यात्रा करने चले गये थे। श्रीकृष्णने उनसे, युद्धकी सारी कथा संक्षेपमें कह सुनायी। बलरामनेही भीम और दुर्योधन, दोनोंको गदा-युद्ध सिखलाया था। अतएव, ऐसे अच्छे अवसरपर, जब, कि उनकी विद्याकी सर्वोत्तम परीक्षा होनेवाली थी, अपने गुरुको आया देख, दोनों बड़े प्रसन्न हुए। दोनोंनेही उनको भक्ति-भावसे प्रणाम किया और गदा लेकर युद्ध करनेको तैयार हो गये। यह देख बलरामने कहा,—"यह भूमि युद्धके लिये उपयुक्त नहीं है ; अतएव सबलोग कुरुक्षेत्रमेंही चलो ; वहीं मैं अपने दोनों शिष्योंकी विद्याकी परीक्षा कर लूँगा।"

दुर्योधन-वध।

उनके कहे अनुसार सब लोग कुरुक्षेत्रके मैदानमें चले आये।

भीम और दुर्योधन, दोनों एक दूसरेको क्रूर-दृष्टिसे देख रहे थे—उनकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँसी निकल रही थीं—अङ्ग-अङ्ग फड़क रहे थे। इतनेमें दुर्योधनने बड़े दर्पके साथ भीमको लड़नेके लिये ललकारा। दुर्योधनकी ललकार सुन,भीमने कहा,—"दुर्योधन आज तेरा अन्तिम दिन है। आज तुझे मेरा सामना करना होगा। इसलिये अपने जन्मभरके पापोंको याद कर ले। एक बार उस पाप-भरे घड़ेको अच्छी तरह देख ले; क्योंकि, आज तुझे उन पापोंका उचित दण्ड मिलनेवाला है।"

यह सुन, दुर्योधनका क्रोध दूना हो आया। उसने गरजकर कहा,—"रे नीच, बकवादी! इन व्यर्थकी बातोंमें क्या धरा है? आजा बीच मैदानमें, और अपने बल-पौरुषको दिखला।"

बस, दोनोंका गदा-युद्ध होने लगा। दोनों एकसे एक बढ़कर, गदा-युद्धमें निपुण थे; किन्तु दुर्योधन इस विद्याका पूरा जानकार और फुर्तीमें भीमसे कहीं बढ़ा चढ़ा था। उसने ऐसे-ऐसे दाँव-पेंच लगाये, कि भीमको उनकी काटका उपाय नहीं सूझ पड़ता था; परन्तु वे बड़े बलवान थे; अतएव दुर्योधनके सारे वार बचाते चले गये। भीमकी गदा दुर्योधनपर कोई काम नहीं करती, यह देख पाण्डवोंके मनमें बड़ा आतङ्क छा गया।

दुर्योधनने भीमको अपने ऊपर आक्रमण करते देख, गदाका एक हाथ उनकी छातीपर ऐसा मारा, कि भीम न होकर, यदि वहाँ और कोई होता, तो तलमलाकर गिर पड़ता; परन्तु भीम उस चोटको सह गये। चोट खानेपर जैसे साँप क्रोधित हो अपना फन फैला लेता है, वैसेही भीमका भी क्रोध भड़क उठा और उन्होंने तत्काल एक गदा दुर्योधनके सिरपर ऐसी मारी, कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा। पाण्डव आनन्द-ध्वनि करने लगे। उस ध्वनिके कानमें

पड़तेही दुर्योधनकी मूर्च्छा टूट गयी और उत्तेजित होकर उठ बैठा। इस बार दुर्योधनने ऐसा जौहर दिखलाया, कि भीमके छक्के छूट गये।

इस तरह दुर्योधनको प्रचण्ड विक्रम दिखलाते हुए देख, श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा,—"धनञ्जय! दुर्योधन पूरा शठ है। उसके साथ शठता करनेमें कोई पाप नहीं। धर्म-युद्धकर दुर्योधनको हराना असम्भव है। इसलिये भीम यदि उसकी जंघामें गदा मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें, तो अवश्य काम बन जायेगा।"

यह सुन, अर्जुनने अपनी जंघामें थप्पड़ मारकर भीमको इशारा किया। यह देखतेही भीमको अपनी प्रतिज्ञा याद हो आयी। उन्होंने दुर्योधनको धोखेमें लाकर उसकी जङ्घामें बड़े ज़ोरसे एक गदा मारी, जिससे वह अत्यन्त व्याकुल होकर भूमिपर गिर पड़ा। उसे गिरते देख, उसके सिरपर लात मारते हुए भीमने कहा,—"रे नीच! ले, अब द्रौपदीके अपमान करनेका फल भोग।"

भीमको इस प्रकारका दुष्ट व्यवहार करते देख, सब लोग उनकी निन्दा करने लगे। युधिष्ठिरने भीमको बड़ा लथेड़ा और दुर्योधनसे कहा,—"भाई! न तुम यह व्यर्थका विरोध बढ़ाते और न ये दिन देखनेमें आते। तुम तो सबको रुलाकर चले; पर हमें न जाने कब-तक अपने भाई-बन्धुओंके बिछोहका दुःख भोगना पड़ेगा। यह सारा सर्वनाश तुमनेही उपस्थित किया है! अस्तु, परमात्मा तुम्हें शान्ति दे और अधिक क्या कहूँ?"

भीमके अन्याय-युद्धको देख, बलरामको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। वे अपना हल सम्हाल, उन्हें मारनेके लिये दौड़े, पर श्रीकृष्णने बड़ी कठिनाईसे उन्हें समझा-बुझाकर शान्त कर लिया। इसके बाद वे यह कहते हुए वहाँसे चले गये, कि "चाहे कुछ भी हो, भीमने गदा-युद्धके नियमोंका उलङ्घन किया है—नाभिसे नीचे गदा नहीं मारनी थी।"

दुर्योधनका पतन।

"रे नीच! ले, अब द्रौपदीके अपमान करनेका फल भोग।"

[पृष्ठ—२७८]

Burman Press, Calcutta.

पाण्डव-पक्षके लोग, दुर्योधनके गिर जानेसे बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दके साथ अपने शिविरकी ओर चले। इसी समय कृष्णकी ओर बड़े क्रोध और घृणासे देखता हुआ दुर्योधन, उठनेमें असमर्थ होनेपर भी, उठ बैठा और बोला,—"रे कंसके दासके छोकरे! तेरेही कहनेसे भीमने वीरोचित नियमके विरुद्ध मेरी जंघा तोड़ी है। नीच! तूनेही हमारे सारे वीरोंका, छल-कपटसे, नाश करवाया है—नहीं तो भीष्म द्रोण,और कर्ण जैसे उद्भट वीरोंको कौन मार सकता था? एक नहीं, सौ-सौ बार तूने वीरता और धर्मके नियमोंका उल्लङ्घन करवाया है। कहनेको तो तू सारथि बना था, पर सारे अनर्थ तेरेही पैदा किये हुए हैं। तेरे जैसा नीच, निष्ठुर और निर्लज्ज संसारमें दूसरा नहीं है।"

श्रीकृष्णने कहा,—"दुर्योधन! व्यर्थ अपनी आत्माको मरते समय-कलुषित क्यों करते हो? तनिक विचार करो,तुमने कैसे-कैसे अन्याय और अत्याचार किये हैं? इसके सिवा उन पापोंका और क्या फल हो सकता था? अब अपने कियेपर पश्चात्ताप करो और हिंसा-द्वेषको हृदयसे एकदम निकाल दो। यह तुम्हारी अन्तिम घड़ी है, इसलिये रामका नाम लेकर प्राण-त्याग करो।"

दुर्योधनने कहा,—"इसमें कोई सन्देह नहीं, कि मैं मरता हूँ; पर एक सच्चे वीरकी तरह, अभिमानी क्षत्रियकी भाँति मरता हूँ। मेरे बन्धु-बान्धवोंने भी वीरोंकी भाँति प्राण-विसर्ज्जन किये हैं—वे निश्चयही वीर-गतिको प्राप्त हुए हैं। मैं भी उनके पास जाता हूँ। क्षत्रिय-पुत्रके लिये इससे बढ़कर सुखका मरण और नहीं हो सकता। अब तुम लोग जाओ; जाकर हमारी लाशोंके ढेरोंपर राज्य करो; वीर-शून्या वसुन्धराका भोग करो; शोक, दुःख, क्रन्दन और हाहाकारसे पूर्ण प्रदेशोंका शासन करो।"

यह सुन, पाण्डवोंने सिर नीचा कर लिया। युधिष्ठिर मन-ही-मन बहुतही लज्जित और दुःखित हुए। सायङ्काल हो चुका था ; अतएव, श्रीकृष्ण सबको लिये-दिये एक नदीके किनारे चले गये और उनके परामर्शानुसार रात-भर सबने वहीं विश्राम किया।

अश्वत्थामाका सेनापतित्व।

इधर दुर्योधनके पतनका दुःखदायक संवाद सुन, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य उसके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, कि वायुके प्रचण्ड वेगसे गिरे हुए वृक्षकी भाँति, कुरुराज दुर्योधन भूमिपर पड़ा है! क्रोधसे भौंएँ तन रही हैं ; सारी देहमें मिट्टी लग रही है! उसकी यह दुर्दशा देख, उनकी छाती फटने लगी। वे दुर्योधनके पास बैठकर रोने लगे।

वे बोले,—"हा! कालकी कैसी कुटिल गति है। माया और मोहसे अन्धा, सामान्य पुरुष, इस संसारमें आकर अपनेको अजर और अमरही समझा करता है और इसीसे उसे यह अभिमान होता है, कि मैंही संसारका स्वामी हूँ। संसारकी सारी धन-सम्पत्तियाँ, मुझे सदा-सर्वदा सुख प्रदान करती रहेंगी। पर नहीं, आज मालूम हो गया, कि मनुष्य कुछ भी नहीं है। काल देवके आगे उसकी सभी शक्तियाँ निकम्मी हो जाती हैं। जिन्हें वह अपना समझता है, वे चीज़ें, वास्तवमें उसकी नहीं हैं। हाय! जिनके परशुराम-विजयी भीष्म जैसे बाबा थे, आचार्य द्रोण जैसे गुरु थे, तीनों लोकोंको भी जीतनेकी सामर्थ्य रखनेवाले कर्ण जैसे सखा थे और जिनके एक नहीं, सौ-सौ आज्ञा-पालक भाई थे, जो आसमुद्र-हिमालयतककी वसुन्धराके चक्रवर्त्ती सम्राट् थे, वेही आज, अनाथोंकी भाँति असहाय अवस्थामें, ज़मीनपर पड़े लोट रहे हैं। न

इस समय उनके सेवक,उनपर चमर डुलाते हैं,न आगे-आगे चलकर बन्दिजन उनकी कीर्त्ति गाते हैं और न कोई वीर उनके शरीरकी रक्षा करता है। इसलिये आज यह बात स्पष्ट रूपमें माननी पड़ती है, कि कारणोंसे उत्पन्न हुए कर्य्यों का परिणाम जानना बड़ा कठिन है। जगत् झूठा है। नाते-रिश्ते निकम्मे हैं और विजय एकमात्र धर्मकीही है।"

उन्हें इस तरह विलाप करते देख,दुर्योधनने कहा,—"तुम लोग व्यर्थ क्यों विलाप कर रहे हो? एक-न-एक दिन मनुष्यके जीवनका अन्त अवश्य होता है ; परन्तु रोग-शय्यापर गल-सड़कर मरनेकी अपेक्षा वीरकी तरह मरना कैसा सुख-दायक है, सो क्या तुम नहीं जानते ? फिर क्यों शोक करते हो ? मुझसा बड़भागी कौन होगा ? मैं आज वीरकी भाँति मरकर स्वर्ग जा रहा हूँ। मेरे भाग्यमें जीत न थी ; इसीलिये सब तरहके साधन रहते हुए भी, मैंने विजय नहीं पायी ; परन्तु वीर-गति प्राप्त करनेमें मुझे जो आनन्द हो रहा है, वह अकथनीय है। क्षत्रियके लिये मरना-मारना दोनोंही सुखकर हैं ; अतएव तुमलोग यह व्यर्थका दुःख दूर कर दो।"

इतनी बातें कहते-कहते दुर्योधन कातर हो उठा ; उसके घावोंकी पीड़ा असह्य हो उठी। यह दशा देख, क्रोधसे अधीर हो, अश्वत्थामाने कहा,—"महाराज ! पाण्डवोंकी नीचताका कहाँतक वर्णन किया जाये ? उन्होंने अपने दादाको छल करके मारा ; गुरुके साथ भी छल करनेसे बाज़ न आये ; अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ भी उन्होंने धर्म-युद्ध नहीं किया; आज तुम भी उनकी नीचताके शिकार हुए हो। नहीं तो एक क्या, सौ भीम आते, तो भी तुम्हारी गदाकी मारसे मारे जाते। अच्छा, अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि चाहे जैसे हो, आज मैं उन दुष्टोंसे उनकी सारी दुष्टताका बदला चुका लूँगा।"

यह सुन, मरते हुए दुर्योधनके प्राणोंमें मानो नया जीवन आ-गया। उसने शास्त्रकी रीतिसे अश्वत्थामाको अपनी शेष सेनाका सेनापति बनाया। अश्वत्थामाने दुर्योधनको हृदयसे लगा, वीर मदसे मत्त हो अपने साथियोंके साथ, वहाँसे प्रस्थान किया। दुर्यो-धनने बड़े कष्टसे वहीं पड़े-पड़े रात बितायी।

शत्रु-नाशका संकेत।

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, दुर्योधनके पाससे चलकर, पाण्डवोंके सर्वनाशका उपाय सोचने लगे ; किन्तु लाख सिर मारनेपर भी उन्हें कोई उपाय न सूझा। इसी प्रकार सोचते-विचारते वे लोग एक घने जङ्गलमें चले गये और रात हुई देख, एक बड़के पेड़के नीचे सो रहे। कृप और कृतवर्म्मा तो शीघ्रही सो गये ; पर चिन्ताके मारे अश्वत्थामाको नींद न आयी। वह केवल पाण्डवोंसे बदला लेनेकी तदबीरें सोचता हुआ जगा रहा।

उस बड़के पेड़पर कौए रहते थे। रात्रि गम्भीर होतेही एक बड़ासा उल्लू उस पेड़पर आया और धीरे-धीरे एक डालसे दूसरी डालपर जाने तथा एक-एक करके सोये हुए कौओंका संहार करने लगा। उसने किसीके पङ्ख नोचे,किसीका सिर काटा, किसीके पैरही तोड़ डाले। इसी तरह देखते-देखते उसने सारे कौओंको मार डाला।

इस लीलाको देख, अश्वत्थामा सोचने लगा,—"बस, यही उपाय ठीक है। मुझे भी इसी युक्तिसे पाण्डवोंका नाश करना चाहिये ; नहीं तो मेरी प्रतिज्ञाकी पूर्त्ति होनी असम्भव है। सम्मुख-समरमें जिन पाण्डवोंने भीष्म और मेरे पिता जैसे महारथियोंको टिकने न

दिया, उनके आगे मेरी क्या बिसात है ? इसलिये यदि मैं रातको सोतेमेंही उन्हें मार डालूँ, तो ठीक है। जब उन्होंनेही नीचता और शठता करनेमें कोई कसर न छोड़ी, तब मैंही क्यों छोड़ दूँ ?"

ऐसा सोचकर अश्वत्थामाने पासही सोये हुए कृप और कृत-वर्माको जगाया और उनसे अपना अभिप्राय कह सुनाया। सुनते-ही दोनों उसे धिकारते हुए कहने लगे,—"चलो, हमलोग धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुरजीसेही पूछें, कि अब हमें क्या करना चाहिये ? दुर्योधनने अन्याय और अधर्म्म करके सबका नाश कराया, अबके हमारी बारी है। उसीके पक्षमें होनेके कारण, आज तुम भी सोते हुए वीरोंका नाश करना चाहते हो ! क्या यही वीरता है ? क्या इसीका नाम मनुष्यत्व है ? यदि तुम्हें ऐसाही करना है, तो फिर हमसे क्यों पूछते हो ? हम कभी ऐसे अन्यायका समर्थन कर सकते हैं ?"

इसपर अश्वत्थमाने अकड़कर कहा,—"चाहे जो कुछ हो, अपने पितृघातियोंसे बिना बदला लिये मैं न मानूँगा।"

अश्वत्थामाको अपनी बातपर अड़े देख, कृपाचार्य्यने कहा,— "अच्छा, लेना बदला। बदला लेनेको कौन मना करता है ? परन्तु रातभर तो विश्राम कर लो।"

परन्तु अश्वत्थामाने एक न सुनी और शीघ्रतासे पाण्डवोंके शिविरकी ओर जाने लगा। यह देख, कृपाचार्यने कहा,—"बेटा ! क्यों अपने उज्ज्वल कुलमें कलङ्क लगाते हो ? सोये हुए शत्रुको मारना, घोर अधर्म—बड़ी भारी नीचता है। आचार्य द्रोणके पुत्र होकर तुम ऐसी नीचताका काम न करो।"

अब अश्वत्थामासे न रहा गया। वह झुँझलाकर बोला,— "जो अधर्मी हो, उसके साथ धर्मका व्यवहार करनाही अधर्म है। पाण्डवोंने बीसियों—नहीं, नहीं, सैकड़ों बार छल, कपट और

अधर्म किये हैं। उनके साथ तुम कैसे न्यायका वर्ताव करनेको कहते हो? इस पापके फलसे मैं अगले जन्ममें चाहे कीड़ा-मकोड़ाही क्यों न होऊँ ; पर पाण्डवोंसे पितृ-हत्याका बदला लिये बिना मैं किसी तरह नहीं मान सकता।"

यह कह, वह दौड़ पड़ा और पाण्डवोंके पड़ावमें जा पहुँचा। लाचार कृप और कृतवर्मा भी उसके साथ हो लिये।

अश्वत्थामाकी नीचता।

उस समय पाण्डव और पाञ्चाल सुखकी नींद सो रहे थे। पहरे-दारोंको भी गहरी नींदने आ घेरा था। यह देख, अश्वत्थामा भीतर घुसने लगा। दरवाज़ेपर कृप और कृतवर्माको ठहराकर कहता गया,—"इस द्वारसे होकर कोई जीता न जाने पाये। आप दोनों जिसे पायें, उसे अवश्य काट गिरायें।"

पहले-पहल पाञ्चाल-शिविरमें, धृष्टद्युम्नके शयन-कक्षमें, जाकर उसने धृष्टद्युम्नको लात मारकर जगाया। उसके उठतेही अश्वत्थामा-ने उसकी चोटी पकड़ ली और उसे ज़मीनपर दे मारा। अचानक सोकर उठनेके कारण, धृष्टद्युम्न शिथिल हो रहा था, अतएव वह अपनी रक्षा न कर सका। अश्वत्थामाने, पशुकी तरह, मारे लातोंके धृष्टद्युम्नको अधमरा कर दिया। यह देख, धृष्टद्युम्नने कहा,—"अश्व-त्थामा! इस प्रकार पशुकी भाँति मेरा वध न करो; शस्त्रसे मारो, जिसमें मरनेपर मुझे वीर-लोक प्राप्त हो।"

इसपर क्रोधित हो अश्वत्थामाने कहा,—"आचार्यकी अन्याय-पूर्वक हत्या करनेवालेको वीर-लोक नहीं मिला करता।" यह कह, उसने मारे लातोंके उस बेचारेके प्राण ले लिये। धृष्टद्युम्नने पीड़ासे भयानक आर्त्तनाद करते हुए शरीर छोड़ दिया। उस क्रन्दन-

ध्वनिको सुन, स्त्रियाँ और पहरेदार जाग पड़े ; परन्तु सबने अश्व-त्थामाको प्रेत समझा और वे डरके मारे मौन हो रहे। पीछे और-और पाञ्चाल-वीर भी खड़बड़ सुन जाग गये और अश्वत्थामापर टूट पड़े; पर अश्वत्थामाने बात-की-बातमें सबको ठिकाने लगा दिया। भागते हुए लोगोंका कृप और कृतवर्माने भी सफ़ाया कर डाला।

वहाँसे निपटकर अश्वत्थामा पाण्डवोंके शिविरमें आया और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको, पञ्च-पाण्डव समझकर, उसने बड़ी निर्दयताके साथ सोतेमें मार डाला।

अबके कृतवर्माने सोचा, कि अश्वत्थामाकी और कुछ सहायता करनी चाहिये। यह सोच, उसने पाण्डवोंके ख़ीमोंमें आग लगा दी। लोग बेतहाशा भागने लगे। रात्रि होनेके कारण आपसमें-ही मार-काट मच गयी। बड़ा भारी नर-संहार हुआ।

इस तरह भयानक राक्षसी लीलासे क्रूरता-पूर्वक अगणित मनुष्योंका वध कर, वे लोग बड़ी-बड़ी प्रसन्नताके साथ दुर्योधनको यह समाचार सुनानेके लिये चल पड़े।

दुर्योधनकी मृत्यु।

दुर्योधन, वहीं युद्ध-क्षेत्रमें पड़ा हुआ, मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहा था। मुँहसे खून गिर रहा था, संज्ञा लुप्त हो चुकी थी, अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो गये थे। धीरे-धीरे श्वास आता-जाता था। यह दशा देख, उन तीनोंकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। वे बड़े करुण-स्वरसे विलाप करने लगे ; पर दुर्योधन अचेत था, उनका रोना-बिलखना उसने कुछ भी न सुना। तब उसके कानके पास मुँह लेजाकर अश्व-त्थामाने कहना आरम्भ किया,—"महाराज! यदि आप जीते हों, तो यह शुभ-संवाद सुनिये। हम तीनोंने आज सारे पाण्डव-दलका

नाश कर दिया। पाँचों पाण्डव, कृष्ण और सात्यकि—इन सात आदमियोंके सिवा उनके पक्षका और कोई वीर जीता न रहा।"

मरता हुआ वीर, इस समाचारको सुन, मानो यमराजका हाथ छुड़ाकर, थोड़ी देरके लिये भाग आया। दुर्योधनकी संज्ञा लौट आयी, उसने आँखें खोल दीं और धीरे-धीरे कहा,—"मित्रो! तुम लोगोंने आज वह काम कर दिखाया, जो भीष्म, कर्ण और द्रोणाचार्यसे भी न हुआ था। महानीच पाञ्चालों और पाण्डव-सैनिकोंका संहार-संवाद सुनकर मैं आज सुखसे मरूँगा।"

यह कह, उस कण्ठ-गत-प्राण वीर-केसरीने, पड़े-ही-पड़े, बारी-बारीसे उन लोगोंको गले लगाया और देखते-ही-देखते उसके प्राण, इस नश्वर शरीरको छोड़कर चल बसे। उस हृदय-विदारक दृश्यको देख, उस राजराजेश्वरकी यह दुर्दशा निहार, उन तीनोंको इतना दुःख हुआ, कि जिसका ठिकाना नहीं। उन लोगोंने बड़े कष्टसे उसका आलिङ्गनकर, अन्तिम बार उसकी गौरव-भरी मूर्त्तिका दर्शनकर, नगरकी ओर प्रस्थान किया।

प्रातःकाल होतेही दुर्योधनके मरनेका संवाद सुन, धृतराष्ट्र, गान्धारी और अन्यान्य कौरव-कामिनियाँ, हाहाकारकर विलाप करने लगीं।

द्रौपदीकी प्रतिज्ञा।

इधर सवेरा होतेही धृष्टद्युम्नके सारथिने युधिष्ठिर आदिसे रात्रिके भीषण हत्याकाण्डका सारा हाल कह सुनाया; जिसे सुन, सब-के-सब भयानक शोक और चिन्तासे व्याकुल हो गये। वे घबराये हुए तत्काल अपने शिविरमें आ, वहाँकी दुर्दशा देख, मारे दुःखके अधीर होगये और ढाढ़ें मार-मारकर रोने लगे। धर्मराजकी आज्ञासे नकुल द्रौपदीको वहाँ बुला लाये। भाई और बेटोंको मरा देख, द्रौपदी

छाती पीट-पीटकर रोने लगी। उसने प्रतिज्ञा की, कि "जबतक मैं अश्वत्थामाको मरा न देखूँगी, तबतक अन्न-जल न ग्रहण करूँगी।" यह सुन, युधिष्ठिरने कहा,—"द्रौपदी! यह तुम्हारी कैसी विलक्षण प्रतिज्ञा है? अश्वत्थामाको हम कहाँ ढूँढ़ते फिरेंगे? वह तो हमारा सर्वनाश कर न जाने किधर भाग गया है!" पर द्रौपदीने एक न सुनी। उसने कहा,—"यदि आप अश्वत्थामाको मार, उसके मस्तकपरकी मणि लाकर मुझे दीजियेगा, तभी मैं प्राण धारण करूँगी, नहीं तो भूखों रहकर जान दे दूँगी। जबतक वह हत्यारा मारा नहीं जाता, तबतक मेरा यह पुत्र-शोक दूर नहीं हो सकता।"

इसके बाद उसने भीमसे कहा,—"आर्य! आपने मेरी बात कभी नहीं टाली है। जब-जब मेरे ऊपर अत्याचार हुए हैं, तब-तब आपने मेरे मनकी की है। इस बार भी आपही मेरा प्रण पूरा कीजिये।"

मणि-हरण।

द्रौपदीके कहनेसे भीमसेन झट तैयार हो गये और नकुलको सारथि बना, अश्वत्थामाकी खोजमें चल पड़े। इससे श्रीकृष्णको बड़ी चिन्ता हुई। वे जानते थे, कि अश्वत्थामाके पास 'ब्रह्मशिरा' नामका एक बड़ा भयङ्कर अस्त्र है, जिसकी काट भीमके पास कोई नहीं है। उसी अस्त्रके प्रभावसे वह मेरा चक्र छीन ले गया था। यदि उसने वह अस्त्र भीमपर छोड़ दिया, तो उनकी वहीं मृत्यु हो जायेगी। यह सोच, उन्होंने सब हाल युधिष्ठिर और अर्जुनसे कह सुनाया। श्रीकृष्णकी बात सुनतेही युधिष्ठिर और अर्जुन उनके साथ-ही-साथ भीमकी सहायताके लिये दौड़ पड़े।

रास्तेमेंही भीमसे भेंट होगयी। इन लोगोंने बहुतेरा रोका; पर वे नहीं रुके; आगेही बढ़ते चले गये। कुछ दूर आगे जाकर उन्होंने

देखा, कि अश्वत्थामा गङ्गा-तटपर, व्यासजीके पास, बैठा हुआ है। उसे देखतेही भीमने बड़े ज़ोरसे ललकारा।

भीमकी ललकार सुनकर, अश्वत्थामाने जो ऊपर दृष्टि की, तो देखा, कि भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण, सब-के-सब मौजूद हैं। अपनेको यहाँ भारी विपत्तिमें फँसा हुआ देख, उसने "आपा-ण्डवाय" कहकर यह ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र छोड़ दिया। तब श्रीकृष्ण-के कहे अनुसार अर्जुनने भी उसके अस्त्रके प्रतिकारके लिये महा-भयानक पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया। अश्वत्थामाका अस्त्र बीचमें-ही रुक गया। दोनों अस्त्रोंके टकरानेसे विलक्षण शब्द होने लगा, बिजली चमकने लगी और आसमानसे तारे टूट-टूटकर गिरने लगे। ऐसा मालूम होने लगा, मानों आजही संसारका नाश हो जायेगा।

सृष्टिके नाशकी आशङ्का देख, व्यास और नारद, दोनों अस्त्रोंके बीचमें आ खड़े हुए और बोले,—"रोको! रोको! शीघ्र इन अस्त्रों-को रोको। तुम लोगोंने ऐसे भयानक अस्त्रोंका व्यवहार किया है, जिनका प्रयोग मनुष्योंपर नहीं किया जाना चाहिये।"

यह सुन, अर्जुनने कहा,—"देव! मैंने तो केवल अश्वत्थामाका अस्त्र रोकनेके लिये अपना अस्त्र छोड़ा है। यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो हम सब-के-सब यहीं जलकर भस्म हो जाते। इसलिये आपलोग मुझसे कहनेके बदले उन्हींसे कहिये न।"

बहुत समझाने-बुझानेसे अर्जुनने तो अपना अस्त्र किसी तरह लौटा लिया; पर अश्वत्थामाने अपना अस्त्र नहीं लौटाया। यह देख, व्यास और नारदने उससे बहुत अनुरोध किया, पर वह उसे न लौटा सका; क्योंकि अश्वत्थामाकी तपस्या ऐसी न थी, कि उसे चलानेके बाद लौटा सकता। तब यह निश्चय हुआ, कि अश्वत्थामा-का अस्त्र तो अभिमन्युके गर्भस्थ बालकका नाश करे और अर्जुनने जो

अस्त्र लौटाकर अश्वत्थामाको प्राण-दान दिया है, उसके बदलेमें वह अपनी मस्तक-मणि पाण्डवोंको भेंट कर दे।

बड़ी कठिनतासे अश्वत्थामाने वह मणि पाण्डवोंको देदी और शेष-जीवन व्यासजीके आश्रममें रहकर, ब्राह्मणोंकेसे कर्म्म करते हुए, बितानेका निश्चय किया।

अश्वत्थामाके मस्तककी वह 'सहजमणि' ले, पाण्डव अपने शिविरमें चले आये। वहाँ द्रौपदी उनके मुँहसे अश्वत्थामाकी मृत्युका समाचार सुननेके लिये बड़ी बेचैनीके साथ उनके आनेकी राह देख रही थी। उसे इस प्रकार चिन्ताकी मूर्त्ति बनी बैठी देख, भीमसेनने वह मणि उसके हाथमें देकर कहा,—"प्यारी पाञ्चाली! अश्वत्थामाको ब्राह्मण और गुरुका बेटा समझकर हमलोगोंने छोड़ दिया; पर उसकी मस्तकमणि लेते आये हैं। इसेही लेकर तुम अपने शोकको शान्त करो। उसका वह अभिमान, वह वीर-दर्प, चूर-चूर हो गया है। इस समय वह दीन-हीन भिखमङ्गेकी भाँति इधर-उधर भटकता फिरता है। उसे मृत्युसे भी अधिक दण्ड मिल चुका। अब तुम उसके प्राणोंके लिये लालच न करो। जिसका यश नष्ट हो जाये, कीर्त्ति धूलमें मिल जाये, उसका मरना तो जीनेसे भी अच्छा है। अतएव उसकी मृत्युकी कामना छोड़ दो।"

द्रौपदीने भीमकी बात मान ली और वह मणि धर्मराजके मुकुटमें लगाकर उसने उस दुर्दिनमें भी थोड़ा सुख माना।
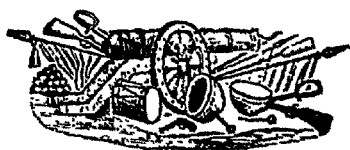
धृतराष्ट्रका विलाप।

कुरु-क्षेत्रके मैदानमें कौरव-पाण्डवोंकी अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गयी। वसुन्धरा क्षत्रिय-शून्य सी हो गयी; क्योंकि संसार-भरके नामी-नामी क्षत्रिय वीर अपने दल-बलके साथ आकर, इस महायुद्धके एक-न-एक पक्षमें सम्मिलित हुए थे। घर-घरमें पति-हीना, पुत्र-हीना, बन्धु-बान्धव-हीना नारियोंका हृदय-विदारक रोदन-काण्ड होने लगा। धृतराष्ट्रके घर जो भयानक शोक-सागर उमड़ पड़ा, उसका क्या वर्णन किया जाये? जिसका एक बेटा मरता है, वह पागल हो जाता है। फिर उनके तो सौ बेटे युद्धमें मारे गये थे; उनके दुःखका क्या ठिकाना था? वे रोते-रोते पागलसे हो गये। अपने पृष्ठपोषक भीष्म, द्रोण, कर्ण आदिको यादकर—पुत्रोंकी विह्वलकारी मृत्युको स्मरणकर, वे बार-बार कहने लगे,—"हा, दुर्योधन! मेरा बेटा! तू कहाँ गया? तेरे भाई-बन्धु कहाँ गये? मुझ अन्धेकी आँख! बूढ़ेकी लकड़ी! तू मुझे छोड़कर कहाँ चला गया?"

यह कहते-कहते वे बेहोश हो-होकर गिर पड़ते थे। दयालु विदुर, जलके छींटे दे, उनकी शुश्रूषा करते थे। पहले तो धृतराष्ट्र पाण्डवोंपर बहुत दाँत पीस रहे थे; परन्तु जब उनका क्रोध कुछ

कम हुआ, तब व्यास, विदुर और सञ्जयने उन्हें यह कहकर धैर्य दिया, कि दुर्योधन सच्चे वीर, सच्चे क्षत्रिय-सन्तानकी भाँति सम्मुख-समरमें लड़कर मरे और स्वर्गके अधिकारी हुए हैं, अतएव आपका उनके लिये शोक करना व्यर्थ है।

स्त्रियोंका विलाप।

इसके अनन्तर मृत सम्बन्धियोंकी श्राद्धादि क्रिया करनेकी तैयारी होने लगी। विदुरजी सब विधवा बहुओं और पुत्र-हीना गान्धारीको लेकर कुरु-क्षेत्रकी ओर चले। उस समय कौरव-कामिनियोंका वह मलिन और कुलक्षण वेश देख तथा हृदय-विदारक रोना सुन, देखनेवाले व्याकुल होकर रोने लगे। वे मन-ही-मन सोचने लगे,—"हाय! जिन स्त्रियोंको एक दिन सूर्यनारायण भी नहीं देख सकते थे, राजलक्ष्मी जिनकी सेवामें थीं, सम्पदा जिनके पैर चूमती थी सौभाग्य जिनके आगे हाथ बाँधे खड़ा रहता था, वेही आज सबके सामने इस तरह दीन-हीन वेश बनाये फिर रही हैं!"

इधर जब पाण्डवोंने सुना, कि धृतराष्ट्र सपरिवार आ रहे हैं, तब वे उनसे मिलनेके लिये आये। सङ्गमें कृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी थे। उनके पास पहुँचकर, स्त्रियोंको रोते-पीटते देख, युधिष्ठिरके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ। द्रौपदी भी अन्यान्य पाञ्चाल-स्त्रियोंके साथ-साथ आयी थीं। वह भी अन्यान्य स्त्रियोंकी तरह बड़ेही शोक-पूर्ण स्वरमें विलाप करने लगीं।

कृष्णका कौशल।

एक-एक करके पाँचों भाइयोंने अपना परिचय देकर धृतराष्ट्रको प्रणाम किया। पहले तो उन्होंने मारे द्वेष और क्रोधके उन्हें

आशीर्वादही न दिया ; परन्तु जब श्रीकृष्णने उन्हें समझाया, तब वे उदास मनसे सबको आशीर्वाद देकर बोले,—"मैं पुत्रोंके प्रेमके कारण थोड़ी देरके लिये उनके शोकमें अधीर हो गया था। यही मेरे चुप रहनेका कारण था।"

तदनन्तर उन्होंने पूछा,—"भीम कहाँ है? मैं उससे मिलना चाहता हूँ।" श्रीकृष्ण जानते थे, कि बूढ़ेके मनमें अब भी पाप है—इसीलिये उन्होंने पहलेसेही भीमकी एक लोहेकी मूर्त्ति बनवा रखी थी। धृतराष्ट्रके ऐसा प्रश्न करनेपर उन्होंने वही मूर्त्ति लाकर उनके सामने खड़ी कर दी। धृतराष्ट्रने उस मूर्त्तिको छातीसे लगाकर बड़े ज़ोरसे दबाया। उन्होंने गले लगानेके बहाने भीमको एकदम दबाकर मार डालनेकाही इरादा किया था ; परन्तु उनका सोचा न हुआ। भीमके बदले वह लोहेकी मूर्त्तिही चूर-चूर हो गयी! अब सबकी समझमें आ गया, कि बुड्ढा कितने गहरेसे आया था। वहाँ जितने लोग मौजूद थे, सबने कृष्णके कौशल और दूरदर्शिताकी प्रशंसा की और धृतराष्ट्रके सब कुछ गँवानेपर भी अबतक कुटिलता न छोड़नेकी बड़ी निन्दा की।

अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्रको कृष्णका यह कौशल नहीं देख पड़ा। उन्होंने यही समझा, कि मैंने अपने पुत्रहन्ताका संहार कर डाला। यह सोच, वे बड़े सन्तुष्ट हुए। उनका सारा क्रोध शान्त हो गया। तब उनके चित्तमें अपने भतीजेको माया उत्पन्न हुई और वे—"हा भीम! हा भीम!"—कहकर रोने लगे। रोते-रोते वे बड़े विह्वल हो गये। तब श्रीकृष्णने कहा,—"महाराज! शोक न कीजिये। आपने अभी जिसका चूरा कर डाला है, वह भीम नहीं—भीमकी मूर्त्ति थी। मैं पहलेही समझ गया था, कि जब आप पाण्डवोंसे मिलेंगे, तब आपको अपने पुत्रके मारनेवाले भीमपर अवश्यही क्रोध

उत्पन्न होगा। परन्तु सच पूछिये, तो आपके पुत्रोंके मारनेका दोष भीमपर नहीं मढ़ा जा सकता। कारण, युद्धमें एकका मरना तो निश्चितही है। पर यह सत्यानाशी युद्ध उपस्थित किसने किया? आपने और आपके पुत्रोंने। पाण्डवोंने तो युद्धको रोकनेके लिये अपनी ओरसे कोई बात उठा नहीं रखी।"

यह सुन धृतराष्ट्र बड़ेही लज्जित हुए और बोले,—"पुत्र-शोकसे मेरी बुद्धि कातर हो गयी थी, इसीसे मैंने ऐसा काम किया! अब मैं इसके लिये हृदयसे पश्चात्ताप करता हूँ। अब मेरा पाण्डवोंसे तनिक भी वैर-विरोध नहीं है। अब मैं पुनः उन्हें वैसीही पुत्रवत् दृष्टिसे देखता हूँ, जैसी दृष्टिसे उन्हें लड़कपनमें देखा करता था। ईश्वर उन्हें चिरञ्जीवी बनाये।"

गान्धारीका शाप।

इस तरह धृतराष्ट्रको ठीक रास्तेपर लाकर श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर आदिको साथ लिये हुए, गान्धारीके पास गये। गान्धारीको व्यासजीने पहलेही समझा-बुझा रखा था, कि देखना, पाण्डवोंको कहीं शाप-वाप न दे डालना—तुम्हींने तो कहा था, कि जहाँ धर्म होता है, वहीं जय होती है? परन्तु पुत्र-वत्सला माताके मनमें वह बात किसी तरह नहीं धँसी। जब भीमने आकर उनके पैर छुए और कहा,—"माँ! मैंनेही तुम्हारे पुत्रोंको मारा है, जो उचित समझो, दण्ड दो," तब तो गान्धारी कुछ न कर सकीं और बोलीं,—"बेटा! हमारे सौ पुत्रोंमेंसे यदि एक-दो भी जीते रहते, तो हम अन्धे-अन्धीके लिये धैर्यके कारण होते; परन्तु भाग्य-दोषसे उनमेंसे एक भी जीता न बचा। अब तो तुम्हीं लोग हमारे पुत्रके समान हो। परमात्मा तुम लोगोंको सुखी रखें; परन्तु श्रीकृष्णपरसे मेरा क्रोध किसी

तरह दूर नहीं होता। उन्होंनेही लड़ा-भिड़ाकर मेरे कुलका संहार करवा दिया है। अतएव, मैं उन्हें शाप देती हूँ, कि जिस तरह आज कौरव-कुलका ध्वंस हुआ है, उसी तरह किसी दिन यादव-कुलका भी समूल नाश हो जायेगा—उसका कोई नाम-लेवा पानी-देवा तक न रह जायेगा—पतिव्रताकी आह कभी खाली न जायेगी।"

यह सुन, श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुराये और उन्होंने सिर झुकाकर उस पतिव्रताके शापको शिरोधार्य्य किया। इसके बाद पाण्डव अपनी माता कुन्तीके पास गये। अपने पुत्रोंको समर-समुद्रसे सकुशल लौट आया देख, वे बहुत आनन्दित हुईं; परन्तु जब द्रौपदीने कहा,—"माँ! आज मैं अकेलीही आपको प्रणाम करने आयी हूँ। अभिमन्युके साथ-ही-साथ मेरे पाँचों बेटे युद्ध-देवताकी भेंट हो गये! हाय! मैं बड़ीही अभागिनी हूँ!"—तब तो कुन्तीके शोककी सीमा न रही। वे और द्रौपदी, दोनों डाढ़ें मारकर रोने लगीं। यह देख, गान्धारीने कहा,—"पुत्री द्रौपदी! शोक न करो। क्षत्राणी तो युद्धमें मरनेकेही लिये पुत्र जनती है। मेरे सौ बेटे और तुम्हारे सभी पुत्रगण इस समय स्वर्ग-धाममें आनन्द-विहार कर रहे हैं। बेटी! तुम उनके लिये व्यर्थ शोक न करो।"

मृतकोंकी दाह-क्रिया।

इसके बाद सबलोग समर-भूमिकी ओर चले। वहाँ अपने सगे-सम्बन्धियोंकी लाशें देख-देखकर स्त्रियाँ अधीर हो-होकर विलाप करने लगीं। वहाँ किसीका भाई मरा पड़ा था, तो किसीका बेटा! किसीका बाप था, तो किसीका स्वामीही अनाथकी भाँति मिट्टीमें सना पड़ा था! सारे युद्ध-स्थलमें मांस-भोजी पशु-पक्षियोंका झुण्ड, लाशोंको नोच-नोचकर खाता हुआ देख पड़ता था। अपने

सगे-सम्बन्धियोंके मृत-शरीरोंकी यह भयानक दुर्दशा देख, स्त्रियाँ उन लाशोंके ऊपर गिरने और उनसे लिपट-लिपटकर रोने लगीं। "हा पिता! हा पुत्र! हा नाथ!" आदि करुण-क्रन्दनसे आकाश विदीर्ण होने लगा। चारों दिशाएँ हाहाकारसे गूँज उठीं। धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी आज्ञा और प्रबन्धसे सबका दाह-कर्म्म होने लगा। बड़ी-बड़ी चिताएँ लकड़ी, घी और चन्दन आदिके द्वारा बनायी गयीं और एक-एक करके सभी वीरोंके शरीरोंका संस्कार कर दिया गया। देखते-देखते सभी वीरोंकी लाशें विशाल भस्म-राशिमें परिणत हो गयीं!

कर्णका परिचय।

सबकी दाह-क्रिया समाप्तकर सब लोग नदी-किनारे आये और मरे हुओंका तर्पण करने लगे। सब लोगोंको तर्पण करते देख, कुन्तीने युधिष्ठिरके पास आकर रोते-रोते कहा,—"पुत्र युधिष्ठिर! सबके साथ-साथ तुम कर्णको भी अवश्यही तिलाञ्जलि प्रदान करना; क्योंकि वह तुम्हाराही बड़ा भाई था।"

यह सुनकर पाण्डवोंके आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा। युधिष्ठिरने कहा,—"माता! यह तुमने क्या कहा? क्या महावीर कर्ण हमारेही भाई थे? जिनकी प्रचण्ड वीरताका दुर्योधनको सबसे बड़ा सहारा था, जिनका तेज संसारमें सिवा अर्जुनके और कोई न सह सकता था, वे क्या हमारेही भाई थे? माँ! तुमने पहले यह बात क्यों न कही? तब काहेको यह भयानक जन-संहार होता? यदि हम कर्णकोही अपना राज्य देकर फिर वनमें चले जाते, तो क्या बुरा था? अपने बड़े भाईको मारकर हमने कौनसा यश पा लिया? हमारा लाभही क्या हुआ?"

उनको इस प्रकार दुःखी होते देख, कुन्तीने कहा,—"बेटा ! युद्धके आरम्भमें मैंने कर्णसे कहा था और स्वयं सूर्यभगवान्ने भी उसे समझाया था, कि तुम पाण्डवोंके भाई हो, पाण्डवोंसे मिलकर रहो ; परन्तु कर्णको किसीकी बात पसन्द न आयी। वह अपनी हठपर अड़ा रहा। इसीसे मैंने वह बात अपने चित्तसे उतार दी और तुम लोगोंसे भी नहीं कही।"

युधिष्ठिरने रोते हुए कहा,—"हाय ! माता ! तुमने यह बात हमसे छिपाकर हमारी और साथ-ही-साथ सारे संसारकी कितनी बड़ी हानि की है, वह तुम नहीं जानतीं। आजतक तुमने भैया कर्णका यथार्थ परिचय हमसे क्यों छिपा रखा था ? हाय ! माता ! तुमने बड़ा भारी अनर्थ कर डाला !"

यह सुन, कुन्तीने आँखोंसे अविरल अश्रु-धारा बरसाते हुए कहा,—"पुत्र ! जिस वीर धनुर्धारीको लोग अधिरथका पुत्र और राधाकी सन्तान जानते थे, जो अकेलाही सारी पाण्डव-सेनाके साथ युद्ध करता हुआ रण-भूमिमें सूर्यके समान चमकता रहता था, जो यशको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझकर, कभी रण-भूमिमें पीठ नहीं दिखाता था, वह तेजस्वी कर्ण, सूर्यके तेजसे, मेरेही गर्भसे कवच-कुण्डल धारण किये हुए उत्पन्न हुआ था। पुत्र ! उस समय मैंने लोक-लज्जाके भयसे उसे नदीके किनारे विसर्जनकर दिया था और यही कारण है, कि आजतक यह बात तुमलोगोंसे भी छिपी रही। पर माता चाहे सन्तानको अपनेसे लाखों कोस दूर कर दे ; पर उसका हृदय सन्तानसे दूर नहीं रह सकता। इसीसे मैं भी दूर-ही-दूरसे कर्णकी कल्याण-कामना किया करती और उसकी उन्नति-से प्रसन्न होती। जब मैंने देखा, कि कर्ण और अर्जुनका सामना होनेवाला है और अब मेरे इन दोनों महावीर पुत्रोंमेंसे एककी

मृत्यु अनिवार्य है, तब मैं लोक-लज्जाको तिलाञ्जलि दे, कर्णके पास गयी और उससे सारा हाल सुनाकर इस सत्यानाशी युद्धसे अलग हो जानेको कहा ; पर उसने न माना। अन्तमें वह इस पृथ्वीको सूनाकर चलाही गया। आज उसीकी मरी हुई आत्माके सन्तोषके लिये मैंने लाज छोड़कर तुमलोगोंको भी उसका यथार्थ परिचय दे दिया ; अब मैं तुमसे अनुरोध करती हूँ, कि अपने बड़े भाईको भी तिलाञ्जलि अवश्य दो। अब तो जो कुछ होना था, वह हो गया। अब पछतानेसे क्या होगा ?"

परन्तु धर्मराजकी विकलता किसी तरह दूर न हुई। उन्होंने दुःखित चित्तसे स्त्री-जातिको यह शाप दिया, कि भविष्यत्‌में स्त्रियोंके पेटमें कोई भी बात न पचेगी !

तदनन्तर माताके इच्छानुसार युधिष्ठिरने कर्णको भी तिलाञ्जलि दी। इसके बाद महाराज युधिष्ठिरकी सलाहसे पाण्डवोंने उन अनाथोंको भी तिलाञ्जलि दी, जिनका अग्नि-होत्र सञ्चित नहीं था और जिनके कुलका कोई बाक़ी न बचा था। सब मिलाकर एक लाख राजाओंकी प्रेत-क्रिया की गयी ! इन सब कामोंसे छुट्टी पा, महाराज युधिष्ठिर, अपने भाइयों और सहचरोंके साथ, घर लौट आये।

युधिष्ठिरका वैराग्य ।

युद्ध भर तो समाप्त होही चुका था; अब उसके रहे-सहे चिह्न भी धीरे-धीरे दूर होने लगे। परिवर्तनशील काल सबके मनमें परिवर्तन उपस्थित करनेका प्रयत्न कर रहा था। शोकका वेग धीमा हो चला था, प्रजावर्गके कष्टोंमें कमी होती जाती थी, सब काम पूर्ववत् होने लगे थे; परन्तु युधिष्ठिरका मन सुखी न हुआ। उनको जबसे यह बात मालूम हुई, कि कर्ण हमारे भाई थे, तभीसे उनका हृदय दुःखसे भर गया। उसी समयसे उन्हें इस नर-संहारक युद्धमें पड़नेका पश्चात्ताप, राज्यसे घृणा और संसारसे वैराग्य होने लगा।

एक दिन महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंको बुलाकर कहा,—"भाइयो! मुझे तो इस राज्यसे बड़ी घृणा हो गयी है। हमने सारे हित-मित्रों और सगे-सम्बन्धियोंको मारकर जो राज्य पाया है, वह क्या सुखदायी है? क्या नर-हत्या करके मनुष्य सुखी हो सकता है? हमारे इस राज्य-लोभके कारण न जाने कितनी अभागिनियोंकी गोद सूनी हो गयी, कितनी अबलाएँ सौभाग्यसे वञ्चित हो गयीं, कितने घरोंका दीपक एकबारगी बुझ गया! ऐसा हृदय-द्रावक सर्वनाश करके हमने अपने लोक-परलोक, दोनों बिगाड़े। मुझे तो

तुम लोग छुट्टी दे दो—मैं वनमें तपस्या करने चला जाऊँ; क्योंकि बिना तपस्या किये, मेरे सिरसे यह पाप दूर नहीं होगा।"

यह सुन, भाइयोंने कहा,—"महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? जो राजा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन और रक्षण करता है, वह मानो सभी यज्ञ-तप कर लेता है; अतएव जिस राज्यके लिये आपने इतना श्रम उठाया, इतनी नर-हत्या की—उसे यों छोड़कर चले जानेसे आपको अधर्महो होगा, धर्म नहीं। अतएव आप नीति और धर्मके अनुसार अपनी पुत्रवत् प्रजाका पालन करते हुए धर्मका राज्य प्रतिष्ठित कीजिये,इसीसे आपको भी शान्ति होगी और सारा संसार सुख पायेगा।"

द्रौपदी कहने लगी,—"महाराज! क्या आप उन बातोंको भूल गये, जो आप वन-वासके क्लेशोंसे घबराकर कहा करते थे? आप कहते थे, 'जिस दिन यह भूमि शत्रु-शरीरोंसे पट जायेगी, उसी दिन हमारे इस महाकष्टकी शान्ति होगी।' अब आपने, अपने प्रतापी भाइयोंकी सहायतासे, वह शान्ति पा ली है, फिर क्यों अशान्त बन रहे हैं? जब मैं अपने सब बेटोंको गँवाकर भी जीना चाहती हूँ, तब आप क्यों राज्य करनेसे विमुख होते हैं?"

व्यासके बोध-वचन।

पर युधिष्ठिरका वैराग्य किसी प्रकार दूर न हुआ। वे ज्ञानकीही बातें बघारते रहे। इसी समय कहींसे महर्षि वेदव्यास वहाँ आ पहुँचे और सब हाल सुनकर बोले,—"धर्मराज! तुम्हें इतने लोग समझा रहे हैं और तुम नहीं मानते—यह बड़े आश्चर्यकी बात है। तुम तो स्वयंही बहुत बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् हो। मनुष्यके क्षण-भंगुर जीवनका क्या ठिकाना है? फिर युद्धमें मरना तो बड़े

गौरवकी बात है। अतएव, तुम मरे हुए सम्बन्धियोंके लिये व्यर्थका शोक क्यों करते हो? वृद्धिके बाद क्षय, उन्नतिके बाद अवनति, सुखके बाद दुःख और संयोगके बाद वियोग तो होताही रहता है। इसके लिये सोच काहेका? तुम्हारे भाइयोंने जो राज्य अधर्मियोंके पञ्जेसे छुड़ाकर प्राप्त किया है, उसे कुछ दिन धर्म-पूर्वक भोगकर तुम उन बेचारोंकी आशा पूरी करो। इसके बाद चाहे वनमें जाना, या जो कुछ जीमें आये करना; परन्तु अभी रङ्ग-में-भङ्ग मत करो। धर्म और दृढ़ निश्चयके साथ, नीति-पूर्वक राज्यका शासन करनेसेही तुम्हारे सब दुःख-कष्ट और चिन्ताका अन्त होगा।"

यह सुन, युधिष्ठिरने कहा,—"महाराज! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; परन्तु मनुष्य राज्य और धर्म, दोनोंके काम एकही साथ किस प्रकार कर सकता है—यह कृपाकर मुझे बतला दीजिये। नहीं तो मेरी चिन्ता न मिटेगी।"

यह सुन, व्यासजीने कहा,—"यदि तुम्हें धर्मका असली रहस्य और उसके गूढ़ तत्त्व जाननेकी अभिलाषा हो, तो तुम महात्मा भीष्मसे जाकर पूछो। अभी सूर्य उत्तरायण नहीं हुए, अतएव अभी उन्होंने शरीर नहीं छोड़ा है। उनके उपदेशोंसे तुम्हारे सारे सन्देह दूर हो जायेंगे। तुम उनके प्राण-त्याग करनेके पहले अवश्यही उनसे उपदेश ग्रहण करो।"

यदु-कुल-कमल-दिवाकर श्रीकृष्णने कहा,—"धर्मराज! व्यर्थके मोह-शोकको छोड़कर अपने भाइयों, मित्रों, पत्नी और शुभ-चिन्तकोंको सुखी करनेके लिये, विजय-यात्राके साज-सामानसे युक्त होकर, शीघ्र राजधानीमें प्रवेश करो। महर्षि व्यासदेवने जो कुछ कहा है, वही उचित है और उसीका पालन करनेमें तुम्हारा मङ्गल होगा।"

धर्म-राज्यकी प्रतिष्ठा ।

अन्तमें सबकी बात मानकर युधिष्ठिर प्रजा-पालन करनेको तैयार हो गये और सबके साथ हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राज्य-शासनकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था की। दीन-दुःखियों-का त्रास मिट गया, दरिद्रोंको मुँह-माँगा दान मिलने लगा; कहीं भी दुःख, अन्याय और अत्याचारका नाम न रह गया।

सिंहासनपर बैठतेही युधिष्ठिरने चारों ओर धर्मका डङ्का बजवा दिया। योग्य मनुष्यही ऊँचे और उत्तरदायित्वके पदोंपर रखे जाने लगे। भीम युवराज बनाये गये। परम नीतिज्ञ, बुद्धि-सागर विदुर प्रधान मन्त्री, अर्जुन सन्धि-विग्रह-मन्त्री, सञ्जय राजस्व-मन्त्री, नकुल सेना-नायक और सहदेव महराजके खास शरीर-रक्षक हुए। देव-सेवाका काम पुरोहित धौम्यको सौंपा गया। यह सब कुछ करते हुए भी युधिष्ठिरने सबको इस बातकी आज्ञा स्पष्ट शब्दोंमें देदी, कि चाहे कोई कुछ कहे; परन्तु सबसे पहले हमारे चाचा, महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञाकाही पालन किया जाये—कोई काम उनके विरुद्ध न हो।

इसी तरह दिन-पर-दिन बीतते गये। एक दिन श्रीकृष्णके आने-पर महाराज युधिष्ठिरने कहा,—"जनार्दन! अब सूर्यके उत्तरायण होनेमें अधिक दिन नहीं है, अतएव चलकर दादा भीष्मके दर्शन करने और उनके उपदेश सुनने चाहियें।" महाराजकी ऐसी इच्छा जान, सबलोग उनके पास जानेके लिये तैयार हो गये।

भीष्मका उपदेश।

भीष्मकी शर-शय्याको चारों ओरसे घेरे हुए अनेक ऋषि, मुनि और महात्मागण बैठे हुए थे। दूरसेही उन्हें देख, सबने अपना-

युधिष्ठिरका राज्यारोहण ।

"सिंहासनपर बैठतेही युधिष्ठिरने चारों ओर धर्मका डंका बजवा दिया ।"

Burman Press, Calcutta.

[पृष्ठ ३०२]

अपना रथ छोड़ दिया और पाँव-प्यादेही भीष्मके पास आये। सबके बैठ जानेपर श्रीकृष्णने कहा,—"हे कुरुश्रेष्ठ! अपने गुरु, दादा तथा भाई-बन्धुओंके संहारका हेतु बननेके कारण युधिष्ठिर बड़ेही दु:खित और लज्जित हो रहे हैं। इसीसे उन्हें आपके सामने आने या आपसे कुछ कहनेका साहस नहीं होता।"

यह सुन, भीष्मने कहा,—"भला इसमें लज्जाकी कौनसी बात है? युधिष्ठिरने समरमेंही अपने भाई-बन्धुओंको मारा है, कुछ लुक-छिपकर धोखेसे नहीं मारा। क्षत्रियका तो यह धर्मही है।"

यह सुन, युधिष्ठिरने कहा,—"पितामह! सबलोग मुझसे राज्य करनेके लिये कह रहे हैं, पर मैं उससे बहुतही घबरा रहा हूँ। सब कहते हैं, कि इससे चारों फलोंकी प्राप्ति हो सकती है और मुझे यह भारी झञ्झटसा मालूम होता है। इसलिये अब आपही कृपाकर बतलाइये, कि मुझे क्या करना चाहिये?"

युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुन भीष्मने कहा,—"क्षत्रियके लिये राज-धर्मही सबसे बढ़कर है। जैसे लगाम घोड़ेको और अंकुश हाथीको बे-राह नहीं जाने देता, वैसेही राजा, सारे मनुष्य-समाजको, मर्यादाके बाहर नहीं जाने देता। समाजकी मर्यादा बनी रहनेसे धर्मका पथ प्रशस्त और अधर्मका पथ बन्द होता है। इससे राजाको बड़ा भारी पुण्य होता है। इसलिये तुम इस राजधर्मका उचित रीतिसे पालन करते हुए नीति-पूर्वक प्रजा-रञ्जन करो। इसीसे तुम्हें इस लोकमें यश और परलोकमें सद्‌गति प्राप्त होगी।"

वर्णाश्रम-धर्मके विषयमें युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर भीष्मपितामहने कहा,—"हे धर्मराज! यद्यपि क्रोध नहीं करना, सदा सच बोलना, परायी नारीको माताके समान जानना, शत्रुपर भी क्षमा-भाव रखना, सदा पवित्र आचरण करना, किसीसे व्यर्थही वैर-विरोध न करना,

सबके साथ नम्र-व्यवहार करना आदि चारों वर्णों के लिये कर्त्तव्य कर्म हैं, तथापि भिन्न-भिन्न वर्णों के लिये शास्त्रोंने भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों-की व्यवस्था की है। प्रत्येक वर्णको अपने इन कर्त्तव्योंका पालन करनेसेही इस संसारमें सुख और परलोकमें शान्ति मिलती है।

"शास्त्रोंमें जैसा विधान पाया जाता है, उसके अनुसार ब्राह्मण-का कर्त्तव्य वेद पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना और इन्द्रियोंका संयम करते हुए तपस्या करना है। क्षत्रियोंका कर्त्तव्य दान देना, यज्ञ करना, विद्या अर्जन करना, प्रजा-पालन करना, युद्ध करना, चोर-डाकुओंका दमन करना और समर-भूमिमें पीठ नहीं दिखानाही है। इसी तरह वैश्यका कर्त्तव्य पढ़ना, यज्ञ करना, कृषि और वाणि-ज्यके द्वारा धन उपार्जन करनाही है। शूद्रका कर्त्तव्य पूर्वोक्त तीनों वर्णों की सेवा करनाही है।
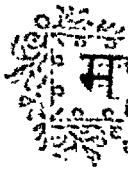
"हे महाराज! ब्राह्मण चारों वर्णों के गुरु होते हैं। इसीलिये उन्हें भूदेव भी कहा जाता है। जो लोग ब्राह्मणोंको देवता समझ-कर उनकी पूजा करते और उनकी कही हुई बातोंको मानकर चलते हैं, उनका सर्वदा और सर्वथा मङ्गलही होता है। वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मण वास्तवमें देवताओंके भी देवता हैं। उनका वाक्य वेद-वाक्य-कीही तरह प्रामाणिक समझना चाहिये।"

चारों वर्णों के कर्त्तव्योंकी बात सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए। उनको बहुत कुछ शान्ति मिली।

अनुशासन-पर्व

अन्यान्य उपदेश।

महात्मा भीष्मके उपदेशोंसे युधिष्ठिरके सारे सन्देह दूर हो गये। इसके बाद वे और भी उपदेश ग्रहण करनेकी इच्छासे, उनसे तरह-तरहके प्रश्न करने लगे। इन प्रश्नोंके उत्तरमें पितामहने उन्हें राज-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, आपद्धर्म, मोक्ष-धर्म और राज्य-शासनकी विलक्षण युक्तियोंके भी अनेक उपदेश दिये। उनमेंसे दो-तीन बातें अति महत्त्व-पूर्ण हैं, इसीलिये वे संक्षेपमें नीचे लिख दी जाती हैं :—

भाग्य और परिश्रम।

महाराज युधिष्ठिरके यह प्रश्न करनेपर कि—"बाबा! संसारके बड़े-बड़े लोग और अनेक नीति-शास्त्र, भाग्य और परिश्रमके विषयमें बड़ा तर्क-वितर्क करते हैं। आपने सारा संसार देखा-भाला है ; मेरी समझमें आपके समान बहुत कम आदमियोंको संसारका अनुभव होगा। अतएव आप बताइये, कि इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ?"

पितामहने कहा,—"बेटा ! समझदार आदमी भाग्य और परिश्रमको भिन्न-भिन्न नहीं मानते। मैं भी उनमें कुछ भेद नहीं देखता। तथापि परिश्रम या पुरुषार्थ प्रधान है ; क्योंकि उसीसे

प्रत्यक्ष फलकी प्राप्ति होती है। बेटा! तुम तो सदा पुरुषार्थके लियेही प्रयत्न करते रहना। जो लोग भाग्यके भरोसे बैठे रहते और परिश्रमसे जी चुराते हैं, उनका कोई काम कभी पूरा नहीं होता। ऐसे लोगोंको याद रखना चाहिये, कि यदि मनुष्य अपने आपको अच्छा बनाना चाहे, तो पुरुषार्थ करे। पुरुषार्थ करनेपर यदि आरम्भ किये हुए, कर्मोंके फल न मिलें, तो कर्त्ताको कोई यह नहीं कह सकता, कि उसने काम करनेकी चेष्टा तो कीही नहीं, फल कैसे मिलता? और यदि कामका फल मिल गया, तब तो सारे अभावोंका अन्तही हो जाता है।"

कर्म-माहात्म्य।

कर्मके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर पितामहने कहा,—"प्रिय युधिष्ठिर! विधाताने प्रधान रूपसे सांसारिक व्यक्तियोंको कर्मकाही दान दिया है। जो मनुष्य कर्मशील नहीं है, वह कदापि सुखोंका अधिकारी नहीं होता। कर्म-रूपी बीजको विना बोये सुख-रूपी फल कभी उत्पन्न नहीं होता। मनुष्यको दान-द्वारा भोगशील, सेवा-द्वारा मेधावी और अहिंसा-द्वारा दीर्घायु बनना चाहिये। साथही उसे सदा शुद्ध-स्वभाव, प्रियवादी, लोभ-शून्य, क्रोध-रहित और सबका शुभ-चिन्तक होकर प्रत्येक कार्य्य करना चाहिये। अपने किये हुए कामोंका फल संसारके प्रत्येक प्राणीको भोगना पड़ता है। कर्मसेही सुखोंकी प्राप्ति होती है और कर्मसेही दुःख मिलते हैं। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कोई राजा, कोई धनी, कोई हीन, कोई दीन और कोई रोगी बनता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको सत्कर्म-शील बनना चाहिये। सत्कर्मी बननेसे इस जीवनकी तो बातही क्या है, पर-जीवनमें भी दुःख दूर रहते हैं।"

राज-धर्म ।

राजाके कर्त्तव्यके विषयमें भीष्मने कहा,—"राज्य पाकर जो व्यक्ति धर्मानुष्ठान-पूर्वक प्रजा-पालन करता है, उसे अक्षय्य स्वर्ग मिलता है। राजाको चाहिये, कि वह अपने समस्त कर्मचारियोंसे यथायोग्य शिष्ट व्यवहार करे। लोग उसके हितके लिये जो सत्परामर्श दें, उसे विचार और विवेककी कसौटीपर कसकर काममें लावे—उसे उपेक्षाके गर्भमें न फेंक दे। यद्यपि राजाओंको दान और यज्ञ-द्वारा भी स्वर्ग-सुख मिलता है, तथापि उनको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध करनेवाला, एकमात्र उनका सुशासन या प्रजा-पालनही है। जिस राजाकी प्रजा अपने प्राप्य अधिकारोंको पाकर यथेष्ट उन्नति करनेमें कृतकार्य होती है, वह समय आनेपर राजाके लिये अपना यथासर्वस्व दान कर देनेमें भी कुण्ठित नहीं होती।"

सारांश यह, कि महाराज युधिष्ठिरने इसी प्रकार पितामहसे बहुतसे उपदेश ग्रहण किये। यह उपदेशावली कितनेही दिन चलती रही। भीष्मके गम्भीर ज्ञान, अपार पाण्डित्य, विलक्षण बुद्धि-वैभव और प्रखर प्रतिभाको देखकर, वहाँ जितने लोग बैठे हुए उनकी बातें सुना करते थे, उन सबके हृदयपर ऐसा प्रभाव पड़ा, कि वे सौ-सौ मुँहसे भीष्मदेवकी प्रशंसा करने लगे। भीष्म ऐसेही महापुरुष थे, जिनके व्यक्तित्वके आगे भला किसे नहीं सिर झुकाना पड़ा?

यह बहुदिन-व्यापी प्रश्नोत्तरी समाप्त हो जानेपर एक दिन भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा,—"पुत्र! अब तुम जाकर राज्य करो! मैं सूर्यके उत्तरायण होतेही शरीर त्याग दूँगा; तभी तुम लोग यहाँ आना।"

भीष्मके उपदेशोंसे मनकी सारी दुश्चिन्ता मेटकर युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौट आये और न्याय-पूर्वक राज्य-शासन करने लगे।

भीष्मका स्वर्गवास ।

थोड़े दिन बीतनेपर युधिष्ठिरने जब देखा, कि माघ-महीनेका शुक्ल-पक्ष आ गया और सूर्य उत्तरायण हुआही चाहते हैं, तब वे अपने सब भाइयोंको साथ ले, बहुतसे रत्न, घी, गन्ध-द्रव्य, रेशमी कपड़े और चन्दन आदि गाड़ियोंमें लदवाकर कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे। उनके साथ-साथ बूढ़े धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, श्रीकृष्ण और सात्यकि आदि भी आये।

ऋषियों और पितामहको प्रणाम कर वे लोग वहीं, उनके पास बैठ गये। उन्हें आया देख, भीष्मने कहा,—"तुम लोग आ गये, यह अच्छाही हुआ। अब मैं यह शरीर शीघ्रही त्याग करूँगा ; क्योंकि ये अट्ठानबे दिन मैंने शर-शय्यापर बड़े कष्टसे बिताये हैं। अब मेरे सौभाग्यसे पवित्र माघ-मासका शुक्लपक्ष आ पहुँचा है। मेरे मरनेके लिये यह समय बहुतही उपयुक्त है।"

यह कह, वे चुप होगये और शरीर छोड़नेके लिये प्रस्तुत हुए। उस समय देखते-देखते उनके शरीरसे सारे बाण, आप-ही-आप निकलकर गिर पड़े ; घावका कहीं चिन्हतक न रहा और उनको प्राण-वायु ब्रह्माण्ड भेदकर निकल गयी। देवताओंने उनके ऊपर पुष्प-वृष्टि की और उपस्थित जन-मण्डलीने सामवेदके पवित्र गानके साथ-साथ, समस्त पवित्र और सुगन्धित सामग्रियोंसे उनके मृत-शरीरका संस्कार किया। संस्कार-कार्य समाप्त होनेपर सबलोग नदीके किनारे आये और वहाँ भीष्मको तिलाञ्जलि देकर प्रसन्न मनसे घर लौटे।

परीक्षित-जन्म ।

बहुत समझाने-बुझानेसे महाराज युधिष्ठिरने सिंहासनपर आरोहण किया ; कुछ दिन बादही पाण्डवोंने अश्वमेध-यज्ञ करनेका विचार किया। पर इसमें कितनी कठिनाई, कितना व्यय और कैसा परिश्रम उठाना पड़ेगा, यह सोचकर युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए; क्योंकि खज़ाना तो सारा लड़ाईमेंही खाली होगया था, अब इतने बड़े यज्ञका खर्च कहाँसे आये ?

उन्हें चिन्तामें पड़े देख, व्यासजीने कहा,—"राजन्! राजा मरुत्का छोड़ा हुआ बहुतसा धन अभीतक हिमालयपर पड़ा हुआ है। तुम जाकर उसे ले आओ और आनन्दके साथ यज्ञ करो।"

यह सुन, पाँचों भाइयोंने सेना सजाकर हिमालयकी ओर प्रस्थान किया और मरुत्की छोड़ी हुई सारी धन-सम्पत्ति जानवरोंकी पीठपर लदवाकर ले आये। पाण्डवलोग जिस समय मरुत्की वह सम्पत्ति लाने गये थे, उसी समय श्रीकृष्ण, अपने मित्रों और कुटुम्बियोंके साथ, हस्तिनापुर आ गये थे। इसी बीच अभिमन्युकी विधवा स्त्री उत्तराके एक बाण-विद्ध मृतक पुत्र उत्पन्न हुआ। पाठकोंको स्मरण होगा, कि अश्वत्थामा जब अपने छोड़े हुए अस्त्रका प्रतिसंहार न कर सका, तब पाण्डवोंकी रक्षाके लिये उसके

द्वारा उत्तराके गर्भस्थ बालकके मारे जानेकीही बात ते पायी थी। इसीसे वह बालक मरा हुआ पैदा हुआ। यह देख, परिवार-भरमें बड़ा भारी शोक छा गया; पर योगिराज कृष्णके आशीर्वादसे वह बालक पुनर्जीवित होगया। वही बालक पीछे "परीक्षित" नामसे प्रसिद्ध हुआ। पाण्डवोंने जब घर लौटकर यह संवाद सुना, तब अपने सदाके सहायक और उपकारी श्रीकृष्णका बड़ा उपकार माना।

अश्वमेध-यज्ञ।

धन आजानेके बाद व्यासदेवने यज्ञकी तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी। दिग्विजयके लिये घोड़ा छोड़ा गया, जिसके साथ ससैन्य अर्जुन भेजे गये। दिग्विजयके समय मनीपुरमें अर्जुनका, नाग-कन्या उलूपीके गर्भसे उत्पन्न, अपने पुत्र बभ्रुवाहनसे जो युद्ध हुआ था, वह सब युद्धोंसे विकट और अपूर्व था। अर्जुनके पुत्रने उसमें विजय पायी थी। सर्वत्र विजय करते हुए एक वर्ष बाद अर्जुन घर लौटे। व्यासदेवने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने प्रधान-प्रधान शिष्यों सहित यज्ञ-भूमिमें उपस्थित होकर धर्मराजको यज्ञमें दीक्षित किया। शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों-द्वारा यथाविधि यज्ञ-कार्य होने लगा। बड़े समारोहसे वह यज्ञ समाप्त हुआ। उसके समाप्त होनेपर धर्मराजने इतना दान दिया, कि जन्मके दरिद्री धनी हो गये। यज्ञमें निमन्त्रित राजा-महाराजों तथा सेठ-साहूकारोंका, धर्म्मराजकी ओरसे, अच्छा सम्मान किया गया। उनके मनोरञ्जनके लिये पुरवासियोंने नगरको खूब रच-रचकर सजाया था। सब तरहका आदर-सम्मान पाकर निमन्त्रित व्यक्ति बड़ेही आनन्दसे विदा हुए।

जब महाराज युधिष्ठिरका वह यज्ञ पूरा होगया, तब सबलोग उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। बहुतोंका तो यही कहना था, कि

अर्जुन और बभ्रुवाहन।
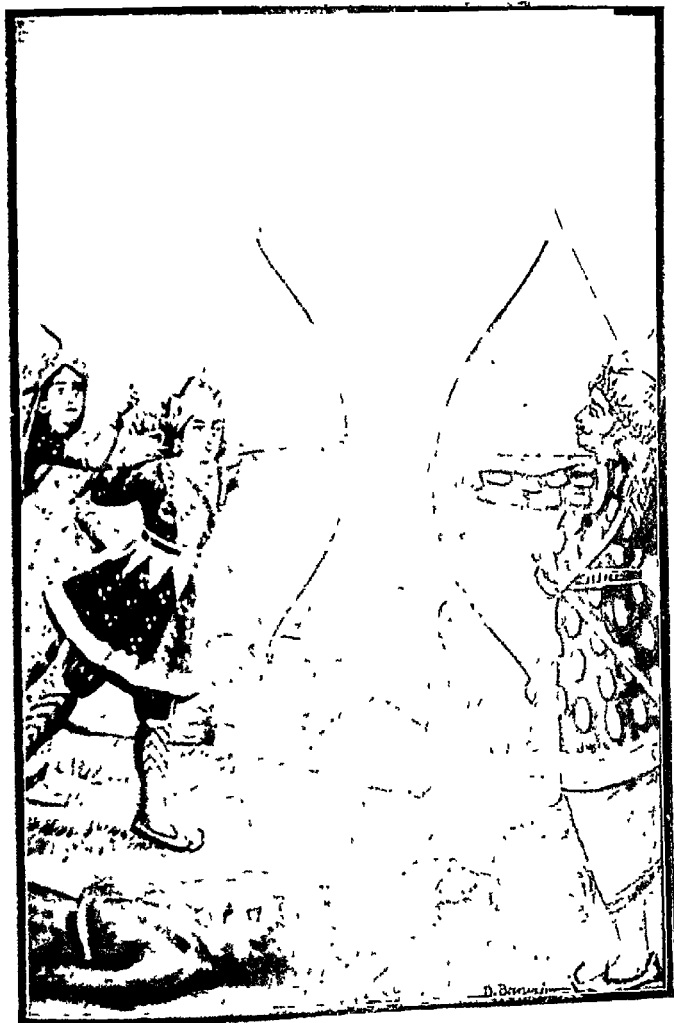
"अर्जुनके पुत्र बभ्रुवाहनने इस युद्धमें विजय पायी थी।"

[पृष्ठ—३९०]

ऐसी धूमधामका यज्ञ आजतक किसीने नहीं किया ; पर जब प्राय: वे सभी लोग, जो यज्ञमें निमन्त्रित होकर आये थे, अपने-अपने घर चले गये, तब एक बड़ीही विचित्र घटना हुई।

सब लोग युधिष्ठिरके यज्ञ और उसमें किये हुए दानकी बड़ी बड़ाई कर रहे थे ; पर एक नेवलेने, जिसका आधा शरीर सोनेका था, अपने बिलसे निकलकर उस यज्ञकी निन्दा करनी शुरू की। उसने महाराज युधिष्ठिरके पास आकर कहा,—"महाराज ! सब-लोग आपके इस यज्ञ और आपके किये हुए दान-पुण्यकी बड़ी बड़ाई कर रहे हैं ; पर मुझे तो यह यज्ञ कुरुक्षेत्रके उस उञ्छ-वृत्तिवाले ब्राह्मणके सत्तू-दानसे बढ़कर नहीं मालूम पड़ा।"

इस आश्चर्य-भरी बातको सुनकर सब लोगोंने उस नेवलेसे उक्त उञ्छ-वृत्तिधारी ब्राह्मणकी कथा पूछी। इसके उत्तरमें उसने कहा,—"महाराज ! सुनिये। कुरुक्षेत्रमें एक उञ्छ-वृत्तिधारी ब्राह्मण रहते थे। उञ्छ-वृत्तिवाले, किसानोंके अनाज काटकर घर ले जाने-पर, खेतमें पड़े हुए अन्नके दानोंको चुनकर ले आते और उसीसे ब्राह्मण-अतिथिकी सेवा करते हुए अपना भी पेट पालते हैं। इसी तरह उस ब्राह्मणके भी दिन कट रहे थे। उसी कालमें एक साल बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। अन्न बिलकुलही पैदा नहीं हुआ। लाचार बेचारे ब्राह्मणको भिक्षा माँगकर पेट पालना पड़ा। परन्तु सारी प्रजा दुर्भिक्षकी सतायी हुई थी, इसलिये कभी-कभी तो बेचारेको माँगे भीख भी नहीं मिलती थी।

"एक दिन सारा दिन भीख माँगनेपर उस ब्राह्मणको थोड़ेसे जौ मिले। उन्हेंही भूनकर उसने सत्तू तैयार किया और उसे खानेकी तैयारी करने लगा। इतनेमें कहींसे एक भूखा ब्राह्मण आ निकला। ब्राह्मणने उसे अपने हिस्सेका सत्तू खानेको दिया ; पर

उतनेसे उसका पेट नहीं भरा। तब उसकी स्त्रीने अपना हिस्सा भी दिया। वह उसे भी चट कर गया और इतनेपर भी भूखाही बना रहा। इसी तरह उस भूखे ब्राह्मणने उस बेचारेके पुत्र और पुत्र-वधूका हिस्सा भी गलेके नीचे उतार लिया। जब घर-भरका भोजन उस ब्राह्मणके पेटमें पहुँच गया, तब कहीं उसकी भूख मिटी। बेचारे ब्राह्मणका सारा परिवार भूखाही रह गया।

"पर उन लोगोंका अतिथि-प्रेम और ब्राह्मण-सेवा भी अपूर्व थी। उस अकालके ज़मानेमें मुश्किलसे मिला हुआ सत्तू दूसरेको खिलाकर, भूखों मरते हुए भी, उन्होंने अपना मुँह मलिन नहीं किया। यह देख, उस भूखे ब्राह्मणने अपना असल रूप प्रकट किया और कहा,—'मैं धर्म हूँ—तुम्हारी परीक्षा लेने आया था। तुम पूरे धार्मिक हो; अब तुम यहाँसे सीधे स्वर्ग चलो।' यह कह, वे उस ब्राह्मणको सपरिवार स्वर्गमें ले गये।

"महाराज! उस ब्राह्मण-परिवारके स्वर्ग चले जानेके बाद मैं भी अपने बिलसे निकला और वहाँ जो थोड़ासा गिरा-पड़ा सत्तू बच रहा था, उसेही खाने लगा। उसे खातेही मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया। उस दिनसे मैं सारी पृथ्वीमें खोजता फिरता हूँ; पर वैसा दानी नहीं पाता, जिसका अन्न खानेसे शरीरका बाक़ी हिस्सा भी सोनेका हो जाये। यहाँ भी मेरा यह मनोरथ पूरा नहीं हुआ। इसीसे मैं कहता हूँ, कि आपका यह यज्ञ उस सत्तू-दानसे बढ़कर नहीं हुआ।"

यह कह, नेवला चला गया। यह कथा सुनकर सबने सोचा, कि यह नेवला कोई साधारण जीव नहीं है। यह हमें चेतावनी दे गया है, कि कहीं हम अपने यज्ञकी सफलतापर घमण्ड न करें और संसारमें एक-से-एक दानी हैं, यही सोचकर नम्र बने रहें।

आश्रमवासिक-पर्व

धृतराष्ट्रका वन-गमन।

सम्राट् बनकर युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र और गान्धारीके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार किया, कि वे अपने कुटुम्ब-नाशका समस्त शोक भूल गये। दुर्योधनको भूलकर वे युधिष्ठिरपर अनुराग करने लगे। अब पाण्डवही उनके पुत्र थे; क्योंकि युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—सब एक-मनसे अन्धराजकी सेवा-शुश्रूषा कर उन्हें सदा सन्तुष्ट रखते थे।

धृतराष्ट्रने पहले पाण्डवोंको कैसे-कैसे दुःख दिये थे, इस बातको सभी पाण्डव भूल गये; नहीं भूले, तो केवल भीम। यही कारण था, कि भीमसेन अन्य भाइयोंकी अपेक्षा अन्धराजकी कम सेवा किया करते थे। पन्द्रह वर्षतक धृतराष्ट्र पाण्डवोंका सुख भोगते रहे। आखिर वे भीमकी व्यङ्ग-भरी आत्म-प्रशंसासूचक बातोंको सुनते-सुनते ऊब उठे। उन्होंने एक दिन युधिष्ठिरको बुलाकर कहा,—"वत्स! तुम्हारा मङ्गल हो। हमने तुम्हारी सेवा-शुश्रूषासे अपने पुत्रोंके मर जानेपर भी, आजतक खूब आनन्दसे दिन व्यतीत किये; परन्तु अब हमारी अन्तिम अवस्था आपहुँची है। इस अवस्थामें तपस्या-द्वारा परलोक सुधारना हमारे कुलकी पुरानी रीति है। अतएव अब हमें आज्ञा दो, कि हम वनमें जाकर भगवान्का भजन करें।"

यह सुनकर, धर्म्मराज बड़े दुःखी हुए। उन्होंने बहुतेरा चाहा, कि वे लोग यहीं रहें ; परन्तु व्यासदेवके भी इस बातका अनुमोदन करनेपर, उन्हें अन्धराजके उपरोक्त प्रस्तावको मानही लेना पड़ा। तब धृतराष्ट्रने नगरके समस्त प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको बुलाकर उनसे सविनय विदा माँगी।

कार्त्तिक-मासकी पूर्णिमाको, वन-वासियोंकासा वेश बना, अन्ध-राज, गान्धारी, विदुर और सञ्जयको साथ लेकर, वनकी ओर चले। सारी स्त्रियाँ और पुरुष रोते हुए उनके पीछे-पीछे चले। कुन्ती भी गान्धारीके साथ होलीं। उन सबके पीछे युधिष्ठिर सहित पाँचों पाण्डव, द्रौपदी, सुभद्रा तथा उत्तरा भी चलीं। सब लोगोंकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। जब यह जन-समुदाय नगरके बाहर पहुँचा, तब धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर एवं अन्यान्य परिजनोंसे कहने लगे,—"प्रियवरो! अब आपलोग नगरको लौट जाइये। युधिष्ठिर! प्रजाका न्यायानुसार पालन करनाही तुम सदा अपना धर्म समझना।"

इसके बाद युधिष्ठिर, भाई और स्त्रियोंके साथ, नगरमें लौट आये। कुन्ती, सैकड़ों बार मना करनेपर भी, वनको चली गयीं। अन्धराज सबके साथ गङ्गातटपर पहुँचे। वहाँसे कुरुक्षेत्र होते हुए वे लोग वनमें चले गये। वहाँ बहुतसे ऋषि-मुनि निश्चिन्त-मनसे तपस्या किया करते थे। वे लोग भी उन्हीं मुनियोंके साथ रहकर तपस्या करते हुए समय बिताने लगे।

विदुरका प्राण-त्याग

पाण्डवोंने अन्धराज, विदुर, कुन्ती आदिको वन जानेकी आज्ञा तो दे दी ; पर घर आकर उनके मन बड़ेही खिन्न हुए। वे धीरे-

धीरे राज-काजसे उदासीन होने लगे। इसलिये उन्होंने एक दिन समस्त परिजनोंके साथ धृतराष्ट्र आदिके दर्शन करनेकी ठहरायी और सब लोग तापस-वनमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, कि अनेक ऋषि-मुनि अन्धराजके पास बैठे हुए धर्म-कथाएँ कह रहे हैं। अन्धराजका शरीर, नित्यके व्रत और नियम-पूजनादिसे, बहुत-ही कृश हो गया था। युधिष्ठिरने,साथियों सहित धृतराष्ट्रके चरणोंमें प्रणाम किया। अनन्तर समस्त कुशल-प्रश्नादिके बाद युधिष्ठिरने पूछा,—"महाराज! महात्मा विदुर कहाँ हैं?"

इतनेमें स्वयं विदुरजी आते हुए दिखाई पड़े। उनके शिरपर बड़े-बड़े बाल थे; तपस्यासे तमाम शरीरमें हड्डियोंके सिवा कुछ भी बाक़ी नहीं था। वे एकबार सबको देखकरही तुरत कहीं चल दिये। यह देख, धर्मराज मोहसे,—"हे पितृव्य! हे विदुर!" कहते-कहते उनके पीछे दौड़े। धर्मराजको अपने पीछे आते देख, विदुर एक पेड़के नीचे समाधि लगाकर बैठ गये। उन्होंने युधिष्ठिरकी ओर देखते-देखते, योग-बलसे, अपने प्राण त्याग कर दिये। इसी समय एक ऋषिने आकर धर्मराजसे कहा,—"हे राजन्! आप विदुरकी मृत्युपर शोक न करें और इनका शरीर भी न जलायें; क्योंकि इससे स्वर्गमें इनका बड़ा आदर होगा।"

युधिष्ठिर इन सब बातोंपर आश्चर्य प्रकट करते हुए अन्धराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने एक मासतक निवास किया। अनन्तर वे, भाइयों सहित, हस्तिनापुरको लौट गये।

वनवासियोंका स्वर्गवास।

दो वर्ष बाद अकस्मात् एक दिन देवर्षि नारदने धर्मराजके पास आकर कहा,—"हे धर्मराज! तुम्हारे तपोवनसे लौट आनेपर

धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और सञ्जयने घोर तपस्या करनी आरम्भ की। वे केवल जल पीकरही निराहार रहने लगे। एक दिन धृतराष्ट्र, सबके साथ, वनमें घूम रहे थे। सहसा सारे वनमें एक साथ आग लग गयी। भोजन छोड़ देनेसे उनके शरीरमें बल तो था ही नहीं, अतः उन्होंने परमात्माका ध्यान करते-करते अपनी देह उसी अग्निमें भस्म कर दी! सञ्जय किसी प्रकार उस वनसे बच आये थे। उनकेही द्वारा हमने यह संवाद सुना है। अब वे हिमालयको चले गये हैं।"

यह सुन, युधिष्ठिरादि सब भाई 'हा कुन्ती! हा धृतराष्ट्र!' कह-कहकर बड़े ज़ोरसे रोने लगे। सारे हस्तिनापुरमें हाहाकार मच गया। अनन्तर सब भाई गङ्गा-किनारे गये और वहाँ स्नानकर, उन्होंने अन्धराज, गान्धारी तथा कुन्ती आदिका श्राद्ध किया।

मौषल-पर्व

यदुवंशका अधःपतन ।

राज्य-ग्रहण करनेके बाद छत्तीस साल बीतनेपर, राज्यमें अनेक प्रकारके दुर्लक्षण और दैवी उत्पात दिखाई देने लगे । यह देख युधिष्ठिरको बड़ी शङ्का उत्पन्न हुई ।

भारतीय युद्धके अनन्तर, शत्रु-भय-शून्य यादव लोग निर्भय और निरंकुश हो उठे । उनका चरित्र अनेक दोषोंसे दूषित होने लगा । बड़ोंका सन्मान और ऋषि-महर्षियोंके प्रति सद्व्यवहार करना वे एकबारगीही भूल गये । मद्य-पान, हँसी-दिल्लगी, ज़रा-ज़रासी बात-पर गाली-गलौज करना, उनका नित्य-नैमित्तिक कार्य होगया ।

ऋषियोंका शाप ।

एक दिन नारद, कण्व और विश्वामित्र, भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करने आये । इसी समय कई कौतुक-प्रिय छोकरोंने कृष्ण-पुत्र शाम्बको, स्त्री-वेशमें, उनके पास ले जाकर पूछा,—"हे महात्मागण ! आप लोग ज्योतिष-तत्त्वको भली भाँति जानते हैं; कृपाकर बतलाइये तो, कि इस स्त्रीको पुत्र या कन्या क्या होगा ?"

महर्षिगण ताड़ गये, कि ये लोग हमसे दिल्लगी कर रहे हैं । अतः वे लोग यादवोंकी उद्दण्डतासे बड़े क्रोधित हो उठे । उन्होंने कहा,—"इसके पेटसे जो कुछ होगा, वही तुम्हारा नाश करनेवाला होगा ।"

यह कह ऋषि लोग वहाँसे चले गये। यह हाल सुन, श्रीकृष्णको बड़ी चिन्ता हुई। अगले दिन, प्रात:कालही, शाम्बके पेटसे एक भीषण मूसल उत्पन्न हुआ। श्रीकृष्णकी आज्ञासे वह मूसल चूर-चूर करके समुद्रमें फेंक दिया गया।

यदुवंशियोंमें प्राय: सब-के-सब शराबी हो गये थे। यह देख, अधिक उपद्रव हो जानेकी आशङ्कासे श्रीकृष्णने द्वारकामें शराब बनाना बन्द करा दिया ; पर इससे भी कुछ फल न हुआ। आखिर एक बार समस्त यादव प्रभास-तीर्थपर गये। वहाँ उनकी मत्तताका कुछ ठिकाना न रहा। वे सब-के-सब कृष्ण-बलरामके सामनेही मदिरा-पान और हँसी-मज़ाक़ करने लगे।

यदुवंशका ध्वंस।

उस मज़ाक़मेंही सात्यकिने कृतवर्म्मासे कहा,—"क्योंजी ! तुमने सोते हुए पाण्डव-पक्षके लोगोंको क्यों मारा था ? तुम तो बड़े भारी निर्दयी मालूम होते हो।"

कृतवर्मा बोला,—"तुमने भी तो ध्यानस्थ भूरिश्रवाका सिर काट लिया था ? तुम क्या कम निर्दयी हो ?"

इसी प्रकार बातों-ही-बातोंमें एक दूसरेके छिद्र निकालने लगे। फल यह हुआ, कि सात्यकिने कृतवर्माका सिर काट लिया। तब कृतवर्माके आत्मीय लोगोंने सात्यकिपर आक्रमण किया। यह देख, कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न उनके ऊपर झपटे। बात-की-बातमें घमासान युद्ध होने लगा। सात्यकि और प्रद्युम्न मारे गये ! उनके मरतेही अन्धक, भोज, वृष्णि, दशार्ह आदि भी नशेकी झोंकमें आपसमें भिड़ पड़े। यह देख, कृष्णसे न रहा गया और उन्होंने भी कुशका एक मुट्ठा बना, उसीके द्वारा अपने कुटुम्बियोंको मारना शुरू

किया। क्षण-भरमें सब लोग मारे गये! ऋषियों और गान्धारीका शाप सफल हुआ। यदुवंशका ध्वंस हो गया!

समस्त यादवोंको मरा देख, श्रीकृष्ण कुछ देरतक खड़े-खड़े समयकी गतिपर आश्चर्य करते रहे। अन्तमें उन्होंने अपने सारथि दारुकसे कहा,—"हे दारुक! तुम यहाँका सब हाल सुनाकर अर्जुनको द्वारका ले आओ और उनसे कहो, कि अब वे समस्त यादव-स्त्रियोंकी रक्षा करें।" आज्ञानुसार दारुक हस्तिनापुर चला गया।

लीला-संवरण।

अब श्रीकृष्ण, बलरामका पता लगाने गये। उन्होंने एक जगह जाकर देखा, कि बलराम, एक बड़े वृक्षकी शाखापर बैठे हुए, योग-निद्रामें निद्रित हो रहे हैं। श्रीकृष्णने उनसे कहा,—"हे भाई! आप यहाँ ठहरें, मैं स्त्रियोंकी रक्षाका प्रबन्ध कर अभी आता हूँ।"

यह कह, कृष्ण द्वारकामें आ, पितासे बोले,—"हे देव! यादव-कुलका विध्वंस हो गया। अब मैं भी यहाँ रहना अच्छा नहीं समझता। जबतक अर्जुन यहाँ नहीं आयें, तबतक आप स्त्रियोंकी देख-रेख करते हुए, यहाँ रहें। भाई बलराम वनमें मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं अब वहाँ जाता हूँ।"

यह कह कृष्ण, वसुदेवको प्रणामकर, वनमें लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि बलरामने भी अपने प्राण त्याग दिये हैं! उनकी देह निर्जीव होकर पड़ी है! इससे कृष्ण बड़े दुःखी हुए। वे उदास मनसे वनमें घूमते-फिरते एक पेड़के नीचे जा बैठे। इसी समय एक व्याधने उन्हें मृग समझकर दूरसेही एक तीर मारा। वह तीर कृष्णके पैरके तलवेमें आकर लगा। तलवेसे खूनकी धारा फूट पड़ी। व्याध जब कृष्णके निकट आया, तब वहाँ कृष्णको देखकर

अपनी भूलपर पछताने लगा। कृष्णने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया और आप प्राण त्यागकर स्वर्ग सिधार गये !

अर्जुनका शोक ।

उधर दारुकके मुँहसे यादवोंके ध्वंसका समाचार सुन और कृष्णका सँदेसा पाकर अर्जुन द्वारकामें आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि सारी द्वारका श्मशानसी हो रही है ! बलराम और श्रीकृष्ण भी चल बसे हैं। उनके सामनेही वसुदेवने भी प्राण छोड़ दिये। यह सब देखकर अर्जुनका कलेजा फटने लगा। उन्होंने ज्यों-त्यों कर सबके क्रिया-कर्म समाप्त किये ; फिर कृष्णके दोहते वज्र और मरनेसे बची हुई यादव-स्त्रियोंको लेकर वे हस्तिनापुर लौट आये।

रास्तेमें उन्हें कुछ डाकुओंने घेर लिया और स्त्रियोंको छीन लेना चाहा। यह देख, उन्होंने बड़े क्रोधसे अपने गाण्डीव-धनुषको सम्हाला ; पर उनका किया कुछ न हुआ। उन्होंने देखा, कि अब मेरी बाहुओंमें तनिक भी बल न रहा। जिन अर्जुनने बात-की-बातमें सहस्रों योद्धाओंको मार गिराया था, उन्हींके देखते-देखते डाकू स्त्रियोंको उठाकर ले भागने लगे और उनसे कुछ करते न बन पड़ा ! वे बची-खुची स्त्रियोंको हस्तिनापुर पहुँचाकर व्यासाश्रममें गये। वहाँ जाकर उन्हें संसारसे वैराग्य उपजा। अर्जुनकी दशा देख और उनसे कुल हाल पूछ व्यासदेवजी कहने लगे,—"हे वत्स ! इस पृथ्वीपर तुम्हें जो कुछ करना था, वह सब तुमने कर लिया। अब तुम्हारी वृद्धावस्था आ पहुँची। अतः तुम स्वर्ग-यात्राकी तैयारी करो।"

यह सुन अर्जुन, व्यासजीको प्रणामकर, हस्तिनापुर चले आये और उन्होंने सब वृत्तान्त युधिष्ठिरको कह सुनाया।

महाप्रस्थानिक-पर्व

पाण्डवोंका महाप्रस्थान।

यदुवंशके ध्वंस और भगवान् श्रीकृष्णके लीला-संवरणका हाल सुन, युधिष्ठिरकी इच्छा भी संसार-त्याग करनेकी हुई। पाण्डवोंने आपसमें सलाहकर परीक्षितको हस्तिनापुरका राजा बना दिया और कृपाचार्य तथा युयुत्सुके ऊपर राज्य-प्रबन्धका भार छोड़, वे वनको चल दिये।

जुएके बाद जैसे पाण्डव लोग वन गये थे, उसी भाँति अब भी उन्हें वन जाते देख, दर्शकोंकी आँखोंमें आँसू भर आये; परन्तु अबकी बार पाण्डवोंको किसीने नहीं रोका। एक कुत्ता भी उनके पीछे-पीछे चला। द्रौपदी और पाँचों भाई पहले पूर्वकी ओर गये। मार्गमें अनेक नद, नदी, पर्वत एवं नगरोंका अवलोकन करते हुए वे लोग लोहित-सागरके पास आ पहुँचे। इसी समय एक लम्बे-चौड़े शरीरवाला आदमी आया और उसने अपना नाम 'अग्नि' बताकर अर्जुनसे गाण्डीव-धनुष माँगा। अर्जुनने तत्काल अपने तरकस और गाण्डीव-धनुषको अग्निके सुपुर्द कर दिया।

युधिष्ठिरकी परीक्षा।

समस्त भारतवर्षकी परिक्रमा करते हुए पाण्डव हिमालय-पर्वत-पर जा पहुँचे। हिमालय शीतका मुख्य स्थान है। वहाँकी बर्फीली

भूमिपर कुछ दूर जाते-जाते ही द्रौपदी अचानक निस्तेज होकर एक स्थानपर गिर पड़ी।

यह देख, भीमने पूछा,—"हे धर्मराज! हमारी प्यारी द्रौपदी तो सदा सत्याचरण-पूर्वक रही है; फिर वह क्यों गिर पड़ी?"

युधिष्ठिर,—"हे भीम! द्रौपदी हम पाँचों भाइयोंकी स्त्री थी; पर वह सबकी अपेक्षा अर्जुनको अधिक चाहती थी, यह बात उस जैसी पतिव्रता स्त्रीके लिये अच्छी नहीं थी। इसीसे उसका पतन हुआ।"

कुछ दूर आगे जाकर सहदेव गिर पड़े। यह देख, भीमने पूछा,—"धर्मराज! सहदेव तो इतने सुशील थे, फिर क्यों गिरे?'

युधिष्ठिर,—"भाई! इन्हें अपनी विद्वत्ताका बड़ा भारी घमण्ड था। अतः इनका पतन तो होनाही चाहिये था।"

कुछ आगे चलकर नकुलका भी पतन हुआ। भीम फिर बोले—"हे देव! सदा बड़ोंके आज्ञानुवर्त्ती नकुल क्यों गिरे?"

युधिष्ठिर,—"भाई! नकुल अपनेको संसार-भरमें सबसे अधिक रूपवान् समझते थे।"

जाते-जाते एक जगह अर्जुन भी गिर पड़े। तब भीमने फिर पूछा,—"हे देव! महावीर अर्जुन क्यों गिरे?"

युधिष्ठिर,—"हे भाई! अर्जुनको अपनी शूरताका जितना अभिमान था, उतना काम इन्होंने नहीं किया, इसीसे इनका पतन हुआ।"

थोड़ी दूर आगे चलकर भीमसेन स्वयं गिर पड़े। उस समय उन्होंने चिल्लाकर युधिष्ठिरसे पूछा,—"भाई साहब! आपका परम स्नेह-पात्र मैं क्यों गिरा?"

युधिष्ठिर,—"भीम! तुम दूसरोंको तिनकेके बराबर और अपनेको महाबली समझते थे। इसीसे तुम्हारा पतन हुआ; अभिमानके समान दूसरा दुर्गुण नहीं है। यह सदा मनुष्योंको नीचा दिखाता है।"

पाण्डवोंका महाप्रस्थान।

"कुछ दूर जाते-न-जातेही द्रौपदी निस्तेज होकर एक स्थानपर गिर पड़ी।"

[पृष्ठ—३२२]

Burman Press, Calcutta.

अब युधिष्ठिरके साथ केवल वह कुत्ताही रह गया। वे कुछही आगे बढ़े होंगे, कि एक दिव्य विमान उनके पास आया। उसपर इन्द्र बैठे हुए थे। देवराज विमानसे नीचे उतरे और युधिष्ठिरके पास आकर बोले,—"हे धर्मराज! हम आपको स्वर्गसे बुलाने आये हैं, चलिये—देवगण आपको देखनेके लिये लालायित हो रहे हैं।"

युधिष्ठिर,—"देव! मेरे अन्य भाई और प्रियतमा द्रौपदी पीछे गिर पड़ी हैं, मैं उनके बिना कहीं नहीं जाना चाहता।"

इन्द्र,—"वत्स! वे सब स्वर्ग चले गये, आप भी चलिये।"

युधिष्ठिर,—"अच्छा, मैं आपकी आज्ञा स्वीकार करता हूँ; परन्तु मेरे साथ-साथ यह कुत्ता भी जायेगा।"

इन्द्रने कुछ मुस्कराकर कहा,—"धर्मराज! आप तो सदैव पवित्र और स्वच्छ रहे हैं। अब अन्त समयमें क्यों एक महान् अपवित्र जीवको अपने साथ-साथ स्वर्ग लिये जाते हैं?"

युधिष्ठिर,—"हे देव! जो मेरा शरणागत है, उसे त्यागकर मैं कभी और कहीं भी नहीं जाना चाहता।"

जब महात्मा युधिष्ठिरने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा की, तब वह कुत्ता साक्षात् धर्मका रूप धारणकर, धर्मराजसे मीठे स्वरमें कहने लगा,—"हे वत्स! हमने तुम्हारी परीक्षा ली थी। तुम अपने शरणागत कुत्तेके लिये स्वर्ग भी छोड़नेको प्रस्तुत हो, इससे मालूम होता है, कि तुम्हारे समान धर्मात्मा स्वर्गमें भी कोई नहीं है। जाओ, हम तुमपर प्रसन्न होकर तुम्हें यह वर देते हैं, कि तुम इसी देहसे स्वर्गमें जाकर अपने सम्बन्धियोंसे भेंट करोगे।"

भगवान् धर्मके यह बात कह चुकनेपर सब देवगणोंने एकत्रित हो, देवराज-सहित, युधिष्ठिरको विमानपर बैठा लिया।

युधिष्ठिरको मनुष्य-शरीरसेही स्वर्गमें आया हुआ देख, देवर्षि

नारदने बड़े आनन्दके साथ कहा,—"अहा! युधिष्ठिरके समान धर्मात्मा संसारमें न कोई हुआ और न होगा। इसीसे इन्होंने सशरीर स्वर्ग-लाभ किया।"

युधिष्ठिरने कहा,—"देव! मुझे स्वर्गकी चाह नहीं है। मैं तो वहीं जाना चाहता हूँ। जहाँ मेरे प्यारे भाई और द्रौपदी हों।"

इन्द्रने कहा,—"महाराज! आप अपने धर्मके प्रभावसे इस स्थानपर आ पहुँचे हैं। अब आप यहीं रहें। उन लोगोंने आपके समान पुण्य नहीं कमाया, इसलिये वे यहाँ नहीं आ सकते।"

युधिष्ठिर बोले,—"जहाँ मेरे भाई और स्त्री हों, वहीं मुझे भी पहुँचा दीजिये। वह स्थान भला-बुरा चाहे जैसा हो, पर मैं वहीं जाना चाहता हूँ। मैं उन लोगोंसे बिछुड़कर रहना नहीं चाहता।"

यह सुन, इन्द्र उन्हें दूसरी ओर ले चले। अपने भाइयोंसे मिलनेकी आशासे युधिष्ठिरका चित्त प्रसन्न हो गया।

स्वर्गारोहण-पर्व

युधिष्ठिरका नरक-दर्शन।

जब युधिष्ठिरने स्वर्गमें एक जगह जाकर देखा, कि दुर्योधन देवताओंके बीचमें बैठा आनन्द भोग कर रहा है और भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा कर्ण आदिका वहाँ कहीं पता नहीं है, तब युधिष्ठिरके हृदयमें क्रोधका उद्रेक हुआ। वे देवताओंसे कहने लगे,—"जिसके कारण मैंने अपने भाई, पुत्र, आत्मीय-स्वजन और गुरु आदिके साथ-ही-साथ पृथ्वी-भरका विध्वंस कर डाला, उसके साथ मैं इस स्वर्गमें भी रहना नहीं चाहता।"

यह सुन, देवर्षि नारदने उन्हें मनुष्यों जैसा रोषादि नहीं करनेका उपदेश दिया और कहा,—"दुर्योधनको सम्मुख-समरमें प्राण-त्याग करनेके कारणही स्वर्ग मिला है।"

यह सुनकर युधिष्ठिर बोले,—"हे देव! मुझे यहाँ कर्ण भी तो नहीं देख पड़ते? जिन राजाओंने हमारे लिये सम्मुख-समरमें लड़कर प्राण त्यागे थे, वे सब कहाँ हैं? उनके लिये मेरा मन बड़ा व्याकुल हो रहा है। मैं अपने समस्त आत्मीयोंको देखना चाहता हूँ। जहाँ वे लोग नहीं, वहाँ रहनेसे मुझे सुख नहीं मिल सकता। जहाँ वे हैं, वही स्थान मेरे लिये स्वर्ग है।"

नारदजीने कहा,—"यदि आप उनके पास चलना चाहते हों, तो

आनन्द-पूर्वक चलिये। हमें देवराज इन्द्रने आज्ञा दी है, कि धर्मराज जो कुछ चाहें, उसे हमलोग तत्काल कर दें।"

यह कह, उन्होंने एक देव-दूतको बुलाकर कहा,—"हे दूत! तुम धर्मराजको लेजाकर इनके कुटुम्बियोंसे मिला दो।"

देव-दूत धर्मराज युधिष्ठिरको रास्ता दिखलाता हुआ ले चला। जिस रास्तेसे होकर वे गये, वह बड़ाही भयानक था। उस रास्तेसे पापी लोगही आया-जाया करते थे। सड़कपर रक्त-मांसकी कीच थी; जगह-ब-जगह मनुष्योंकी हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। कीड़ों और मकोड़ों, मक्खियों और मच्छड़ोंसे सारा रास्ता भरा हुआ था। उल्लू बोल रहे थे; झुण्ड-के-झुण्ड गीध और चीलें मँडरा रही थीं। पर्वताकार प्रेत मनुष्योंकी खोपड़ियोंसे खेल रहे थे। पासमेंही जो नदी बह रही थी, उसके पानीसे आगकी लपटें निकल रही थीं। इधर-उधर जो पेड़-पौधे थे; उनके पत्ते छुरोंकी भाँति तेज़ धार वाले थे। चारों ओर लोहेकी कढ़ाइयोंमें तेल खौल रहा था और उनमें पापी मनुष्योंको डाल-डालकर भूना जा रहा था!

ऐसे भयानक स्थानको देखकर युधिष्ठिर बड़े घबराये और उस दूतसे पूछने लगे,—"हे देव-दूत! हमें अभी और कितनी दूरतक चलना पड़ेगा? हमारे भाई लोग कहाँ हैं?"

दूतने कहा,—"महाराज! चलते समय देवताओंने मुझसे कहा था, कि धर्मराज श्रान्त होकर जहाँसे लौटना चाहें, वहींसे उन्हें लौटा लाना। यदि आप इसके आगे जाना नहीं चाहते हों, तो सानन्द पीछे लौट सकते हैं।"

देव-दूतकी यह बात सुनकर युधिष्ठिर तत्काल वहाँसे पीछे लौटनेके लिये तैयार हो गये।

युधिष्ठिरके पीछे लौटनेके लिये तैयार होतेही चारों ओरसे करुणा-

भरी आवाज़ें आने लगीं। एकस्वरसे वहुतसे लोग बोल उठे,—"महाराज! कृपाकर क्षणभर और ठहरिये। आपके शरीरकी पवित्र वायुसे हमें बड़ा सुख मिल रहा है। हमारे सारे क्लेश दूर होरहे हैं।"

युधिष्ठिर, उन आवाज़ोंको सुनतेही वहाँ खड़े हो गये और आश्चर्य्य-भरी दृष्टिसे चारों ओर देखने लगे। किन्तु कहीं किसीको न देख, वे बोले,—"ऐ कहनेवालो! तुमलोग कौन हो?"

इसपर चारों ओरसे फिर आवाज़ें आयीं,—"मैं कर्ण हूँ", "मैं भीम हूँ" "मैं अर्जुन हूँ", "मैं नकुल हूँ", "मैं सहदेव हूँ", "मैं द्रौपदी हूँ", "हम द्रौपदीके पुत्र हैं।"—इत्यादि, इत्यादि।

इतना सुनतेही युधिष्ठिर मन-ही-मन बड़े सन्तप्त हुए और देवदूतसे बोले—"महाशय! अब आप अपने स्थानपर चले जाइये। मैं स्वर्गकी अपेक्षा यहीं रहनाही अच्छा समझता हूँ। देवता लोग बड़ेही अविचारी हैं। वे न्याय करना नहीं जानते।"

देव-दूत वहाँसे चला गया और उसने देवराजके पास जाकर सारा हाल कह सुनाया। सब हाल सुनकर इन्द्र बहुतसे देवताओंके साथ युधिष्ठिरके पास आये। उनके आतेही वह काल्पनिक नरक अदृश्य हो गया! दिव्य-प्रकाश और सुन्दर गन्धसे चारों दिशाएँ आमोदित हो उठीं। यह देख, युधिष्ठिर अत्यन्त विस्मित हुए।

युधिष्ठिरका स्वर्ग-गमन।

युधिष्ठिरको विस्मित होते देख,देवराज इन्द्रने कहा,—"धर्मराज! क्या सोच रहे हैं? चलिये अब आप स्वर्गमें चलकर अपने भाई-बन्धुओंसे मिलिये। कर्णादि सब लोग इस समय स्वर्गमें पहुँच गये हैं। स्वर्ग-सभाका यह नियम है, कि यहाँ आकर सब राजाओंको थोड़ी देरके लिये नरक देखना पड़ता है। साथही

जिनके पुण्य थोड़े और पाप अधिक होते हैं, वे पहले स्वर्ग भोगते हैं और बादको नरक जाते हैं। इसका प्रमाण दुर्योधन है। और जिनके पाप कम तथा पुण्य अधिक होते हैं, वे पहले नरक और बादको स्वर्ग भोगते हैं ; इसके प्रमाण आपलोग हैं। आपने युद्धमें गुरु-पुत्र अश्वत्थामाकी मृत्युका झूठा शोर मचाकर द्रोणको छला था। जीवन-भरमें वही एक पाप करनेके कारण आपको यहाँतक आना पड़ा। अब आप स्वर्ग चलिये, वहाँ सबलोग आपको देखनेके लिये उतावले होरहे हैं।"

इसके बाद देवराज इन्द्रके कहनेसे युधिष्ठिरने मन्दाकिनीमें स्नानकर मानव-देह त्याग दी और दिव्य-देह धारणकर स्वर्गमें अपने समस्त इष्ट-मित्रों तथा परिजनोंसे जा मिले !

'वर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें
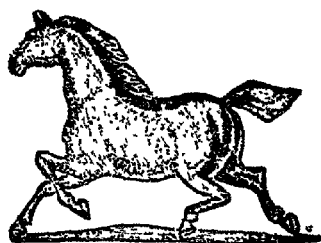
सावित्री-सत्यवान

यह स्त्री-पुरुषों, बालक-बालिकाओं और बड़े-बूढ़ोंके पढ़ने योग्य अपूर्व, शिक्षाप्रद और सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न है, क्योंकि इसमें सती-शिरोमणि महारानी सावित्रीके अपूर्व पातिव्रत-धर्म्मका ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, कि जिसके आगे स्वयं यमराजको भी हार माननी पड़ी थी और सावित्रीने अपने पतिको मौतके पंजेसे छुड़ा लिया था। रंग-बिरंग सुन्दर-सुन्दर १३ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥) रु०, रङ्गीन जिल्द १॥।) रुपया और सुनहरी रेशमी जिल्द २) रुपया।

नल-दमयन्ती

इसमें पतिव्रता-शिरोमणि 'दमयन्ती' और परम धार्म्मिक 'राजा नल' की शिक्षाप्रद, हृदय-ग्राहिणी कथा हरएक बालक, वृद्ध, वनिताके पढ़ने योग्य है। क्योंकि इसमें जुएका परिणाम और पातिव्रत-धर्मकी महिमाका बड़ाही सुन्दर चित्र खींचा गया है। साथही १३ बहुरंग चित्र इस ढंगसे लगाये गये हैं, कि खाली चित्रोंको देखकरही सारी कथा समझमें आ जाती है। कन्या-पाठशालाओंमें पढ़ानेके लिये यह पुस्तक सर्वश्रेष्ठ समझी गयी है। दाम १॥), रंगीन जिल्द १॥।), और सुनहरी रेशमी जिल्द २) रुपया।

पता--आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

महारानी सीता

'सीता' हिन्दू बालक-बालिकाओं और गृहलक्ष्मियोंके पढ़ने योग्य सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न है ; क्योंकि यह सारी रामायण-का सार, उत्तमोत्तम शिक्षाओंका भाण्डार और हिन्दी साहित्यका सुललित शृङ्गार है। इसके पढ़नेसे एकही साथ इतिहास, पुराण, काव्य, नाटक, उपन्यास और नीति-शास्त्रका आनन्द मिलता है। 'सीता' राजनीति, धर्म्मनीति, समाज, नीति और गार्हस्थ्य नीतिकी कुंजी है। इसके पढ़नेसे घर-घरमें सुख-शान्तिका विस्तार होता है। दाम सिर्फ २॥ रङ्गीन जिल्द ३॥ और सुनहरी रेशमी जिल्द ३।

शकुन्तला

"शकुन्तला" संसार-प्रसिद्ध महाकवि कालिदासके सर्वोत्तम संस्कृत नाटकका उपाख्यान-रूपमें हिन्दी-अनुवाद है। संसारभरकी भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं और इसकी रचनाके आगे सारे सभ्यजगत्को सिर झुकाना पड़ा है। 'शकुन्तला' दाम्पत्य-स्नेह, नारी-कर्तव्य, सती-धर्म और विश्वप्रेमका जग-मगाता हुआ रत्न है। १२ रङ्गीन चित्र भी हैं, जिन्हें देखकर पौराणिक-कालकी समस्त घटनाएं आँखोंके सामने आजाती हैं। दाम २) रंगीन जिल्द २।), रेशमी जिल्द ३॥)

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

सती-चिन्ता

"चिन्ता" देव-लोक और मर्त्यलोकका प्रत्यक्ष चित्र दिखलानेवाली बड़ीही शिक्षाप्रद, सुललित कथा है। इसमें सती-शिरोमणि 'चिन्ता' और न्याय-परायण महाराजा 'श्रीवत्स' की पुण्यमय कथा लिखी गयी है, जिसको पढ़कर सुखके समय आनन्द और दुःखके समय शान्ति मिलती है। सती-चिन्ताकी अद्भुत कथा प्रत्येक पतिव्रता बहू-बेटी और कुमारी कन्याओंके पढ़ने योग्य है। रंग-बिरंगे ११ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥) रु०, रंगीन जिल्द १॥।), रेशमी जिल्द २) रुपया।

सती-पार्वती

इसमें शंकर-प्रिया, गणेश-जननी, सती-शिरोमणि भगवती 'सती-पार्वती' के दोनों अवतारोंकी कथा बड़ीही सरल, सरस, सुन्दर और सुमधुर भाषामें लिखी गयी है। साथही सती-स्वयंवर, दक्ष-यज्ञ, सतीका शरीरत्याग, पार्वतीकी तपस्या, मदन-दहन, शिव-पार्वतीका विवाह और गणेश तथा कार्तिकेयकी उत्पत्ति आदिके रंग-बिरंगे १२ चित्र भी हैं। कुमारी कन्याओं और कुल वधुओंके पढ़ने योग्य है। दाम सिर्फ २) रु०, रंगीन जिल्द २।) रु० और सुनहरी रेशमी जिल्द २॥) रुपया।

सती-बेहुला

इसमें बङ्गाल-प्रान्तकी सर्वश्रेष्ठ सती 'बेहुला' की बड़ीही शिक्षाप्रद पवित्र कथा लिखी गयी है, जिसने पतिके मर जानेपर भी उसे न छोड़ा, बल्कि उसके सड़े-गले माँसको धो-धोकर उसकी हड्डियाँ बटोरती गयी और अन्तमें सशरीर स्वर्गमें जाकर अपने पतिदेव और छः जेठोंको भी जिला लायी और अपनी छहों विधवा जेठानियोंको पुनः सधवा बना दिया। रंग-बिरंगे १३ चित्र भी दिये हैं। दाम २।), रङ्गीन जिल्द २॥), रेशमी जिल्द ३॥) रु०

—०—
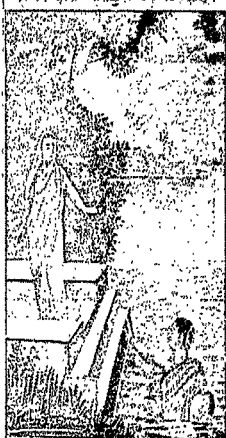
हरिश्चन्द्र-शैव्या

इसमें क्षत्रिय-कुल-तिलक, धार्मिक-प्रवर, सत्यवादी, महाराजा "हरिश्चन्द्र" और उनकी धर्म्मपत्नी, सती-शिरोमणि 'शैव्या' का बड़ाही मनोहर, पवित्र चरित्र लिखा गया है। महाराजा हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्याकी जन्मसे लेकर अन्त तककी बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी, सभी घटनाएँ लिखी गयी हैं। रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर १५ चित्र भी दिये गये हैं। पतिव्रता नारियोंको यह कथा अवश्य पढ़नी चाहिये। दाम सिर्फ २॥); रङ्गीन जिल्द २॥।), रेशमी जिल्द ३) रुपया।

—०—

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम सचित्र पुस्तकें

सती सुकन्या

सती, सुकन्याका जीवन-चरित्र हिन्दू-कन्याओंके सौभाग्यकी सामग्री और आदर-की वस्तु है; क्योंकि राजकुमारी होकर भी उस देवीने घटनावश एक कुरूप, अन्धे, निर्धन और मृत्यु-शय्या-शायी वनवासी बूढ़ेसे विवाहकर, उसे अपने अपूर्व पातिव्रत्यके प्रतापसे २० वर्षका सुन्दर नौजवान बना लिया था और इन्द्रके वज्रको अधरमें लटकाकर संसारको सती-धर्मका अनूठा चमत्कार दिखा दिया था। सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे ८ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १।), रंगीन जिल्द १॥) रु०, रेशमी जिल्द १॥।) रुपया।

महासती मदालसा

यदि आप द्रौपदीकी वीर रमणी, सावित्रीसी पतिप्राणा नारी दमयन्ती-सी विपद्-सञ्चरी स्त्री, मैत्रेयीसी ब्रह्मवादिनी महिला और सीतासी सती देवीका अनुपम आदर्श एकही रमणी-रत्नमें देखना चाहते हैं, तो "महासती मदालसा" अवश्य पढ़िये। रंग-बिरंगे २० चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक-की शोभा सौगुनी बढ़ गयी है। यह पुस्तक उपन्यासकी तरह रोचक, धर्म्म-शास्त्रकी तरह उपादेय, कर्म्मकाण्डकी तरह आवश्यक और नीति-शास्त्रकी तरह पठनीय है। दाम १॥।), रंगीन जिल्द २), रेशमी जिल्द २।) रुपया।

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'वर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें
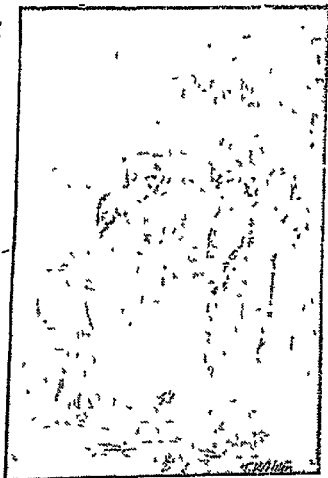
श्रीराम-चरित्र

इस शुद्ध 'श्रीराम-चरित्र' में 'वाल्मीकि-रामायणकी सम्पूर्ण कथा बड़ीही सरल, सुन्दर और सुमधुर भाषामें, उपन्यासके ढंगपर लिखी गयी है। एकबार इसे पढ़ लेनेसे फिर किसी भी रामायणके पढ़नेकी ज़रूरत नहीं रहती; क्योंकि इसमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका जन्मसे लेकर लीला-सम्वरण तकका पूरा जीवन-चरित्र लिखा गया है। रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर ३२ चित्र भी दिये गये हैं। दाम रंगीन जि० ५॥), रेशमी जि० ६)

श्रीकृष्ण-चरित्र

इसमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र हिन्दीकी सरल, सरस, सुन्दर और प्राञ्जल भाषामें, उपन्यासके ढङ्ग पर लिखा गया है। महाभारतके युद्धका वर्णन और श्री मद्भगद्गीताके अठारहों अध्यायोंका निचोड़ भी बड़े अनूठे ढङ्गसे दिया है। इसमें श्रीकृष्णचन्द्रके जीवनकी छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी कोई भी घटना छूटने नहीं पायी है। सुन्दर-सुन्दर ३२ चित्र भी दिये गये हैं। इतना होनेपर भी दाम सिर्फ ४), रङ्गीन जिल्द ४।), सुनहरी रेशमी जिल्द ४॥) रु०

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।
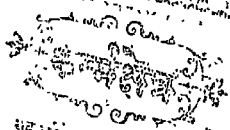
यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास, सामाजिक कुरीतियोंका सुधार, सेवा-धर्मका प्रचार, गार्हस्थ्य-जीवनका चमत्कार, आदर्श-चरित्रोंका भाण्डार और उत्तमोत्तम शिक्षाओंका अनुपम आगार, ...के चुने हुए उच्च आदर्शोंपर, सरल, सुन्दर और मनोमुग्धकर भाषामें लिखा गया है। इसे एकबार आद्योपान्त पढ़ लेनेसे मनुष्यकी अन्तरात्मा पवित्र हो जाती है। रंगबिरंगे ११ चित्र भी दिये हैं। मूल्य ३), रंगीन जिल्द ३।), रेशमी जिल्द ३॥)

सचित्र महाभारत

"महाभारत" का इतना सरल, सुन्दर, सजीला, सस्ता और मनमोहक संस्करण अबतक हिन्दीमें दूसरा नहीं छपा। हिन्दीके प्रायः सभी सुप्रसिद्ध समाचार-पत्रोंने मुक्त-कण्ठसे इसकी प्रशंसा की है और यही कारण है, कि आजकल बहुतसे बड़े-बड़े स्कूलोंमें यह कोर्सकी भाँति पढ़ाया जाने लगा है। इसमें सुन्दर-सुन्दर २५ चित्र लगाये गये हैं, जिन्हें देखनेसे 'महाभारत' का ज़माना 'बायस्कोप' की भाँति आँखोंके सामने नाचने लगता है। दाम रंगीन जिल्द सिर्फ ३), सुनहरी रेशमी जिल्द ३।) रु०

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।
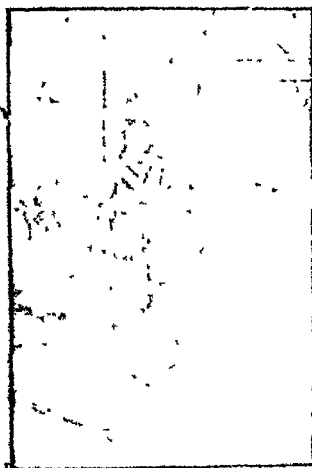
वीर-पञ्चरत्न

इसमें भारतके प्राचीन वीर-वीराङ्गनाओंकी बड़ीही शिक्षाप्रद २५वीर-कहानियां खड़ी बोलीकी जोशीली कवितामें लिखी गयी हैं, जिन्हें पढ़कर भुजाएँ फड़कने लगती हैं और भारतकी प्राचीन कीर्त्ति आँखोंके सामने नाचने लगती है। हिन्दीके सबही नामी-नामी समाचार-पत्रोंने इसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठसे की है। इसमें सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे २५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ २॥) रु० रङ्गीन जिल्द ३), रेशमी जिल्द ३।) रु०

—०—

राजर्षि प्रह्लाद

भक्त-शिरोमणि राजर्षि प्रह्लादके हिन्दीमें कई छोटे-मोटे जीवन-चरित्र हैं, पर वे सभी अधूरे हैं, किन्तु हमारी इस पुस्तकमें प्रह्लादके जन्मसे लेकर, उनके बाल्यकाल, यौवनकाल और वार्द्धक्यकाल तककी सभी अद्भुत और भक्ति-रससे चुहचुहाती हुई मनोरंजक घटनाएँ, औपन्यासिक ढंगसे, काव्यसे भी अधिक मधुर भाषामें लिखी गई हैं। रङ्ग-बिरंगे १५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ २।), रङ्गीन जिल्द २॥) और रेशमी जिल्द २॥।) रु०

—०—

पता—आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

वीर अर्जुन

इसमें पाण्डव-तनय, कृष्ण-सखा, महावीर अर्जुनका, आदिसे अन्ततकका, सम्पूर्ण जीवन-चरित्र तथा उनके छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सब युद्धोंका हाल, बड़े विस्तारके साथ, सरल, सुन्दर और मनोमुग्धकर भाषामें, उपन्यासके ढङ्गपर, बड़ीही रोचकतासे लिखा गया है। इस महा पराक्रमी वीरकी वीरता और साहसको पढ़ते-पढ़ते पाठकोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती। रङ्ग-बिरंगे, सुन्दर-सुन्दर २१ चित्र भी दिये गये हैं। दाम ३॥), रंगीन जिल्द ३॥।) और रेशमी जिल्द ४) रु०

वीर-अभिमन्यु

इसमें अर्जुनके पुत्र महावीर अभिमन्युका बड़ाही सुन्दर जीवन-चरित्र और महाभारतके युद्धका विषद वर्णन लिखा गया है। रंग-बिरंगे कई चित्र भी दिये गये हैं। दाम १) रुपया।

बालक श्रीकृष्ण।

इसमें श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका चित्र बड़ीही सुन्दरताके साथ खींचा गया है और श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर "कंस-वध" तककी पूरी कथा बड़ी ही सरल, सुन्दर और ओजस्विनी भाषामें लिखी गयी है। रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर ६ चित्र भी दिये गये हैं। यह पुस्तक बालक-बालिकाओंको उपहारमें देने योग्य है। दाम १।) रंगीन जिल्द, १॥) रेशमी जिल्द १॥।) रुपया।

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

गान्धी-गौरव

यह संसारके सर्वमान्य महापुरुष महात्मा गान्धीका सविस्तृत जीवन-चरित्र है। इसमें उनके जन्मसे लेकर आजतकको समस्त घटनायें, सत्याग्रहका इतिहास, वेङ्कावरेन्ज, चम्पारनका उद्धार, पंजाबका हत्याकाण्ड, खिलाफतकी समस्या, कांग्रेसकी विजय और असहयोगकी उत्पत्तिका हाल विस्तारपूर्वक लिखा गया है। २२ चित्र भी हैं। दाम ३), रङ्गीन जिल्द ३।), रेशमी जिल्द ३॥) रुपया।

लोकमान्य तिलक

इसमें भगवान तिलकका सम्पूर्ण जीवन चरित्र लिखा गया है। ४ चित्र भी हैं। दाम १), सजिल्द १॥) रु०

गान्धी-गीता

जिस प्रकार "श्रीमद्भगवद्-गीता"में भगवान् श्रीकृष्णने मोहाच्छन्न अर्जुनको उपदेश दिया था, उसी प्रकार "गान्धी-गीता"में महात्मा गान्धीने निराश और निर्बल भारतको राजनीतिक-प्रगति, विश्व प्रेम, देश-भक्ति, स्वदेशी-प्रचार, स्वराज्य-प्राप्ति, अहिंसा और असहयोगके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तरके ढङ्गपर बड़ेही महत्त्वपूर्ण अमूल्य उपदेश दिये हैं। सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे कई चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य २), रङ्गीन जिल्द २।) रेशमी जिल्द २॥)

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

'बर्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें
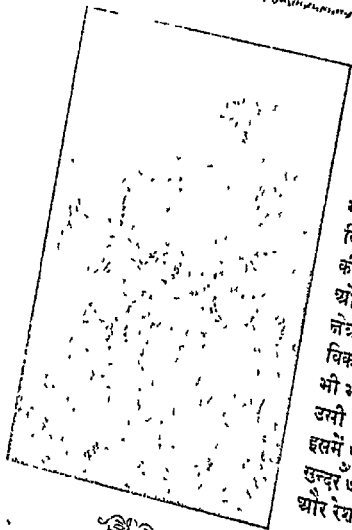
शोणित-तर्पण

सन् १८५७ ई० के जिस भयानक गदर (बलवे) ने सारे भारतवर्षमें प्रचंड विद्रोहाग्नि फैला दी थी, जिस गदर-की भीषणताने दिल्ली, कानपुर, मेरठ और काशी आदिको सुविशाल समर-क्षेत्रमें परिणत कर दिया था, जिसकी विकट हुंकारसे सुदूर-व्यापी इङ्गलैंडमें भी भयानक हलचल मच गयी थी, उसी गदर या "सिपाही-विद्रोह" का इसमें पूरा-पूरा हाल दिया है। सुन्दर सुन्दर ७ चित्र भी दिये गये हैं। दाम २) और रेशमी सुनहरी जिल्द २॥) रु०।

पंजाब-हत्याकाण्ड

इसमें पंजाबका पिछला इतिहास, सर माइकेल ओडायरका जुलमी शासन, रौलेट बिलपर देशको नाराजी, नौकर-शाहोकी स्वेच्छाचारिता, सत्याग्रह-संग्राम, पंजाबी नेताओंकी गिरफ्तारी, दंगोंका असली स्वरूप, माशललाकी घोषणा, जलियानवाला बागका भीषण हत्या-काण्ड, जङ्गी मोटरों और हवाई जहाजोंके 'बम' बरसानेका पूरा हाल दिया है। अत्याचारी घटनाओंके २५ चित्र भी हैं। तिसपर भी इस ६०० पृष्ठवाले बड़े ग्रन्थका दाम १॥।), रङ्गीन जिल्द २), रेशमी २॥),

पता—आर० एल० बर्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

इसमें वीर-शिरोमणि महाराणा राजसिंह और सम्राट औरङ्गजेबके उस भीषण महायुद्धका वर्णन है, जिसमें महाराणाने मुट्ठी भर क्षत्रिय वीरोंकी सहायतासे सम्राट औरङ्गजेबकी विराट मुगल-वाहिनीको परास्तकर 'रूपनगर' की राज-कन्या "चञ्चल-कुमारी" की धर्म-रक्षा की थी। इतिहास-प्रेमियों-को इसे अवश्यही पढ़ना चाहिये। ६ रङ्गीन चित्र भी हैं, दाम २), रंगीन जिल्द २।), रेशमी जिल्द २॥) रुपया।

—०—

यदि आप राठौर-वीर 'दुर्गादास' और सम्राट औरङ्गजेबके इतिहास-प्रसिद्ध भीषण संग्रामका रसास्वादन करना चाहते हैं, "अरावली उपत्यका" में होनेवाले लक्षाधिक दुर्दान्त मुसलमानों और क्षत्रिय वीरोंका घोर संग्राम देखा चाहते हैं, वीर शिरोमणि अमरसिंह, काला-पहाड़ आदि मुट्ठीभर क्षत्रिय वीरोंका आश्चर्य-जनकयुद्ध दृष्टिगोचर किया चाहते हैं, तो इसे ज़रूर पढ़िये, ५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥) और सुनहरी रेशमी जिल्द २) रुपया।

'बर्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

कमालपाशा

अगर आप इस्लाम-धर्मकी उत्पत्ति, पैगम्बर मुहम्मद साहबका जन्म-वृत्तान्त, तुर्क-साम्राज्यका इतिहास और टर्कीके वर्तमान भाग्य-विधाता, वीर-केशरी मुस्तफा कमाल पाशाका अपूर्व जीवन-चरित्र पढ़ना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढ़िये। ऐसी विचित्र पुस्तक हिन्दीमें आजतक नहीं छपी है। रंग-बिरंगे कई चित्र भी हैं। दाम १॥, सुनहरी रेशमी जिल्द १॥।), रुपया।

नादिरशाह

मुसलमान शासकोंकी अत्याचार-पूर्ण शासन-नीतिका भीषण दृश्य! भारतके गारत होनेका ज्वलन्त इतिहास! आर्य-वीरोंकी वीरताका जीता-जागता चित्र! यह पुस्तक नवीन युगके नव युवकोंके पढ़ने लायक सर्वोत्तम सामग्री तथा उद्योग और परिश्रमके सुनहले परिणामोंकी जग मगाती हुई ज्योति है। इस यवन-वीरकी विचित्र वीरता पढ़ते पढ़ते पाठक विस्मयसे अवाक हो जायेंगे। साथही सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम २), रेशमी जिल्द २॥) रु०

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

सुहराब रुस्तम

इसमें संसारके सर्वश्रेष्ठ पहलवान 'रुस्तम' और उसके महा बलवान् पुत्र सुहराबका पूरा जीवन-चरित्र, ईरान और तूरानकी बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंका हाल और बाप-बेटेका जगत् प्रसिद्ध भीषण संग्राम बड़ी दिलचस्पीके साथ लिखा गया है। यदि आप रुस्तम पहलवानके बड़े-बड़े अनूठे और आश्चर्यजनक कामोंका हाल तथा उस ज़मानेके बादशाहोंका इतिहास जानना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढ़ें। रंग-बिरंगे, सुन्दर-सुन्दर ६ चित्र भी हैं। दाम १॥, रेशमी जिल्द २) रुपया।

मुस्लिम-महिला-रत्न

मुस्लिम-महिला-रत्न सुन्दरियोंका स्वराज्य, अप्सराओंका अखाड़ा, वीरांगनाओंकी रंगभूमि, सतियोंका समाज और भारतीय मुसलमान ललनाओंका लील-निकेतन है, इसमें निम्नलिखित १२ बेगमोंके बड़ेही अनूठे चरित्र लिखे गये हैं:—(१) रज़िया बेगम (२) बीदरकी बेगम (३) गुलशन, (४) रूपवती बेगम (५) मल्काचांद बीबी (६) नूरजहाँ (७) जहान आरा (८) रौशनआरा (९) नज़ीरुन्निसा (१०) फूलजानी बेगम (११) जेबुन्निसा बेगम (१२) लुत्फुन्निसा बेगम। १२ चित्र भी हैं। दाम २।), रंगीन जिल्द २॥), रेशमी जिल्द २॥।)

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'[illegible] प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें
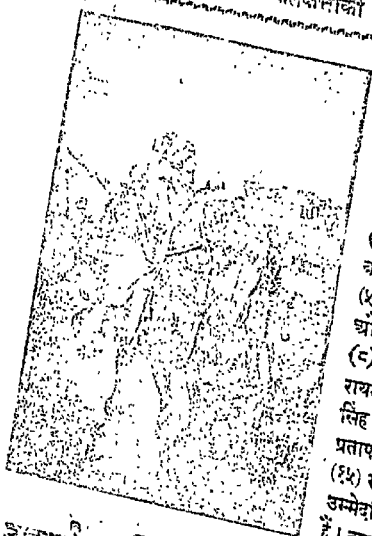
वीर-चरितावली

इसमें १६ वीर-वीरांगनाओंकी अपूर्व वीर-कहानियां दी गयी हैं। (१) रानी दुर्गावती (२) रानी लक्ष्मी-बाई (३) जवाहर बाई (४) कर्मदेवी (५) वीरधात्री पन्ना (६) वीर-बालक और वीर-नारी (७) राजकुमार चण्ड (८) पृथ्वीराज (९) बादलचन्द (१०) रायमल (११) सिक्ख-वीर रणजीत-सिंह (१२) हम्मीर (१३) महाराणा प्रतापसिंह (१४) छत्रपति शिवाजी (१५) राणा संग्रामसिंह (१६) राजर्षि उम्मेदसिंह। रंग-बिरंगे कई चित्र भी हैं। दाम १), रेशमी जिल्द १॥) रु०

आर्य-महिलारत्न

इसमें भारतकी निम्नलिखित १३ वीर क्षत्राणियोंकी वीरता-पूर्ण कहानियाँ बड़ी सुन्दरतासे लिखी गयी हैं:—(१) मीनल देवी, (२) वीरमती, (३) विद्युल्लता, (४) जीजीबाई (५) रानी सारन्धा, (६) महारानी प्रभावती, (७) हाड़ारानी, (८) रानी जयमती, (९) ताईबाई, (१०) रानी साहब कुँवरि (११) कृष्णा-कुमारी, (१२) महारानी ज़िन्दा (१३) महारानी लक्ष्मीबाई। साथही रंग-बिरंगे सुन्दर सुन्दर १२ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सुनहरी २) रेशमी जिल्द २॥) रुपया

पता—आर० एल० बर्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।
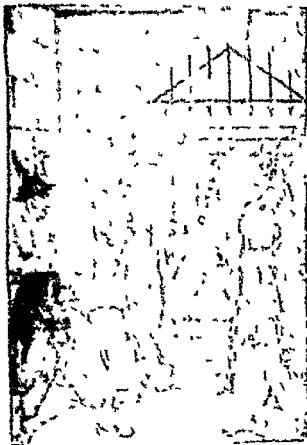
दुर्गादास, नाटक १)

यह प्रसिद्ध नाटक सब नाटकोंका "मुकुट-मणि" है। जिस समय यह कलकत्तेके स्टेजों पर खेला जाता था, उस समय दर्शकों को बैठने की जगह नहीं मिलती थी। इसमें जोधपुरके प्रसिद्ध सेनापति, वीर-केशरी 'दुर्गादास', सम्राट औरंगजेब, महाराणा राजसिंह, कुमार भीमसिंह और शिवाजीके पुत्र 'शम्भाजी' प्रभृतिके इतिहास प्रसिद्ध भीषण युद्धों-का वर्णन बड़ीही ओजस्विनी भाषामें किया गया है। रंग बिरंगे ६ चित्र भी हैं। दाम १॥), रेशमी जिल्द २) रुपया।

भक्त सूरदास, नाटक

यह नाटक इतना सुन्दर, शिक्षाप्रद, भक्ति-रस-पूर्ण और हृदयग्राही है, कि इसे खेल-खेलकर कलकत्ता, बम्बई तथा पञ्जाबकी कितनी ही नाटक-कम्पनियाँ मालामाल हो गयी हैं। अबभी जब यह नाटक कलकत्तेके थियेटरोंमें खेला जाता है तब दर्शकोंको स्थान मिलना कठिन हो जाता है। महात्मा सूरदास 'चिन्तामणि' वेश्याके प्रेममें पड़कर पहले कैसे दुराचारी थे और पीछे उसीके उपदेशसे कैसे सदाचारी बन गये, यही दृश्य इसमें दिखलाया गया है। ४ चित्र भी हैं। दाम १)

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'वर्म्मन प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

सरस्वतीचन्द्र

(सचित्र सामाजिक उपन्यास)

गुजराती-साहित्यके सर्वोत्तम सामाजिक उपन्यासका यह हिन्दी-अनुवाद है। भारतीय भाषाओंमें इसके जोड़का उपन्यास अबतक दूसरा नहीं छपा। बड़े-बड़े सभी मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रोंने इसकी प्रशंसा की है। आप इस एकही पुस्तकमें सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, ऐयारी, तिलस्म, जासूसी आदि सभी प्रकारके उपन्यासोंका आनन्द अनुभव करेंगे। रंग-बिरंगे कई चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ २ रु०, सुनहरी रेशमी जिल्द २॥) रु०

शीशमहल

(सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास)

यह बङ्ग-साहित्यके सुप्रसिद्ध औपन्यासिक बाबू हरिसाधन मुखोपाध्यायके 'शीश महल' नामक उपन्यासका हिन्दी-अनुवाद है और हिन्दीमें अब चौथीबार छपा है। गुजराती, मराठी, मद्रासी और उर्दू आदि भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं और ५० हज़ार प्रतियां हाथो-हाथ बिक गयी हैं। इसमें सम्राट अकबरके शासन-कालकी ऐसी-ऐसी विकट और हृदयग्राही घटनाएँ लिखी गयी हैं, कि पढ़कर दिल फड़क उठता है। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम २), रेशमी जिल्द २॥)

पता—आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

राष्ट्रीय नवरत्न
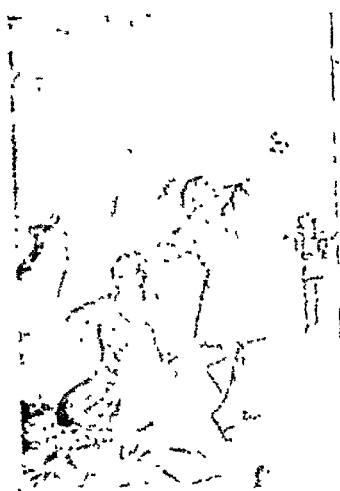
(९ सचित्र राष्ट्रीय कहानियाँ)

इसमें दिल्लीके बम-विभ्राटसे लेकर असहयोग आन्दोलन तककी उत्तमोत्तम ९ राष्ट्रीय कहानियाँ लिखी गयी हैं, जिन्हें पढ़कर आबाल-वृद्ध-वनिताके हृदय-समुद्रमें स्वदेश-प्रेमकी विमल तरंगें हिलोरें मारने लगती हैं। कहानियोंके नाम ये हैं— (१) दुःखिनीके आँसू, (२) राज-विद्रोह, (३) आत्म-विसर्जन, (४) वृन्दाका प्रसाद, (५) देशो चर्चा, (६) स्वयंसेवक, (७) कुसुमकी ससुराल, (८) उपाधित्याग, (९) परिवर्तन। रंग-बिरंगे ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १।), रेशमी जिल्द १॥)

(सचित्र राजनीतिक उपन्यास)

बंगला भाषाके प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक स्वर्गीय बाबू दामोदर मुखोपाध्यायके 'राज-भक्ति' नामक सर्वश्रेष्ठ राजनैतिक उपन्यासका यह सर्वाङ्ग सुन्दर हिन्दी-अनुवाद है। इसमें राजनैतिक षड्यन्त्र, राज-कर्मचारियोंके अत्याचार, प्रजाका विद्रोह, स्वर्गीय प्रेम, आदि सब कुछ भर दिया गया है। एक बार इसे हाथमें उठा लेने पर फिर छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती! रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम १॥), रेशमी जिल्द २) रु०

जासूसी-गुलदस्ता

इसमें—(१) कोकेनकी शीशी, (२) चोर या खूनी, (३) पुजारी बाबा, (४) अर्थलाभ, (५) प्रेम दीवानी, (६) प्यारे डाकू, (७) चमेली बाई, आदि ७ जासूसी उपन्यास हैं। दाम सिर्फ १)

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

साहसी सुन्दरी

या

समुद्री डाकू

यह उपन्यास लण्डनके सुविख्यात जासूस-सम्राट मिष्टर ब्लेक और समुद्री डाकुओंकी रानी, साहसी सुन्दरी अमेलियाके आश्चर्यजनक कार्य-कलापोंका खजाना है। सुन्दरी अमेलिया क्यों डाकू हुई और उसने कैसे-कैसे भयानक डाके डाले, तथा मि॰ ब्लेकने किस प्रकार उन डाकोंका पता लगाया, इसीका अनूठा हाल इसमें लिखा गया है। रंग-विरंगे ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥) रु॰, रेशमी जिल्द २।) रु॰।

सुन्दरी-डाकू

या

हीरेकी खान

इसमें सुन्दरी अमेलियाके ऐसे ऐसे भयानक समुद्री डाकोंका हाल लिखा गया है, कि जिसके कारण केवल अंगरेज-सरकार ही नहीं, बल्कि जर्मनी, फ्रान्स, इटली और अमेरिकाकी सरकारें भी घबड़ा उठी थीं। साथही कैनेडा देशकी एक बड़ी भारी हीरेकी खानका ऐसा रहस्य-जनक भेद खोला गया है, कि पढ़कर दांतों उंगली काटनी पड़ती है। रंग-विरंगे, सुन्दर-सुन्दर ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥), रेशमी जिल्द २।) रु॰।

पता—आर॰ एल॰ बर्म्मन एण्ड को॰, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम सचित्र पुस्तकें

टापूकी रानी

जिन लोगोंने 'मालती सुन्दरी' और 'सुन्दरी डाकू' नामक उपन्यास पढ़े हैं, उन्हें तो यह उपन्यास अवश्य ही पढ़ना चाहिये, परन्तु जिन्होंने उक्त दोनों उपन्यास नहीं पढ़े, उन्हें भी इसके पढ़नेसे विशेष आनन्द मिलेगा। इसमें सुन्दरी अमेलियाके, प्रशान्त महासागरमें, एक गुप्त टापूका आविष्कार करने और उसमें संसार भरके खूनी, चोर, डाकू आदिको बसाकर स्वयं उसकी रानी बननेका बड़ा ही मजेदार हाल लिखा गया है। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १।।।), रेशमी जिल्द २।) रुपया।

सुन्दरी अमेलिया

इस पुस्तकमें सुन्दरी अमेलियाने अपने तीसरे शत्रु, मंचेस्टरके सर्व प्रधान मिल-मालिक 'मार्टिमर डाउ' से कैसा भीषण बदला लिया, एक ही रातमें उसके मिलकी हजारों मशीनोंको किस प्रकार बर्बाद कर दिया और जासूस-सम्राट मिस्टर ब्लेकने किस चालाकीके साथ उसे गिरफ्तार कर ६ वर्षके लिये 'डेलमूर' नामक भीषण कारागारमें भिजवा दिया, इसीका बड़ाही मनोरंजक हाल लिखा गया है। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १।।।), रेशमी जिल्द २।) रु०।

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

'वर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी, सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

धन-कुबेर

या

अर्थ-पिशाच

इसमें सुन्दरी अमेलियाके 'डल-मूर' नामक कारागारसे भागने और अपने चौथे शत्रु, लण्डनके प्रसिद्ध धन-कुबेर, 'गगन केली'के सर्वस्व नाश करने, मिश्र देशके बेंकसे ४० हज़ार गिन्नियाँ उड़ाने, लण्डनमें हलचल मचाने और जासूस-सम्राट मि० ब्लेकके हाथों पुनः पकड़े जानेका बड़ाही भीषण हाल लिखा गया है। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥, रेशमी जिल्द २। रु०।
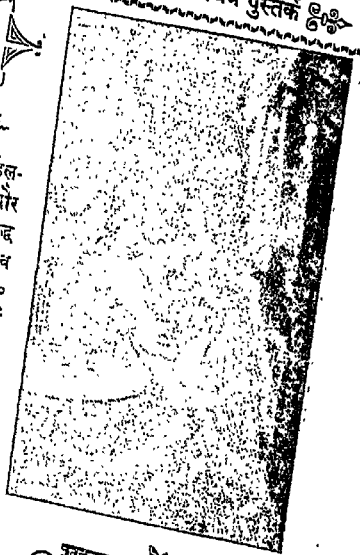
गुलाबमें काँटा

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

इसमें सुन्दरी अमेलियाके अपने प्रधान शत्रु, लण्डनकी पार्लियामेंटके सुविख्यात मन्त्री, 'कारफाक्स मोर्टन'को बर्बाद करने, बृटिश-सरकारका गुप्त खरीता चुराने और फ्रान्सकी राजधानी 'पैरिस'में जाकर हलचल मचानेका बड़ाही भीषण हाल लिखा गया है। जासूस-सम्राट मिस्टर ब्लेक और उनके चेले स्मिथकी आश्चर्यजनक जासूसियाँ भरी पड़ी हैं। सुन्दर-सुन्दर ५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥) रेशमी जिल्द २।) रुपया।

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

जर्मन-षड्यन्त्र

यूरोपीय महायुद्धके पहले जर्मनीमें अंगरेजोंके विरुद्ध एक भीषण षड्यन्त्र रचा जा रहा था और स्वयं जर्मन-सम्राट 'कैसर' एक ऐसे खूंखार जालका विस्तार कर रहे थे, कि जिसमें फँसकर सिर्फ अंगरेजही नहीं, सारा योरोप एक ही ग्रासमें उनके पेटमें चला जाता और किसीके कुछ न होता, परन्तु उसी भयानक जालको मि० ब्लेकने विचित्र युक्तियोंसे छिन्न-भिन्नकर जर्मनीकी समस्त आशाओंको धूलमें मिला दिया. यह पढ़कर दाँतों उंगली काटनी पड़ती। दाम १॥), रेशमी जिल्द २) रुपया।

जर्मन-जासूस

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

जर्मनी जैसा मज़बूत जासूसी विभाग संसार भरकी किसी सरकारके पास नहीं है। जर्मन-सम्राट 'कैसर'ने अपने जासूसोंका ऐसा सुन्दर सङ्गठन कर रखा था, कि उनको संसार भरकी गुप्तसे-गुप्त बातें झट मालूम हो जाती थीं। यूरोपीय महायुद्धके समय अंगरेज और जर्मन-जासूसोंमें कैसे-कैसे घात-प्रतिघात हुए, कैसी-कैसी चोटें चलीं और जासूस-सम्राट मि० ब्लेकने किस चालाकीसे उनकी सब चालें मिट्टीमें मिला दीं, यही बातें इसमें लिखी गयी है। दाम सिर्फ १॥) रु०, रेशमी जिल्द २) रु०

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें
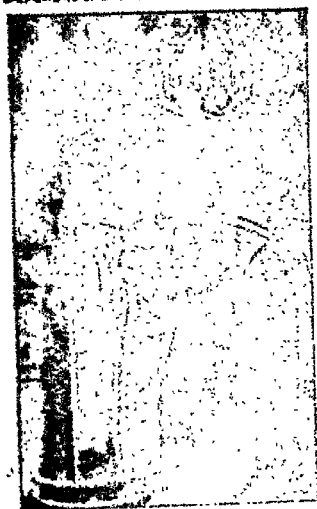
बोलशेविक-रहस्य

या

खूनका प्यासा

इटालियन बोलशेविकोंने इटलीमें कैसा भयानक अत्याचार मचा रखा था, राजा और प्रजा, दोनोंको कैसा तङ्ग कर रखा था और बड़े-बड़े पुलिस-अफसरों तथा जासूसोंकी जान कैसे संकटमें पड़ गयी थी; फिर जासूस-सम्राट मि० ब्लेकने कैसी-कैसी आफतोंका सामनाकर उनका भण्डा-फोड़ किया और उन्हें सजा दिलाई आदि बातोंका बड़ाही मजेदार हाल दिया गया है। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १॥।), रेशमी जिल्द २।) रुपए

कैदीकी करामात

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

इसमें कालेपानीके एक खूँखार कैदीकी बड़ीही विचित्र कहानी लिखी गयी है, जिसने जेलसे भागकर योरोप भरमें हलचल मचा दी थी और जिसे जासूस-सम्राट मि० ब्लेकने बड़ी-बड़ी मुसीबतोंसे गिरफ्तार किया था। पुस्तक बड़ीही मनोरंजक और चित्ताकर्षक है। विचित्र घटनापूर्ण सुन्दर-सुन्दर कई चित्र भी दिये गये हैं, जिससे पुस्तककी शोभा चौगुनी बढ़गई है। दाम १॥), रेशमी जिल्द २) रु०

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम सचित्र पुस्तकें

फिदाकिनी

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

इसमें विलायतकी एक ऐसी खूबसूरत, जवान, चालाक, दग़ाबाज़ और खूँखार औरतका हाल लिखा गया है, जिसने दर्जनों खून किये, सैकड़ों घर वाले और बोसियों लार्डों, पार्लियामेंटके मेम्बरों तथा बड़े-बड़े विद्वानोंको एक हाटमें खरीदा और दूसरीमें बेच दिया! तिसपर मजा यह कि पुलिस और जासूसोंके लाख कोशिश करने पर भी इसका बाल तक बाँका न हुआ और यह शैतानी अपना शैतानी चक्कर चलाती रही। रङ्ग-बिरङ्गे चित्र भी हैं। दाम १॥), रेशमी जिल्द २)

चीना-सुन्दरी

जासूस-सम्राट मिष्टर ब्लेकका किसी मामलेकी तहकीकातके लिये चीन जाना, वहाँ चीना डाकुओंसे घिरकर तकलीफ उठाना और भागकर जान बचाना, चीनके बड़े-बड़े भीषण भेदोंको खोलना और एक चीना सुन्दरीके अद्भुत रहस्य का उद्घाटन करना, एक चीना सरदार का लशकरमें जाकर विद्रोह मचाना और मिस्टर ब्लेक द्वारा पकड़े जाना। बाप, बेटेके खूनका भीषण दृश्य, आदि बहुतसी अनूठी घटनाएँ इसमें भरी हैं। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १॥) रु०, रेशमी जिल्द २) रुपया

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, २७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

चालाक चोर

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

इसमें विलायतके "वेट" नामक एक ऐसे भयानक चोरकी कार्रवाइयोंका हाल लिखा गया है, जो बड़े-बड़े धुरन्धर जासूसोंकी आँखोंमें धूल डाल, दिन-दहाड़े लाखोंका माल उड़ा लेता था। इसकी चोरियोंसे एक वार सारा इंगलंड दहल उठा था और लोग इसे ऐन्द्रजालिक चोर कहने लगे थे। जासूस-सम्राट मि० ब्लेकने इसे कईवार पकड़ा, परन्तु यह उनकी आँखोंमें धूल झोंककर साफ निकल भागा। कई चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥), रेशमी जिल्द २) रुपया।

डाक्टर साहब

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

यह उपन्यास 'चालाक चोर'का उपसंहार भाग है। इसमें 'वेट' नामक चोरकी गिरफ्तारी और लण्डनके विख्यात डाक्टर 'क्यू'की उस भीषण रसायन-विद्याका चमत्कार लिखा है, जिसके द्वारा वह जिन्देको 'मुर्दा' और मुर्देको 'जिन्दा' बना कर अपना मतलब गांठ लेता था! इस भयानक डाक्टरके गुप्त अत्याचारोंसे एकबार सारा योरोप काँप उठा था। अन्तमें जासूस-सम्राट मिष्टर ब्लेकने इसे गिरफ्तार कर फाँसी दिलवा दी! कई चित्र भी हैं। दाम १॥), सुनहरी रेशमी जिल्द २) रुपया।

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'वर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें
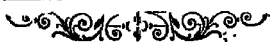
घटना-चक्र

यह उपन्यास घटनाका समुद्र, आश्चर्य का ख़ज़ाना, कौतुकका भण्डार और जासूसी करामातोंका आगार है। इसमें विलायती और भारतीय जासूसोंकी ऐसी अद्भुत जासूसियाँ लिखी गयी हैं; ऐसे-ऐसे विचित्र जासूसी हथकण्डे बताये गये हैं, ऐसी-ऐसी भीषण समुद्री लड़ाइयों के दृश्य दिखलाये गये हैं और बड़े-बड़े विलायती घरानों, लार्ड और लेडियोंके ऐसे-ऐसे गुप्त रहस्य खोले गये हैं, कि पढ़कर चकित रह जाना पड़ता है। कई चित्र भी दिये हैं। दाम २), रेशमी जिल्द २॥) रु०

शोणित चक्र
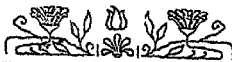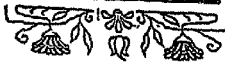
बम्बईके पासही 'गोआ' नामका एक विशाल नगर है। एक बार वहाँ डाकुओंका ऐसा आतंक फैला, कि कुछ दिनोंके लिये डाकूही वहाँके सर्वेसर्वा होगये। डाकू-सर्दार चिट्ठी पर खूनसे 'शोणित-चक्र' का निशान छाप, जिस रईसके पास जो लिख भेजता, उसे वही देना पड़ता। न देनेपर दूसरे ही दिन उसकी 'सर कटी लाश' सड़कों पर लोटती नज़र आती! अन्तमें जासूस 'दिनकरराव' ने किस बहादुरीसे 'शोणित-चक्र-सम्प्रदाय' का भण्डा फोड़ कर डाकू-दलको गिरफ्तार किया, यह पढ़कर दङ्ग रह जाना पड़ता है। अवश्य पढ़िये। दाम २), रेशमी जिल्द २॥) रुपया।

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

जासूसी कुत्ता

पाठक! हम दावेके साथ कहते हैं, कि आपने ऐसा अनूठा, आश्चर्य-जनक और मनोरंजक उपन्यास आजतक न पढ़ा होगा। इसमें 'प्राडो' नामक एक 'स्वामि-भक्त' कुत्तेने ऐसी-ऐसी अद्भुत जासूसियाँ खेली हैं, ऐसे बड़े-बड़े खून, डाके और चोरियोंका पता लगाया है, कि पढ़कर बुद्धि चकरा जाती है। आपने मनुष्य जासूसोंकी तो बड़ी-बड़ी जासूसियाँ पढ़ी होंगी, पर जरा इस कुत्तेकी जासूसी पढ़कर देखिये, कि इसने अपने मालिकके साथ कैसी वफादारी की है। ४ चित्र भी हैं। दाम १॥), रेशमी जिल्द २)

जासूसके घर खून

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

स्वर्ग जासूस-सम्राट मिष्टर ब्लेकके घरमें एक अनजान आदमीका खून कर खूनी भाग गया और मिष्टर ब्लेकको यह भी पता न लगा कि खून किसने किया! इस घटनाको लेकर लण्डन भरमें हलचल मच गयी। मारे शर्मके मिष्टर ब्लेकको मुँह दिखलाना दुश्वार हो गया। अन्तमें मिष्टर ब्लेकने किस बहादुरी, चालाकी और दूरन्देशीके साथ इस भयानक हत्याकाण्डका पता लगाया, कि सब लोग वाह-वाह करने लगे। दाम सिर्फ १॥) रु०, सुनहरी रेशमी जिल्द २) रुपया।

पता--आर० एल० वर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

जासूसी चक्कर

इसमें बम्बई-शहरके एक भयानक खून और लाख रुपयेकी चोरीका ऐसा अनूठा रहस्य लिखा गया है, कि जिसमें बड़े-बड़े चार जासूसोंको पद-पदपर विपत्ति और मौतका सामना करना पड़ा था। इसमें बम्बई शहर और पारसी-समाजके ऐसे-ऐसे अनूठे और आश्चर्यजनक भेद खोले गये हैं, कि पढ़कर दांतों उंगली काटनी पड़ती है। पांच चित्र हैं। यह उपन्यास ४ बार छपा और हाथों-हाथ बिक गया। दाम सिर्फ २॥) रेशमी जिल्द ३) रु०

डबल जासूस

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

यह उपन्यास घटनाका खज़ाना, कौतुकका आगार और जासूसी करामातोंका भण्डार है। इसमें कलकतिया चोरोंके तिलस्मी अड्डेका अद्भुत रहस्य, नावपर जासूस और चोरोंका भयानक संग्राम, कम्पनी-बागमें भीषण तमंचेबाजी, मुर्दा-घरमें बेनामी लाशका पाया जाना, असली और नकली जासूसोंका द्वन्द-युद्ध आदि पढ़कर आप दङ्ग रह जायेंगे। सुन्दर-सुन्दर ४ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥) रेशमी जिल्द २) रुपया।

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

भीषण डकैती

(सचित्र जासूसी उपन्यास)

इसमें बम्बई-प्रान्तक रेल-डकैतियों और 'मिस्टर रौटलेगड' नामक एक अमेरिकन जासूसकी विचित्र जासूसियोंका ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, कि एक बार पुस्तक उठा कर फिर छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। घटना-पर-घटना, दृश्य-पर-दृश्य इस प्रकारसे खिंचते चले आते हैं, मानों आंखोंके सामने बायस्कोपके फिलिम घूम रहे हों। रङ्ग-बिरङ्गे सुन्दर-सुन्दर कई चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥), रेशमी जिल्द २) रु०

लाल चिट्ठी

(सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास)

इसमें सम्राट-अकबरके शासन-काल-का एक ऐसा भीषण षड्यन्त्र लिखा गया है, जिसके कारण स्वयं सम्राट अकबर, राजा बीरबल और राज्यके प्रायः सभी बड़े-बड़े कर्म्मचारी घबरा उठे थे। "लाल चिट्ठी" का ऐसा हैरत अङ्गेज रहस्य खोला गया है, कि आप भी पढ़कर चकित, स्तम्भित और विमोहित हो जाइयेगा। सुन्दर-सुन्दर रङ्ग-बिरङ्गे ४ चित्र भी दिये गये हैं। दाम १॥।), रेशमी जिल्द २) रु०

'वर्म्मन प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

पीतलकी मूर्ति ।

(रहस्य-मय घटना-पूर्ण सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास)

यह उपन्यास संसारके सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक, "लण्डन-रहस्य" के सुविख्यात प्रणेता, स्वर्गीय मिष्टर जार्ज विलियम रेनाल्डसके लिखे "ब्रौंज़ स्टेच्यू" नामक उपन्यासका सर्वाङ्ग सुन्दर हिन्दी अनुवाद है। रेनाल्ड साहबके उपन्यासोंकी लाखों प्रतियाँ सालमें छपतीं और बिक जाती हैं। 'ब्रांज-स्टेच्यु' की भी इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच और लैटिन आदि भाषाओंमें लाखों प्रतियां छपीं और हाथों-हाथ बिक गयीं। हिन्दी-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। इसमें 'पीतल-की मूर्त्ति' नामक एक भयानक तिलस्मका अद्भुत रहस्य, रोमन-कैथलिक पादड़ियोंके भीषण अत्या-चार, प्रेग, बोहेमियां, टर्की, इल्डर महल और जर्मनीको घनघोर लड़ा-इयां, विद्रोही सर्दार 'ज़िटका' का अपूर्व वीरत्व, 'आयशा' और 'शैतानी' नामक रहस्यमयी रमणियोंके भीषण कार्य-कलाप, शैतान और आष्ट्रियाके सम्राट्का आश्चर्य जनक युद्ध, आदि बातें बड़ी खूबीसे लिखी गयी हैं। साथ ही रहस्यजनक घटना-पूर्ण सुन्दर सुन्दर ४० चित्र लगाकर पुस्तककी शोभा सौगुनी बढ़ा दीगयी है। बड़े-बड़े ५ भागोंमे पुस्तक खतम हुई है और पाँचों भागका दाम सिर्फ ७॥), तथा रेशमी जिल्द बँधीका ८॥) है।

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

महेन्द्रकुमार

[ऐयारी-तिलस्मका अनूठा उपन्यास]

ऐय्यारी और तिलस्मी खेलोंसे भरा हुआ, आश्चर्य व्यापारों और लोमहर्षण घटनाओंसे छया हुआ यह अनूठा उपन्यास पढ़नेके योग्य है। इसमें ऐसी-ऐसी ऐय्यारियाँ खेली गयी हैं, ऐसे-ऐसे तिलस्मात दिखलाये गये हैं, कि पाठकोंका खाना, पीना, तक भूल जाता है। पुस्तक बड़े-बड़े ६ भागोंमें समाप्त हुई है। दाम ६ भागोंका सिर्फ ५, रेशमी जिल्द ६) रु०

गुलबदन

प्रेम-रसका इससे अच्छा उपन्यास हिन्दीमें अबतक दूसरा नहीं छपा। दो-दो आदमियोंका गुलबदनकी चिताकमें जी-जानसे कोशिश करना, जमशेदका गुलबदनको उड़ा ले जाना, पुलका टूट जाना आदि बहुतसी बातें हैं। दाम १॥) रुपया।

महाराष्ट्र वीर

यदि आप महाराष्ट्र-कुल-भूषण छत्रपति शिवाजी और सम्राट औरङ्गजेबका इतिहास-प्रसिद्ध भीषण संग्राम देखना और औरङ्गजेबके दर्बारका गुप्त-रहस्य जानना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढ़िये। ३ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १) रुपया।

खूनी औरत

इसमें एक डाक्टरके मेसमेरिजम वा भौतिक विद्याका वर्णन ऐसी विचित्रतासे किया गया है, कि पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दाम १।), रेशमी जिल्द १॥।) रु०

पुतली-महल

[ऐयारी और तिलस्मी उपन्यास]

कुंवर चन्द्रसिंहका अपने ऐय्यार हीरासिंहके साथ "पुतली-महल" नामक तिलस्ममें कैद हो जाना, राजकुमारकी खोजमें उनके और चार ऐयारोंका तिलस्ममें पहुँचना, तिलस्मी शैतानका सबको 'तिलस्म जालन्धर'में कैद कर देना। वीरेन्द्रसिंहका चढ़ाई करना। किलेके पिछले हिस्सेका एकाएक उड़ जाना। आदि पढ़कर हैरान हो जायेंगे, ५ भागोंका दाम ३॥) रुपया।

अमीरअली ठग

'इस्ट इण्डिया कम्पनी'के राजत्वकालमें ठगोंके जोर-ज़ुल्मसे सर्कार और प्रजा—दोनोंही तङ्ग आ गये थे। इन्हीं ठगोंकी करतूतोंका पूरा हाल इसमें दिया गया है। सुन्दर-सुन्दर कई चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ ॥।=) आना।

जीवनमुक्त-रहस्य

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, राजनीति, धर्म्मनीतिसे भरा हुआ, ईसाइयोंकी पोल खोलनेवाला, कुटिलों, बेईमानों और जालसाजोंका भाण्डा फोड़नेवाला, यह नाटक बड़ाही मनोहर, शिक्षाप्रद और अनूठा है। दाम सिर्फ २), सजिल्द २॥) रु०

नकली रानी

इसमें एक डाकू-स्त्रीकी वीरता, बुद्धिमानी, चालाकी और दिलेरी आदिका वर्णन बड़ीही दिलचस्पीके साथ किया गया है। कई चित्र भी दिये हैं। दाम १।)

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

जासूसकी झोली

इसमें निम्न लिखित बड़े-बड़े ५ जासूसी उपन्यास हैं :—(१) पत्थरका पुतला, (२) गठरीमें लाश, (३) रक्षक या भक्षक ?, (४) भुजङ्गिनी, (५) डबल दारोगा। एक रंगीन चित्र भी है। दाम सिर्फ १) रु०।

हिन्दी अंगरेजी शिक्षा

इसके सहारे थोड़ी सी 'हिन्दी' जाननेवाला मनुष्य भी कुछ ही दिनोंमें अङ्गरेजीका पूर्ण "पण्डित" बन सकता है। अङ्गरेजीमें हिसाब-किताब, तार, चिट्ठी लिखना-पढ़ना, बातचीत करना सिर्फ ६ महीनेमें आ सकता है। दाम पहले भागका १), दूसरे भागका १॥) रुपया।

सूर्योदय

यह स्टेजपर खेलने योग्य बड़ाही शिक्षाप्रद, सामाजिक नाटक है। उत्तमोत्तम गाने और रंग-बिरंगे ४ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १) रुपया।

जासूसी पिटारा

इसमें बड़ेही रहस्यजनक ५ उपन्यास हैं—(१) गुलजारमहल (२) फूल-बेगम (३) विचित्र जौहरी (४) अस्सी हज़ारकी चोरी (५) स्त्री है या राक्षसी ? दाम ॥।)

जासूसी-गुलदस्ता

इसमें बड़ेही अनूठे सुन्दर-सुन्दर सात जासूसी उपन्यास दिये गये हैं, जिन्हें पढ़कर आप मारे आश्चर्यके भकचका जाइयेगा। दाम सिर्फ १) रुपया।

जासूसकी डायरी

इसमें निम्न लिखित बड़े-बड़े ४ जासूसी उपन्यास हैं:—(१) विचारक या अपराधी ?, (२) हार चोर, (३) मौतका परवाना, (४) वाराङ्गना-रहस्य। सुन्दर-सुन्दर ३ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १)

रेगिस्तानकी रानी

इसमें सहारा और अरबिस्तानके भयानक रेगिस्तानकी बड़ीही कौतूहलवर्धक ५ कहानियां लिखी गयी हैं,—(१) रेगिस्तानकी रानी, (२) पेरिसकी पुतली, (३) पाताल-पुरी, (४) प्रेम-प्रतिमा, (५) अल्लाहकी आमद। रंग-बिरंगे ६ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥) रुपया।

गो-पालन-शिक्षा

इसमें गौ-बैलोंकी पहचान, उनकी बिमारियोंके लक्षण और दवायें तथा दूध बढ़ानेके उपाय लिखे गये हैं। रंग-बिरंगे ३ चित्र भी दिये हैं। दाम सिर्फ ॥) आ०

जासूसी कहानियाँ

इसमें उत्तमोत्तम ५ उपन्यास हैं—(१) साढ़े आठ खून (२) सतीका बदला (३) नीलाम घरका रहस्य (४) घुड़दौड़का घोड़ा (५) चोर और चतुर। दाम ॥।=)

नराधम

इसमें एक मित्र-द्रोही डाक्टरकी करतूतोंका बड़ाही सुन्दर खाका खींचा गया है। खून, फांसी, चोरी, डकैती सभी बातें हैं। रंग-बिरंगे ५ चित्र भी हैं। दाम १=)

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'बर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

नव-रत्न

इसमें वर्तमान कालकी सामाजिक घटनाओंपर ऐसी सुन्दर, शिक्षाप्रद, भावपूर्ण और हृदयग्राही ९ कहानियां लिखी गयी हैं, कि जिन्हें पढ़कर मन मुग्ध हो जाता है। स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बच्चे, सभीके पढ़ने योग्य हैं। दाम १॥), रेशमी जिल्द २।

आदर्श चाची

यह एक बड़ाही मनोरंजक और अत्यन्त शिक्षाप्रद, सचित्र सामाजिक उपन्यास है। इसे पढ़ लेनेसे घरकी फूट कभी नहीं होती। सुन्दर-सुन्दर ८ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥) रुपया।

कापालिक डाकू

इसमें बड़ेही अनूठे ४ जासूसी उपन्यास हैं,—(१) हिन्दू-रमणी, (२) खूनीका खून, (३) कापालिक डाकू, (४) खौफनाक कुर्सी। रंग-बिरंगे ३ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥) रुपया।

पंजाब-केशरी

इसमें महाराजा "रणजीतसिंह"का जीवनचरित्र बड़ी खूबीके साथ लिखा गया है। सुन्दर-सुन्दर कई चित्रोंने शोभा और भी बढ़ा दी है। दाम सिर्फ ॥) आना।

गीता-दर्शन

इसमें गीता और उससे सम्बन्ध रखनेवाले छओ दर्शनों, समस्त उपनिषदों और अनेक धर्म-शास्त्रोंका रहस्य बड़ी खूबीसे समझाया गया है। रंग-बिरंगे चित्र भी हैं। दाम सिर्फ २॥) रुपया।

कीचक-वध

इसमें राजा विराटके सेनापति 'कीचक' द्वारा द्रौपदीका अपमान और भीम द्वारा महाबली कीचकके मारे जाने तककी कथा बड़ीही सुललित कवितामें लिखी गयी है। रंग-बिरंगे ३ चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ ॥=) आना।

गुप्त-गुफा

जासूस-सम्राट मिष्टर ब्लेककी आश्चर्यजनक जासूसियोंसे भरा यह एक बड़ाही रहस्यमय जासूसी उपन्यास है! रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर कई चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ १॥), सजिल्द २) रुपया।

शशिबाला

कुमारस्वामीका तिलस्मी मठ, योगिनीका अद्भुत चातुरी, वीरसेनकी विलक्षण वीरता, शशिबालाकी अद्वितीय सुन्दरता आदिका हाल पढ़कर आप अवाक रह जायेंगे। दाम ॥।), रेशमी जिल्द १।) रु०

मायामहल

इसमें स्त्री-पुरुषोंकी अपूर्व ऐय्यारियाँ, आश्चर्य्यजनक तिलस्मात, भयानक लड़ाइयाँ और पवित्र प्रेमका बड़ाही सुन्दर चित्र खींचा गया है। दाम सिर्फ १) रु०

वीर-व्रत-पालन

इसमें महाराणा प्रताप और उनके बड़े-बड़े युद्धोंका वर्णन बड़ी खूबीसे किया गया है। सुन्दर-सुन्द रंग-बिरंगे प्रचुर चित्र भी लगाये गये हैं। दाम सिर्फ २) रुपया, रेशमी जिल्द २॥) रुपया।

पता--आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

'वर्म्मन-प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम, सचित्र पुस्तकें

कन्या-पुस्तक-मालाकी सचित्र पुस्तकें।

छोटी-छोटी बालिकाओंको उपहारमें देने और कन्या-पाठशालाओंमें पढ़ानेके लिये निम्न लिखित पुस्तकें, अनेक रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे सजाकर, बड़ी सरल भाषामें छापी गयी हैं। दाम भी बहुत सस्ता है।

सती-सावित्री	[५ चित्रों सहित]	॥=)	सती-शकुन्तला	[५ चित्रों सहित]	॥=)
सती-दमयन्ती	[५ चित्रों सहित]	॥=)	शिव-सती	[५ चित्रों सहित]	॥=)
सती-सीता	[५ चित्रों सहित]	॥=)	हर-पार्वती	[५ चित्रों सहित]	॥=)

नोट—हमारे यहां ॥) आना अग्रिम प्रवेश-फी भेजकर स्थाई ग्राहक बननेवालोंको उक्त मालाकी प्रत्येक पुस्तक ॥) में मिला करेगी।

कम दामोंके सचित्र जासूसी उपन्यास।

(१) अंग्रेज डाकू	॥=)	(१७) चतुरंग चौकड़ी	।-)
(२) जिन्देकी लाश	॥=)	(१८) डाकू भाई	।-)
(३) जादूगरनी	॥)	(१९) मैंहदीका बाग़	।-)
(४) घरका भेदिया	॥)	(२०) सिरकी चोरी	।-)
(५) राजा साहब	॥)	(२१) बदल-बदल	।)
(६) काला कुत्ता	॥)	(२२) गोपालके गहने	।)
(७) दारोग़ाका ख़ून	॥)	(२३) रमाबाई	।)
(८) नकली प्रोफेसर	।=)	(२४) बनारसी डुपट्टा	।)
(९) काला साँप	।=)	(२५) रोमियो-जुलियट	।)
(१०) विलायती डाकू	।=)	(२६) तायाका ख़ून	।)
(११) भीषण भूल	।=)	(२७) सम्राट बाबर	।)
(१२) हत्याकारी कौन है ?	।=)	(२८) पिशाच पिता	≡)
(१३) विचित्र वारांगना	।=)	(२९) भूल-भुलैया	≡)
(१४) चोर चौकड़ीपर	।-)	(३०) सरदार तारासिंह	=)
(१५) अनाथ बालिका	।-)	(३१) चार दोस्तोंकी हंसी	-)॥
(१६) गुप्त-रहस्य	।-)	(३२) भूल-भुलैया	≡)

पता—आर० एल० वर्म्मन एण्ड को, ३७१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।